MAPA-104

भारत में स्थानीय शासन

LOCAL GOVERNANCE IN INDIA

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई0 मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0 के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0 एस0 पी0 जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	
पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादक- 2017	
डॉ0 घनश्याम जोशी लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 संतोष सिंह राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय मगलौर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड	1, 2, 3, 9
डॉ0 शशि सौरभ, राजनीति विज्ञान विभाग डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	12, 13, 14
डॉ0 संतोष सिंह राजनीति विज्ञान विभाग, चौरी बेलहा महाविद्यालय, तरवा, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश	4, 5, 6, 7, 17, 18, 19, 20
डॉ0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	8, 16
डॉ0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग एस0 बी0 एस0 पी0 जी0 कालेज, रूद्रपुर, उत्तराखण्ड	21, 22, 23, 24

प्रकाशन वर्ष- 2018

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण- 2018, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक निदेशालय :, अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

mail: studies@uou.ac.in

अनुक्रम

भारत में स्थानीय शासन(MAPA-104) **पृष्ठ संख्या**

खण्ड- 1 स्थानीय शासन- परिचय	
1. स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व	1 -7
2. ग्रामीण संस्थाओं का विकास	8 - 17
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम	18 - 24
खण्ड- 2 पंचायत व्यवस्था	
4. बलवंत राय मेहता समिति, प्रतिवेदन एवं त्रिस्तरी व्यवस्था	25 - 34
5. ग्राम पंचायत	35 - 47
6. क्षेत्र पंचायत	48 - 60
7. जिला परिषद	61 - 73
8. पंचायती राज तथा 73वां संशोधन	74 - 84
खण्ड- 3 पंचायत व्यवस्था का प्रशासन	
9. कर्मचारी वर्ग व्यवस्था	85 - 91
10. पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन	92 - 103
11. ग्रामीण स्थानीय शासन प्रशासनिक ढांचा	104 - 117
12. पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण	118 - 127
खण्ड- 4 नगरीय शासन- 1	
13. नगरीय शासन का विकास	128 - 139
14. नगरीय शासन	140 - 152
15. नगरीय शासन संबंधी सुधार	153 - 164
16. 74वां संविधान संशोधन एवं नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य	165 - 172
खण्ड- 5 नगरीय शासन- 2	
17. नगर निगम	173 - 183
18. नगरपालिका	184 - 194
19. छावनी परिषद, औद्योगिक नगरियां	195 - 203
20. स्थानीय शासन का संघात्मक रूप	204 - 212
खण्ड- 6 नगरीय शासन एवम् राज्य प्रशासन	
21. नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण	213 - 223
22. नगरीय शासन के आय के साधन	224 - 237
23. शासनिक ढाँचा: नगरीय स्थानीय प्रशासन	238 - 250
24. भारत में स्थानीय शासन की प्रगति का मूल्यांकन	251 - 263

इकाई-1 स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि
1.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व
1.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ
    1.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध
    1.5.2केन्द्रीय शासन का भार कम होना
    1.5.3सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना
    1.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना
    1.6.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता
    1.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास
    1.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन
    1.5.8 नीति निर्माण में सहायक
1.5 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग में स्थानीय शासन व्यवस्था, लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित राजनीतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित है। लोकतंत्र की मूल मान्यता सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना है और इसका आशय होता है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी को शासन कार्यों में अभीष्ट स्थान देना। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस भावना को मूर्त रूप देने में स्थानीय शासन व्यवस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेष तौर पर तब जबकि इन संस्थाओं में प्रबन्ध न कार्य स्वयं नागरिकों की सहभागिता से होता है। इन संस्थाओं को जहाँ लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है वहीं जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढाती है। भारत जैसे देश में जहाँ दो-तिहाई से भी अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो, वहाँ स्थानीय शासन की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत का विस्तृत भू-भाग, कल्याणकारी सरकार के विस्तृत कार्य एवं दायित्व, स्थानीय समस्याओं का दिन-प्रतिदिन व्यापक होना आदि चुनौतियों के समाधान के लिए स्थानीय शासन ही कारगर हथियार है। डी0 टाकविले के अनुसार, ''स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएं होती हैं। एक राष्ट्र स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है किंतु स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नहीं हो सकती है।'' स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक महत्त्व को देखते हुए भारतीय संविधान में 73वाँ एवं 74वाँ

संविधान संशोधन करते हुए संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया, और 14 अप्रैल 1993 से स्थानीय शासन (पंचायती एवं नगरीय) में विभक्त कर लागू कर दिया है। यह भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के पश्चात तीसरे स्तर की सरकार बन गयी।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्ता को सैद्धान्तिक स्तर पर भी महसूस किया जाना अपेक्षित है; जबकि व्यवहार में ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें स्थानीय स्वशासन के सभी सदस्यों में सहभागितापूर्ण लोकतंत्र फल-फूल सके। विश्व का लोकमत इस दृष्टिकोण का कायल हो रहा है कि स्थानीय स्वशासन राष्ट्रीय विकास और लोगों की प्रभावकारी सहभागिता के लिए अत्यावश्यक है और समस्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अखण्ड एवं अपरिहार्य अंग इतना ज्यादा कि 08 अक्टूबर 1985 को यूरोपीय परिषद के 11 सदस्यों ने स्थानीय स्वशासन के यूरोपीय घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में परम्परा के द्वारा स्थानीय सरकारों पर सरकार के कतिपय बुनियादी कार्यों का दायित्व निर्भर है।

हमारे देश का स्थानीय स्वशासन दो स्तरों- नगरीय एवं ग्रामीण में विभक्त है नगरीय क्षेत्र में स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत संचालित इकाइयां नगर निगम, नगर पालिकाएं, अधिसूचित क्षेत्र समितियां, छावनी बोर्ड संस्था है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायतीराज व्चवस्था के त्रिस्तरीय रचना- जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं ग्राम पंचायत को अपनाया गया। स्थानीय शासन को विभिन्न देशों में अलग- अलग नामों से संबोधित किया जाता है। इंगलैण्ड में इन्हें स्थानीय सरकारें कहा जाता है। फ्रान्स में स्थानीय प्रशासन (प्रीफेक्ट व्यवस्था) तथा अमेरिका में नगर पालिका शासन कहते हैं। सोवियत रूस में इसे म्युनिसिपल सोवियतन कहा गया है। किन्तु भारत में इसे 'स्थानीय स्वशासन' से पुकारा जाता है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में स्थानीय शासन को समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा में स्थानीय शासन के महत्व को जान पायेंगे।
- स्थानीय शासन के माध्यम से राजनीतिक विकास में जनसहभागिता एवं नियंत्रण को समझ पायेंगे।

1.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। स्थानीय स्वशासन वर्तमान की भाँति नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में विभक्त थी विशेष रूप से ग्राम पंचायतों का अस्तित्व अति प्राचीन है। 'पंचायत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' से हुई है जिसका आशय पाँच व्यक्तियों के समूह से है। वैदिक सभ्यता के साहित्य में सभा एवं समितियों का वर्णन मिलता है जो प्रजा की भलाई के लिए राजा को सलाह देती थी। जिससे अतिशासन पर नियंत्रण सम्भव होता था।

रामायण महाभारत काल के साहित्य में सभाओं, समितियों तथा गाँवों का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के गांवों का वर्णन है- घोश एवं ग्राम। मनुस्मृति के अनुसार गाँव का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था उसका कार्य 'कर' संचित करना था। दस गाँव के अधिकारी को 'दशिक', 20 गाँव के अधिकारी को 'विधाधिप' सौ गाँवों पर शतपाल और एक हजार गाँव के अधिकारी को सहस्रपति कहते थे। मौर्य काल के विदेशी यात्री मेगस्थनीज द्वारा भी स्थानीय शासन में नगरों एवं ग्राम आत्मनिर्भर छोटे गणतंत्रों के रूप में बताया गया। अर्थशास्त्र में कोटिल्य द्वारा स्थानीय स्वशासन पर काफी विस्तार से बताया गया और मौर्य शासकों के काल में इसका स्वरूप काफी विकसित था। गुप्त काल में गाँव के लिए ग्राम समितियों का विकास हो चुका था प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रान्तों को नगर एवं ग्राम में विभक्त किया गया था। नगर का अधिकारी 'नगरपति' एवं ग्राम का अधिकारी

'ग्रामिक' कहलाता था। राजपूत कालीन युग में भी प्रशासन की मूल इकाई ग्राम ही थी जिसका शासन प्रबन्ध सभा एवं समितियों द्वारा होता था नगरीय शासन प्रबन्ध 'पहनाधिकारी' द्वारा होता था।

सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक शासन रहा, जहाँ निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारीता द्वारा स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को कमतर कर दिया गया। सत्ता के केन्द्रीयकरण ने स्थानीय स्वायत्ता को प्रायः समाप्त ही कर दिया था। मुस्लिम शासनकाल में स्थानीय संस्थाओं के प्रति उपेक्षा देखने को मिलती है इस काल में स्थानीय संस्थाओं और स्वशासन का स्वरूप वह नहीं रहा था जो प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है, विशेष रूप से जमींदारी प्रथा के आरम्भ होने के पश्चात। सत्ता के प्रति यह दृष्टिकोण आगे मुगलकाल में भी जारी रहा और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा के महत्त्व पर कम ध्यान दिया गया। किन्तु स्थानीय प्रशासन पर 'आईन-ए-अकबरी' में नगर प्रशासन की जिम्मेदारी जिस अधिकारी पर थी वह 'कोतवाल' कहलाता था।

ब्रिटिश के प्रशासन में स्थानीय शासन के विषय में पर्याप्त विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि भारत में स्थानीय स्वशासन प्राचीन काल से ही मौजूद रहा किन्तु इसका वर्तमान स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली और विकास ब्रिटिश राज की ही देन है।

स्थानीय स्वशासन में शासक वर्ग का निर्वाचन जो प्रतिनिधियात्मक व उत्तरदायित्व की ओर संकेत करता है, का विकास ब्रिटिश शासन में आरम्भ हुआ।

ब्रिटिश काल में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अपेक्षा नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था इसका आरम्भ 1687 मद्रास नगर निगम की स्थापना से माना जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश काल में विकसित हुआ भारत का स्थानीय शासन लगभग 330 वर्ष पुराना है।

आजादी के पश्चात भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों, परम्पराओं एवं विरासतों को प्रजातांत्रिक संवैधानिक व्यवस्थाओं के साथ स्वभाविक रूप से अपनाया गया और हमारे नीति निर्माताओं द्वारा स्थानीय शासन के महत्त्व को समझते हुए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वायत्ता प्रदान की गयी। निर्वाचक गणों के प्रति उत्तरदायी पूर्ण शासन को बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन को विकसित करने का पुनित कार्य न केवल राज्य को सौंपा गया बल्कि नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पंचायतों एवं नगरीय शासन को 1992 में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन कर संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। तब से भारतीय स्थानीय स्वशासन हमारी संघात्मक संरचना में शासन के तीसरे सोपान (केन्द्र, राज्य, स्थानीय) के रूप में एक मजबूत कडी का काम कर रहा है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से भारतीय संघात्मक शासन व्यवस्था ग्राम पंचायतों एवं नगरीय प्रशासन में आत्मनिर्णय उत्तरदायित्व एवं जनसहभागिता द्वारा विकास को पुख्ता किया जा रहा है।

1.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है नागरिकों का अपने ऊपर स्वयं का शासन अर्थात लोगों की अपनी शासन व्यवस्था। प्राचीन काल में स्थानीय स्वशासन विद्यमान था तथा ग्रामीण शासन प्रबन्ध न के लिए लोगों के अपने, कायदे कानून होते थे। इन नियमों के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वैच्छिक भूमिका निभाता था। क्योंकि इससे शान्ति व्यवस्था बनाने में, सहभागितापूर्ण कार्यों में, समस्याओं के समाधान की क्षमता में विशेष योग्यता प्राप्त होती थी ताकि सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

स्थानीय स्वशासन को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाऐं निम्न प्रकार हैं-

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, ''पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबंधित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने वाली सत्ता ही स्थानीय शासन है।''

एल0 गोल्डिंग के कथनानुसार ''स्थानीय सरकार को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है किन्तु सम्भवतः इसकी सबसे सरल परिभाषा यही है कि यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबन्ध है।''

हरमन फाइनर कहते हैं कि ''जिस श्रेणी संघवाद तथा समानुपातिक प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं, उसी में स्थानीय स्वायत्त शासन की गिनती है। ये सब व्यवस्थाएं समूह के अत्याचारों समतलन मानकीकरण तथा व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के प्रतिपरम्परागत घृणा से बचाव का साधन है।''

डब्ल्यू0 ए0 राब्सन के शब्दों में, ''सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है जो बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके, साथ ही यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में हिस्सा हो। स्थानीय शासन के ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस विषय में न्यूनाधिक अन्तर हो सकता है।''

वी0 वी0 राव के अनुसार, ''स्थानीय शासन सरकार का वह भाग है जो स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करता है, जो सत्ताधारी राज्य सरकार के अधीन प्रशासन चलाते हैं परन्तु उनका निर्वाचन राज्य सरकार के स्वतंत्र एवं सक्षम निवासियों द्वारा किया जाता है।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्थानीय लोगों द्वारा मिल-जुल कर अपनी समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानूनों के अनुरूप हो। स्थानीय शासन से हमारा अभिप्राय यह है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाए। यदि स्थानीय क्षेत्र का प्रशासन केन्द्र या राज्य सरकारों के अधिकारियों द्वारा चलाया जाए तो वह स्थानीय प्रशासन होगा न कि स्थानीय स्वशासन। स्थानीय स्तर की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान करने के लिए प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं स्थापित की जाती हैं। ये संस्थाएं ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ मूल्य एवं मान्यताएं होती हैं। इन्हीं मूल्य एवं मान्यताओं से राष्ट्र की सामाजिक राजनीतिक संस्थाएं उनकी कार्यप्रणाली तथा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निर्धारित होता है। इस तरह की संस्थाएं लचीली होती हैं। अतः ये समाज के बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालने का प्रयास करती हैं।

1.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

समकालीन परिदृश्य में जन आकांक्षाओं की उभरती हुई प्रवृत्तियों तथा लोककल्याणकारी राज्यों की मान्यता के फलस्वरूप राज्यों के कार्यों में उल्लेखनीय रूप से विस्तार हुआ है। केवल केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार ही इन कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकती। इसी कारण लोकतांत्रिक देशों में राष्ट्रीय एवं प्रांतीय सरकारें अपने कार्यों को गति देने की दृष्टि से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को पर्याप्त उत्तरदायित्व देती है। स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए हैराल्ड जे लास्की ने कहा है, ''हम लोकतंत्रीय शासन से पूरा लाभ उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह न मान लें कि सभी समस्याएं केन्द्रीय समस्याएं नहीं हैं और उन समस्याओं को उन्हीं लोगों द्वारा हल किया जाना चाहिए जो उन समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।''

जब कोई जन समूह किसी स्थान विशेष पर मिल-जुल कर सामुदायिक जीवन का आरम्भ करता है तो पारस्परिक सम्बन्धों के निरूपण से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध नागरिक जीवन की सुविधाओं की व्यवस्था से होता है जैसे बिजली, पानी, सडक, संचार, स्वास्थ, आवास और स्वच्छता आदि। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन की आवश्यकताओं की न्यूनतम अवधारणा भी बदलने लगी है। स्थानीय शासन को जो कार्य करने चाहिए इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। उपलब्ध सुविधाओं का परिवर्धन एवं नई सुविधायें जुटाना तथा भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार कर, मानवीय जीवन के शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उत्तरदायित्व है।

जहाँ एक ओर मनुष्य के जीवन को बेहतर से बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उद्देश्य है वहीं प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूक कर समाज को शासन व्यवस्थाओं के साथ सामंजस्य बिठाकर सतत विकास के पथ पर अग्रसर करना भी है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में स्थानीय स्वशासन संघवाद और सत्ता के विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में तीन स्तर के शासन में बुनियाद का कार्य करता है। वस्तुतः आजकल लोगों के दैनिक जीवन में स्थानीय शासन की भूमिका प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन से भी अधिक हो गयी है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि स्थानीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से इसका महत्व और अधिक बढता ही जायेगा। जैसे-जैसे लोग राजनीतिक दृष्टि से जागरूक होते जाऐंगे, राजनीतिक संस्कृति मजबूत होगी और उत्तरदायित्व और सहअस्तित्व पर आधारित शासन व्यवस्था का यह स्तर, नागरिक सहभागिता को और मजबूत करेगा और भविष्य की नागरिक सेवाओं के निष्पादन में मील का पत्थर भी साबित होगा।

1.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

स्थानीय शासन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

1.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध

यदि स्थानीय संस्थाएं न होंतो स्थानीय विषयों का प्रबन्धन भी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा किया जायेगा जिससे उनके पास कार्यों की अधिकता होगी। स्थानीय स्वशासन के कारण नागरिकों के धरातलीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन स्थानीय संस्थाएं कुशलतापूर्वक करती है इससे न केवल समस्याओं का त्वरित निदान होता है बल्कि संस्थाओं व नागरिकों के मध्य सीधा व सहभागी सम्बन्ध स्थापित होता है जो कुशल प्रबन्धन का द्योतक है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को न समझ सकें और स्थानीय समस्याओं का हल ढूँढ निकालना उनके लिए सम्भव न हो। दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने में उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इन कार्यों को स्थानीय शासन आसानी से कुशलतापूर्वक कर सकता है।

1.5.2 केन्द्रीय शासन का भार कम होना

जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने केन्द्र सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। ऐसे में अगर स्थानीय विषयों को भी केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पन्न करने से उसके कार्य भार में अत्याधिक वृद्धि से असंतुलन बढेगा और केन्द्र सरकार अपने कार्य भी सही प्रकार से नहीं कर सकेगी। स्थानीय संस्थाएं केन्द्रीय सरकार के कार्य भार को कम करने में मदद करती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का कुछ बोझ अपने ऊपर ले लेता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासन को सौंप देता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारों को बहुत से कार्यों या जिम्मेदारियों से मुक्त कर देता है।

1.5.3 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना

प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सामान्य नागरिकों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कितनी रूचि ली जाती है। यह रूचि संस्थाओं द्वारा एवं स्वयं नागरिकों द्वारा उत्पन्न होनी चाहिए। इससे विश्वास और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है और जनसाधारण बढ़-चढ़ कर भागीदार बनते हैं। सार्वजनिक जीवन के प्रति जागरूकता बढ़ना स्थानीय शासन की संस्थाओं का दायित्व है। स्थानीय शासन जनता के सबसे निकट होता है इसलिए लोग यह भी मानते हैं कि वे इन संस्थाओं पर अच्छे कामकाज के लिए अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। नागरिकों की भावना और क्रियाशीलता समस्त जन समुदाय में जागरूकता का संचार करती है।

1.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना

स्थानीय शासन एक ओर जहाँ राजनीतिक शिक्षण का माध्यम बनना है, वहीं स्थानीयता से राष्ट्रीयता तक एकता की भावना का संचार करता है। प्रजातांत्रिक स्वरूप में नागरिक स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के भाव को प्राप्त ही नहीं करते, बल्कि उसकी रक्षा हेतु एकता के सूत्र में बंध कर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान भी बनते हैं। जनता

राजनीतिक तौर पर सजग रहती है और करों के औचित्य, चुनाव के तरीके और शासन के कार्यों को समझ सकती है कि शासन अपने कार्यों अर्थात कर्तव्यों को पूरा कर रही है या नहीं। नागरिक सार्वजनिक मामलों से परिचित हो जाता है। स्थानीय संस्थाएं नागरिकों को राज्य और देश की राजनीति में भाग लेने योग्य बनाती है।

1.5.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता

स्थानीय शासन का एक बड़ा लाभ यह होता है कि राज कर्मचारियों की शक्ति को बढने से रोका जा सकता है। एक ओर तो नौकरशाही को यह बताया जाता है कि वे लोकसेवक हैं दूसरे जनता द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई प्रकार के नियंत्रणों से शक्ति और विवके के फैलाव पर रोक लगती है, जिससे क्षेत्राधिकार की सीमाओं में मितव्ययिता के साथ नौकरशाही, लोकसेवकों के रूप में कार्य करती है।

1.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास

स्थानीय स्वशासन के माध्यम से जनता शासकीय कार्यों में सक्रिय एवं सकारात्मक सहयोग प्रदान करती है। ब्राइस ने इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''स्थानीय संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं, वरन् इसके साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। सहयोग की सकारात्मक सोच नागरिकों को सामान्य समस्याओं के प्रति रूचिवान बनाती है। योग्यता एवं ईमानदारी से कर्त्तव्य पालन की भावना अच्छे नागरिकों का निर्माण इसी स्वशासन में ही सम्भव होता है।''

इस प्रकार स्थानीय शासन आधुनिक राज्यों के लिए न केवल आवश्यक बन गई है, बल्कि ये प्रजातंत्र की आधारशिला हो गई है। स्थानीय संस्थाएं स्थानीय उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में अहम भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय समाज संवैधानिक सरकार के संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रजातंत्र को अपने घर से आरम्भ होना चाहिए और इसके लिए स्थानीय सरकार सबसे उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार वास्तविक प्रजातंत्र के लिए स्थानीय संस्थाएं अति आवश्यक है।

1.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन

स्थानीय शासन जनता को सुविधाएं पहुंचाने का एक साधन है। स्थानीय शासन सफाई, सडकों, स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि की समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाता है। जनता के लिए भी यह अधिक सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि द्वारा हल न करकेस्थानीय शासन द्वारा हल की जाए।

1.5.8 नीति निर्माण में सहायक

स्थानीय सरकार राज्य सरकारों को समस्त ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों की जनता से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं और आँकड़े उपलब्ध कराती है। जनसंख्या, आय, पुरुष, महिला, शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, भूमि, उत्पादन, आदि बातों की जानकारी स्थानीय सरकार ही प्रदान करती है। इन सूचनाओं के आधार पर राज्य सरकार अपनी नीतियां तैयार करती हैं, जिससे योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्माण होता है, जिससे समस्त राष्ट्र का हित निहित होता है। इन नीतियों तथा योजनाओं को सफल बनाने में स्थानीय शासन का अत्यधिक योगदान होता है।

1.6 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

यद्यपि भारत के संविधान में स्थानीय शासन को परिभाषित नहीं किया गया है। सातवीं अनुसूची में कहा गया हैः ''स्थानीय शासन अर्थात म्युनिसिपिल कॉरपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, जिला परिषदों, खदान अभिकरणों और स्थानीय स्वशासन तथा ग्राम प्रशासन के हेतु अन्य स्थानीय अभिकरणों के गठन एवं शक्तियां।''

इस प्रकार 1992 तक भारत में स्थानीय शासन राज्यों के विवेक पर निर्भर था। इस कमी को दूर करते हुए संविधान में दो संशोधन किए गये। इन दो संविधान संशोधनों के माध्यम से भारतीय स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो गया। 73वां संशोधन जो ग्रामीण पंचायती राज संस्थाओं के विकास से सम्बन्धित है और74वां संशोधन

जो नगरीय प्रशासन से, दोनों के द्वारा सत्ता का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। संविधान में ऐसा करने वाला भारत दुनियां का पाँचवां देश बन गया।

1.7 सारांश

स्थानीय स्वशासन एक प्राचीन अवधारणा है विशेष रूप से भारतीय संस्कृति में इससे जुड़ी संस्थाओं को विकास क्रम में प्राचीन से अद्यतम तक परिभाषित किया जा सकता है।

यह शासन का ऐसा स्वरूप है जो नागरिक विकास के लिए स्थानीय मुद्दों के समाधान में जनसहभागिता की जरूरत पर विशेष बल देता है। स्थानीय स्वशासन,भारतीय संघात्मकता एवं एकात्मकता रूपी प्रजातंत्र पर आधारित सत्ताविकेन्द्रीकरण मूल्यों की आधारशिला है। संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने से यह नियंत्रण एवं उत्तरदायीपूर्ण शासन व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-निर्माण से क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन तक जनसहभागिता पर आधारित है। सही मायने में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई ‘स्थानीय स्वशासन’ ही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता देने के लिए भारतीय संविधान में कौन-कौन से संशोधन किए गये?
2. भारत में स्थानीय स्वशासन को कितने भागों में विभक्त किया गया है?
3. पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के किस शब्द से हुई है?
4. भारत में नगर निगम की सर्वप्रथम स्थापना कब और कहाँ हुई?

1.8 शब्दावली

परिवर्धन- विस्तरण या विस्तार, द्योतक- प्रतीक या चिन्ह स्वरूप, उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी, जनसाधारण- आमलोग, आधारशीला- नींव

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 73वां और 74वां संवैधानिकसंशोधन, **2.** दो भागों में- नगरीय और ग्रामीण, **3.** पंचायतन, **4.** 1687 में मद्रास नगर निगम

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एल0 गोल्डिंग, लोकल गवर्नमेंट, इंगलिश यूनिवर्सिटी, लंदन 1955
2. जेम्सब्राइस, मार्डन डेमोक्रेसीज, मैकमिलन प्रेस न्यूयार्क 1921
3. जे0 एस0मिल, रिप्रेजेन्टिव गवर्नमेंट एवरिमेंस लाइब्रेरी एडीसन प्रेस लंदन 1957
4. एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारत में स्थानीय स्वशासन के महत्व को विस्तार से समझाइये।
2. स्थानीय स्वशासन को परिभाषित कीजिए और उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. स्थानीय शासन के लाभों को विस्तार से समझाइये।
4. स्थानीय शासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियाद है,विश्लेषण कीजिए।

इकाई- 2 ग्रामीण संस्थाओं का विकास

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाएं
2.3 ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताएं
2.4 ग्रामीण संस्थाओं के विकास में संवैधानिक प्रयास
2.5 ग्रामीण संस्थाओं की समस्याएं एवं सुझाव
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र की मूलभूत मान्यता है कि सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होनी चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए जिससे अधिकाधिक व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से शासन कार्य में भाग ले सकें। इस सम्बन्ध में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं द्वारा यह कार्य अच्छे प्रकार से किया जा सकता है क्योंकि इन संस्थाओं का प्रबन्ध नागरिकों को स्वयं करना होता है। इसी कारण इन संस्थाओं को लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है, जो जनता को लोकतंत्र का पाठ पढाती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीय (ग्रामीण) संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं बल्कि दूसरों के साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। वे सामान्य जागरूकता, बुद्धिमत्ता, निर्णयात्मकता एवं सामाजिकता आदि गुणों का विकास करती हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय प्रशासन में ग्रामीण संस्थाओं के महत्व को जान पायेंगे।
- ग्रामीण संस्थाओं के प्रशासनिक विकास को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत ग्रामीण संस्थाओं की संवैधानिक स्थिति से परिचित हो पायेंगे।

2.2 भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाएं

भारत में ग्रामीण संस्थाएं प्राचीन काल से चली आ रही हैं। भारत में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत प्राचीन है और ग्राम पंचायतों को देश के रूप में जाना जाता रहा है। पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतन' से हुई है। जिसका अर्थ, पाँच व्यक्तियों का समूह होता है। वैदिक काल के साहित्य में सभा और समिति का वर्णन मिलता है। सभा और समिति का कार्य भूमि का बँटवारा, सिंचाई के साधनों का प्रबन्ध, चरागाहों की देखभाल, मेले उत्सवों का आयोजन, आपसी झगडों का फैसला आदि थे। ग्राम की रक्षा एवं मालगुजारी वसूल करना भी ग्रामीणी (ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई) एवं पंचायत का कार्य था।

ग्रामीण संस्थाओं का उल्लेख, रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में दो प्रकार के गाँवों का उल्लेख मिलता है- घोश और ग्राम। इनके अधिकारियों को क्रमशः घोश महत्तर एवं ग्राम महत्तर कहा जाता था। घोश का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता था। रामायण में एक अन्य अधिकारी 'ग्रामीणी' का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी घोश और ग्राम का वर्णन देखने को मिलता है। घोश प्रायः उन क्षेत्रों को कहते थे जो कि जंगलों के पास होते थे तथा वहाँ के लोग गोप या गांवों के रखवाले होते थे। मनु द्वारा रचित मनुस्मृति के अनुसार गाँव के अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे। उसका कार्य गाँव में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के साथ-साथ कर की वसूली करना था।

कोटिल्य की पुस्तक अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन ग्रामीण शासन व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार शासन व्यवस्था के संचालन के लिए प्रशासन कई भागों में विभक्त होता था। सबसे छोटा ग्राम कहलाता था, इसके ऊपर क्रमशः 100 ग्रामों का समूह संग्रहण, 200 गाँवों का समूह खार्वटिक, 400 ग्रामों का समूह द्रोणमुख, 800 गाँवों का समूह स्थानीय होता था। गाँव के प्रमुख को 'ग्रामिक' कहते थे। ग्रामिक ग्राम सभा की सहायता से कार्यों का संचालन करता था जिसके सदस्य वयोवृद्ध ग्रामवासियों के द्वारा चुने जाते थे। ग्राम सभा को काफी अधिकार प्राप्त था। वह गाँव के साधारण झगडों का निबटारा करता था। अपराधियों के ऊपर दण्ड तय करता था। गाँव के अन्य साधनों से आय एकत्र करता था। लोक कल्याणकारी कार्य जैसे पुल, सडक, तालाब आदि का कार्य भी ग्राम सभा के हाथ में था।

मौर्य काल के स्थानीय संस्थाओं की महत्वता बताते हुए विद्यालंकार ने लिखा है कि ''विशाल साम्राज्य में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना होते हुए भी गाँव शासन को अपने विषयों में पूर्णतः स्वतंत्रता थी। नियमानुसार कार्य किये जाते थे और नियम तोड़ने वालों को दण्ड की व्यवस्था की गई थी। सभा गाँव के केन्द्र में थी। यह सामाजिक और धार्मिक विषयों पर विचार करती थी। इन आत्म-प्रसाशित गणराज्यों में जनता स्वतंत्रतापूर्वक रहती थी।''

गुप्त काल में भी शासन द्वारा ग्राम पंचायतों को पर्याप्त शक्तियां और महत्ता प्रदान की गई थी। अलतेकर ने गुप्त प्रशासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है ''गुप्तकालीन शासन प्रणाली तथा उसकी उपलब्धियों के विषय में हमारे पास विस्तृत सामग्री है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह केन्द्र व प्रांत दोनों में अत्यंत सुव्यवस्थित थी।'' प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। सबसे बडा विभाग प्रांत था, जिसको देश या भुक्ति कहते थे। प्रान्तों से छोटा विभाग प्रदेश और इससे छोटा विभाग विशय होता था, जो जिले के समतुल्य था। प्रांतीय शासन यागिक, योगपति, गोपा, उपरीक महाराज और राज्य स्थानीय कहलाते थे। विषयों के ऊपर विशपति, कुमाराभात्या या महाराजा शासन करते थे। शासन की न्यूनतम इकाई ग्राम थी। प्रत्येक ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक की सहायता के लिए एक समिति होती थी जिसे ग्राम सभा कहते थे। गाँव के मामलों का प्रबन्ध महत्तरों अर्थात बड़े-बुजुर्गों की सहायता से ग्राम प्रधान करता था। गाँव या वीथी कहे जाने वाले कस्बों के प्रशासन में प्रमुख स्थानीय लोगों का भी हाथ रहता था। मौर्य काल में गाँव की व्यवस्था ऊपर से की जाती थी जबकि गुप्त काल में नीचे से की जाती थी। उस समय गाँव में बहुत सत्ता प्राप्त कर ली थी और विकेन्द्रीकरण व्यवस्था मजबूत स्थिति में थी।

राजपूत कालीन समय में ग्राम, प्रशासन की छोटी इकाई थी। ग्राम का प्रबन्ध ग्राम सभाओं द्वारा सम्पन्न किया जाता था। ग्राम अपने क्षेत्र में शासन का समस्त कार्य देखती थी। शासन सुचारू रूप से चल सके इसके लिए अनेक समितियों का गठन किया गया था जिन्हें अनेक कार्य सौंपे जाते थे।

सल्तनत कालीन प्रशासन में राज्य की सबसे छोटी ईकाई ग्राम थी। ग्राम का प्रबन्धन लम्बरदारों, पटवारियों और चौकीदारों द्वारा किया जाता था। गाँवों को अपने प्रबन्धन के मामले में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक था और सुल्तान स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश थे। मुगलकालीन भारतीय इतिहास के पन्नों को पलटने से यह प्रतीत होता है कि इस काल में भी देश में किसी न

किसी रूप में ग्रामीण संस्थाएं विद्यमान थी। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में इस काल में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी जिसका प्रबन्ध पंचायतें करती थी। पंचायतें गावों में सफाई सुरक्षा, शिक्षा, सिंचाई, विवादों का फैसला आदि कार्य करती थी। गाँवों के चार प्रमुख अधिकारी होते थे- मुकददम, पटवारी, चौधरी तथा चौकीदार। इसमें मुकददम गाँव की देखभाल करता था। पटवारी राजस्व (लगान) वसूली का कार्य करता था। चौधरी पंचायतों की सहायता से झगडों को सुलझाता था और चौकीदार गाँव की सुरक्षा का दायित्व निर्वहन करता था। इस काल में स्थानीय संस्थाएं प्राचीन भारत की स्थानीय संस्थाओं के समान स्वतंत्र और लोकतांत्रिक नहीं थी।

गाँव की स्वायत्तता और स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं का अस्तित्व 18वीं शताब्दी के मध्य में आते-आते समाप्त हो गई। इस सम्बन्ध में प्रमुख कारण प्रारम्भ में अंग्रेज शासकों ने पंचायत को नकारा, क्योंकि उनको इन संस्थाओं के महत्तव का ज्ञान नहीं था, किंतु कालान्तर में पंचायत राज संस्थाओं के महत्त्व की अनुभूति होने पर उन्होंने स्वयं इन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने के प्रयास किय। इन प्रयासों में वायसराय लार्ड रिपिन का वर्ष 1882 का प्रस्ताव उल्लेखनीय है जिनके द्वारा ब्रिटिश शासन के अधीन समस्त गाँवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया।

इसके पश्चात वर्ष 1907 में 'शाही आयोग' ने भी ग्रामीण प्रशासन एवं प्रबन्ध करने के लिए पंचायत संस्थाओं को आवश्यक बताया, लेकिन आयोग के प्रस्ताव क्रियान्वित नहीं हो सके। भारत में ग्रामीण संस्थाओं को सुदृढ करने की दिशा में एक अन्य महत्वपूर्ण पहल वर्ष 1919 में मॉण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार के अंतर्गत की गई थी। इन सुधारों के बाद स्थानीय स्वशासन में एक नया युग शुरू हुआ। द्वैध-शासन व्यवस्था के अंतर्गत इस विषय को हस्तांतरित विषय रखा गया और इसके प्रबन्ध का दायित्व जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों पर आ गया किंतु वित्त विभाग पर सरकारी अधिकारियों के आधिपत्य एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने विभाग में भी पूर्ण स्वतंत्रता के अभाव तथा अन्य अनेक कारणों से इनका कोई विशेष महत्व नहीं रहा।

वर्ष 1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रांतीय स्वायत्ता का श्रीगणेश हुआ। इसके फलस्वरूप देश में स्वतंत्रता की दिशा में एक शक्तिशाली पहल हुई, जिसका स्थानीय संस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव पडा। जिला बोर्डों के कार्यक्षेत्र में विस्तार के साथ-साथ जिलाधीश को इसका कार्याधिकारी नियुक्त किया गया। फलस्वरूप जिला बोर्ड एक परामर्शदात्री संस्था न रहकर प्रमुख संस्था बन गए। भारत शासन अधिनियम 1935 के अंतर्गत वर्ष 1937 में लोकप्रिय मंत्रिमंडलों का निर्माण हुआ और उन्होंने स्थानीय संस्थाओं को जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बनाने के लिए विधि निर्माण का कार्य हाथ में लिया किन्तु दुर्भाग्यवश 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने से स्थानीय संस्थाओं को लोकप्रिय बनाने का मंत्रियों का प्रारम्भिक उत्साह ठंडा पड़ गया। मंत्रियों ने विरोध के प्रतीकस्वरूप त्यागपत्र दे दिए और राज्यों में गवर्नरों का पूर्णतया एक व्यक्ति का शासन स्थापित हो गया। स्थानीय शासन के इतिहास में यह वर्ष 1939-1946 तक की अवधि 'अंधकार का काल' (डार्क पीरियड) माना जाता है। ब्रिटिश भारत प्राधिकारियों द्वारा इस काल के दौरान ग्राम पंचायतें पूर्णतया उपेक्षित या तिरस्कृत की गई।

ब्रिटिश शासन काल में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अनेक उतारचढाव के बावजूद पंचायती राज का विचार ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के रूप में महत्वपूर्ण आयाम के रूप में बना रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में ग्रामीण संस्थाएं यानि पंचायती राज व्यवस्थाओं के महत्व को गंभीरतासे लिया गया। गाँधी जी मानते थे कि ''भारत की आत्मा गाँवों में बसती है यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत भी नष्ट हो जाएगा।'' इसी संकल्पना ने स्वतंत्रता के पश्चात गाँव की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये युग का सूत्रपात किया। भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इसकी स्पष्ट झलक दिखायी देती है। हमारे संविधान निर्माताओं ने ग्रामीण शासन व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए विशेष ध्यान दिया। इसका अंदाजा भारतीय संविधान के भाग- 4 जिसमें नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से अनुच्छेद- 40 में पंचायतों के गठन के संदर्भ में व्यवस्था की गई कि ''राज्य ग्राम

पंचायतो का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उसको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन के इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो" से लगाया जा सकता है।

भारत एक लोकतंत्र देश है और लोकतंत्र में जनसहभागिता और विकेन्द्रीकरण प्रमुख तत्व होते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण, राजनीतिक-प्रशासनिक सहभागिता में उत्तरोत्तर वृद्धि और इन सबके लिए स्थानीय इकाइयों को मजबूती देना आवश्यक हो जाता है। सरकार ने शुरु- शुरु में इन उद्देश्यों को अमल में लाने के लिए गाँधी जी के जन्म दिवस पर 02 अक्टूबर 1952 को 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' (सीडीपी) आरम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत खण्ड को इकाई मानकर खण्ड के विकास हेतु कर्मचारियों- अधिकारियों के साथ सामान्य जनता को विकास की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया, लेकिन इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमी यह रही कि जनता को अधिकार नहीं दिया गया जिस कारण से यह कार्यक्रम सफल नहीं हो सका किन्तु इसका लाभ यह मिला कि नीतियों में कमियों की ओर ध्यान दिया गया। इसी कार्यक्रम की तर्ज पर 02 अक्टूबर 1953 को 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' का प्रारम्भ किया गया लेकिन यह कार्यक्रम भी ज्यादा न चल सका। सरकार ने इन गलतियों से सबक लेकर वर्ष 1957 में 'बलवंत राय मेहता समिति' की स्थापना की। इस समिति के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था की नींव पड़ी। इस समिति ने सरकार के सम्मुख निम्न सिफारिशें रखी-

- पंचायती राज का ढ़ाँचा त्रिस्तरीय होगा। यह ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद।
- पंचायत पूर्ण रूप से निर्वाचित इकाइयां होनी चाहिए।
- पंचायत का अपने क्षेत्र के अंतर्गत होने वाले सभी विकास कार्यों पर नियंत्रण होना चाहिए। सरकार का कार्य केवल नियोजन, निरीक्षण और निर्देशन तक सीमित होना चाहिए।
- निकाय का गठन ग्राम पंचायतों के अप्रत्यक्ष चुनावों द्वारा पाँच साल के लिए होना चाहिए।
- निकाय के कार्यों में कृषि का सर्वांगीण विकास, स्थानीय उद्योगों का विकास जैसे कार्य सम्मिलित होने चाहिए। निकाय द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं में पेयजल, सड़क निर्माण आदि होने चाहिए। उच्च स्तर की निकाय जिला परिषद को सलाहकार की भूमिका निभानी चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पंचायतों के माध्यम से असफल रहा। इसके पीछे मूल कारण रहे हैं- नौकरशाही का दबाव, स्थानीय स्तर पर क्षमता का अभाव, स्थानीय अभिजात्य वर्ग का वर्चस्व और राजनीतिक इच्छा का अभाव।

पंचायती राज व्यवस्था की कमियों को दूर करने के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 1977 में 'अशोक मेहता समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने निम्न सिफारिशें की-

- राज्य में विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्तर जिला हो।
- जिला स्तर के नीचे मण्डल पंचायत का गठन किया जाए जिसमें करीब 15 हजार से 20 हजार जनसंख्या एवं 15 गाँव शामिल हों।
- ग्राम पंचायत और पंचायत समिति को समाप्त कर दिया जाए।
- मण्डल अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष और जिला परिषद के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होना चाहिए।
- मण्डल पंचायत और परिषद का कार्यकाल चार वर्ष हो।
- विकास योजनाओं को जिला परिषद के द्वारा तैयार किया जाए।

वर्ष 1980 में सत्तारूढ कांग्रेस सरकार ने जनता सरकार द्वारा गठित अशोक मेहता समिति की सिफारिशें राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं की।

पंचायती राज व्यवस्था की विभिन्न पहलुओं की जाँच-पड़ताल करने के लिए योजना आयोग द्वारा 'जी0के0वी0 राव समिति' की गठन 1985 में किया। इस समिति ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की-

- योजनाएं तैयार करने, निर्णय लेने और उसे लागू करने कार्य पंचायतों को सौंपा जाए, क्योंकि वे जनता के अधिक निकट हैं।
- कार्य सम्पादन के लिए जिला परिषद की विभिन्न समितियां गठित की जाए।
- राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली धनराशि को निर्धारित करने का कार्य वित्त आयोग को दी जानी चाहिए, जिसकी नियुक्ति हर पाँच साल के बाद होनी चाहिए।
- जिला स्तर के नीचे पंचायत समिति या मण्डल पंचायतें गठित की जानी चाहिए और इनका गठन और संरचना जिला परिषद जैसी होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव में ग्राम सभा हो।

केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 1986 में 'एल0एम0 सिंघवी समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायती राज का भलीभाँति अध्ययन किया। समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की-

- पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिलना चाहिए। संविधान में एक नया अध्याय जोड़कर पंचायतों को सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- पंचायतों के चुनाव में राजनीतिक दल शामिल नहीं होना चाहिए।

वर्ष 1988 में 'पी0के0 थुंगन समिति' का गठन पंचायती राज संस्थाओं पर विचार करने के लिए किया गया। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में स्थान दिया जाना चाहिए। इस समिति की सिफारिश के आधार पर पंचायती राज को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने के लिए वर्ष 1989 में 64वां संविधान संशोधन लोकसभा में पेश किया गया जिसे लोकसभा ने पारित कर दिया लेकिन राज्य के द्वारा स्वीकार नहीं किया गया।

पंचायती राज व्यवस्था को नई दिशा देने के लिए 73वां संवैधानिक संशोधन विधेयक मील का पत्थर साबित हुई। यह विधेयक 16 सितम्बर को 1991 को लोकसभा में पेश किया गया जिसे 22 दिसम्बर 1992 को पारित कर दिया। राज्य सभा ने भी 23 दिसम्बर 1992 को इस विधेयक को पारित कर दिया। अंतत 24 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के बाद इसे अधिनियम का रूप दिया गया।

2.3 ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताएं

ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है-

1. ग्रामीण संस्थाओं द्वारा जनता को सुविधाएं पहुँचाने का एक साधन है। इसके माध्यम से सफाई, सड़क स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाना है। जनता के लिए भी यह सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन की प्रतिनिधियों द्वारा हल न की जाकर स्थानीय शासन द्वारा हल की जाएं।
2. ग्रामीण संस्थाओं के माध्यम से कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। स्थानीय शासन के क्षेत्र में रहने वाली जनता स्थानीय कार्यों में रूचि लेने लगती है। वह कार्यों में भाग लेने के अवसर का उपयोग करती है। वह स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओं को सबसे अच्छी तरह समझती है और यह जानती है कि स्थानीय समस्याओं को किस प्रकार हल किया जा सकता है।

3. ग्रामीण संस्थाएं सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल देती है। यदि स्थानीय सरकार की व्यवस्था न की जाए तो केन्द्रीय सरकार पर कार्यभार इतना अधिक बढ़ जाएगा कि उसे कुशलता और सफलता के साथ सम्पन्न नहीं कर सकेगी। एक स्थानीय संस्था को जब सब कुछ निश्चित और सीमित कार्य दिए जाते हैं तो वह पूरी शक्ति इस बात में लगा देती हे कि उनको पूरी कुशलता के साथ सम्पन्न करे। विकेन्द्रीकरण के कारण स्थानीय संस्थाएं अपने कार्योंके द्वारा केन्द्र और राज्य सरकार के कल्याणकारी कार्यों को हल्का करके सहायता प्रदान करती है।
4. स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से शासन कला में प्रशिक्षित होने का अवसर मिलता है। इसके अंतर्गत निर्वाचित सदस्य यह सीखते हैं कि एक निर्वाचित संस्था किस प्रकार कार्य करती है। प्रशासन किस प्रकार चलता है और कार्यालय का संगठन किस प्रकार कार्य करता है।
5. ग्रामीण संस्थाओं से नागरिक गुणों का प्रशिक्षण होता है तथा अधिकार और कर्तव्यों को ठीक प्राकर समझा जा सकता है। जनता यह अनुभव करती है कि उसे जो सुविधाएं मिली हैं, वे उसके द्वारा किए गये कर्तव्यों तथा दिए गए करों का परिणाम है।
6. स्थानीय शासन जनता में जनभावना और उदार दृष्टिकोण का निर्माण भी करती है। जनता यह समझने लगती है कि व्यक्तिगत लाभ सार्वजनिक हित के अधीन होना चाहिए। जनता यह भी जानने लगती है कि सबकी भलाई में ही उसकी भलाई है।
7. राजनीतिक शिक्षा और शासन कला में प्रशिक्षण का अवसर देकर स्थानीय शासन व्यक्ति के व्यक्तित्व का साधन बन जाता है। यह ऐसे अवसर देता है जिससे व्यक्ति की पहलकदमी और जनता की सेवा करने की क्षमता का विकास होता है।

2.4 ग्रामीण संस्थाओं के विकास में संवैधानिक प्रयास

लम्बे समय तक पंचायत (ग्रामीण संस्था) को संवैधानिक पहचान या दर्जा नहीं मिला था। वे राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में शामिल थी, जिनको सिर्फ एक सलाहकार का दर्जा प्राप्त था। कोई भी राज्य सरकार इन नियमों के अनुसार कार्य करने को बाध्य नहीं थी। इस लचीलेपन से पंचायती राज संस्था के किसी भी अधिकार और शक्ति का उल्लंघन किया जा सकता था। ऐसे में यह महसूस किया गया कि इन संस्थाओं को संवैधानिक अधिकार और दर्जा दिलाने के लिए संवैधानिक सुरक्षा अनिवार्य है। इसीलिए भारत सरकार द्वारा 24 अप्रैल, 1993 को संवैधानिक (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग 'भाग-9' जोड दिया गया जिसका शीर्षक 'पंचायत' रखा गया है। इसके द्वारा अनुच्छेद- 243 में पंचायतों से सम्बन्धित प्रावधान किए गए हैं।

73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्न हैं

1. सभी राज्यों में 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों को छोडकर, एक त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था होगी जिसके ऊपरी स्तर पर जिला पंचायत और निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी तथा इन स्तरों के बीच एक मध्यवर्ती पंचायत स्तर होगी। 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यवर्ती पंचायत नहीं होगी। (अनुच्छेद- 243 बी-1)
2. अधिसूचित ग्राम की एक ग्राम सभा होगी, जिसमें वह सभी लोग शामिल होंगे जिनके नाम उस ग्राम की मतदाता सूची में सम्मिलित हों। ग्राम सभा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को सम्पन्न करेगी। (अनुच्छेद- 243 ए)

3. राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरूप पंचायतों का गठन किया जाएगा। प्रत्येक पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया से किया जाएगा। पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जाएगा। (अनुच्छेद- 243 सी-1)
4. राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा ग्राम पंचायतों के प्रमुखों का मध्यवर्ती पंचायतों में तथा मध्यवर्ती पंचायतों के न होने पर जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा। इसी प्रकार मध्यवर्ती पंचायतों के प्रमुखों का जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा। (अनुच्छेद- 243 सी- 3)
5. ग्राम स्तरीय पंचायतों के प्रमुख (प्रधान) को राज्य के कानून के अनुसार चुना जाएगा। मध्यवर्ती व जिला पंचायतों के अध्यक्ष (प्रमुख) इन पंचायतों के सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जाएंगे। (अनुच्छेद- 243-सी)
6. प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित होंगी। यह सीटें पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जाएंगी। यह सीटें एक पंचायत में चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित की जाएंगी। (अनुच्छेद- 243डी-1)
7. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में कम से कम एक तिहाई(1/3) स्थान अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।(अनुच्छेद- 243 डी-2)
8. प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से न्यूनतम एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए जाएंगें (जिनमें अनु0 जाति व अनु0 जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान भी सम्मिलिति हैं।) (अनुच्छेद- 243डी- 3)
9. प्रत्येक पंचायत की अवधि पाँच वर्ष होगी। इसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराए जाएंगे। यदि पंचायत को पाँच वर्ष से पूर्व भंग कर दिया जाता है तो 06 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व चुनाव कराए जाएंगे। (अनुच्छेद- 243 ई)
10. राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां प्रदान करेंगें जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रूप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायतें आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार कर सकें एवं संविधान की 11वीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके। (अनुच्छेद- 243 जी)
11. पंचायतें ऐसे कर, शुल्क, पथकर व फीसें लगाने व संग्रहित करने का अधिकार रखेंगी, जिन्हें लगाने का अधिकार राज्य विधान-मण्डल उन्हें प्रदान करें। सम्बन्धित राज्य सरकारें राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायतों को पर्याप्त सहायता व अनुदान देने की व्यवस्था करेंगी। (अनुच्छेद- 243 एच)
12. राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के अन्दर तथा इसके बाद प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिए वित आयोग का गठन करेंगे। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्याख्या के साथ लागू करने के लिए राज्य विधानमण्डल में रखवाएगा। (अनुच्छेद- 243 आई)
13. पंचायतों को राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित ढंग से अपने आय-व्यय का लेखा-जोखा रखना होगा, जिसकी संपरीक्षा सरकार द्वारा करवाई जा सकेगी। (अनुच्छेद- 243 जे)
14. पंचायतों के मतदाताओं की नामावलियाँ बनाने तथा पंचायत चुनाव संचालित करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक निर्वाचन आयोग स्थापित किया जाएगा। जिसकी अध्यक्षता एक राज्य निर्वाचन आयुक्त करेगा। (अनुच्छेद- 243के)
15. इस अधिनियम द्वारा पंचायतों का क्षेत्राधिकार बताने वाली 11वीं अनुसूची संविधान में जोड़ी गई है, जिसमें 29 विषय सम्मिलित किए गये हैं। (अनुच्छेद- 243जी)

इन विषयों का विवरण निम्न है- कृषि प्रसार सहित कृषि; भू-सुधार एवं मृदा संरक्षण; लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध न एवं जल संभर विकास; पशुपालन, दुधशाला एवं मुर्गी पालन; मत्स्य पालन; सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी; लघुवन उत्पाद; खाद्य संसाधन उपयोगों सहित लघु उद्योग; खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग; ग्रामीण विकास; पेयजल; ईंधन; सडकें, पुलिया, सेतु, घाट, जल मार्ग एवं संचार के अन्य साधन; विद्युत वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण; ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोत; गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम; प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा; तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा; प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा; पुस्तकालय, बाजार एवं मेले; सांस्कृतिक क्रिया-कलाप; प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता; परिवार कल्याण; महिला एवं बाल विकास; सामाजिक कल्याण; कमजोर वर्गों का कल्याण, विशेषकर अनुसूचित जाति कल्याण; जल वितरण व्यवस्था; सामुदायिक सम्पत्ति का अनुरक्षण।

इस अधिनियम के द्वारा संविधान की धारा- 280 को भी इस रूप में संशोधित किया गया कि राज्यों के वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार पंचायतों हेतु राज्य की संचित-निधि में व्यवस्था की जा सके।

इस प्रकार 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा मृतप्रायः पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया है। संवैधानिक दर्जा दिए जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया। इस अधिनियम की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आई है और इनके निर्वाचन नियमिति होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को एक नवीन आयाम भी मिल रहा है।

2.5 ग्रामीण संस्थाओं की समस्याएं एवं सुझाव

यदि हम लोकतंत्र के सिद्धान्तों के लिए समर्पित हैं, तो स्थानीय स्तर पर स्वशासी संस्थाएं आवश्यक हैं। भारत में पंचायती राज संस्थाएं लोकतंत्र की बुनियाद हैं। इसकी सफलता ही लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करेगी। इसके अंतर्गत अधिकाधिक लोग सत्ता में भागीदारी कर सकेंगे, जिससे समाज का सर्वांगीण विकास होने के साथ-साथ लोकतांत्रिक ताने-बाने को भी नया आयामदिया जा सकेगा। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आजादी के वर्तमान परिवेश में ग्रामीण संस्थाओं को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। अतः आवश्यक है कि कुछ ऐसे सुझाव दिये जायें जिससे इस व्यवस्था से सकारात्मक परिणाम मिल सकें और सच्चाई के आइने में स्थानीय स्तर पर जनता का शासन स्थापित हो सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं-

1. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि को अपने अधिकारों, शक्तियों और दायित्व की पूरी जानकारी नहीं है। इन प्रतिनिधियों को समुचित रूप में जानकारी देने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकारी सूचना माध्यम की महत्तवपूर्ण भूमिका हो सकती है।
2. पंचायती राज व्यवस्था की 11वीं अनुसूची में वर्णित 29 विषयों के सन्दर्भ में ग्राम, ब्लॉक (क्षेत्र) एवं जिला पंचायतों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं किया गया है। अतः पंचायतों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकित कर इनकी जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
3. पंचायती राज व्यवस्था के काम-काज के बारे में गांव के लोगों को जानकारी नहीं है। अतः इसके लिए संचार सुविधाओं का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए, जिससे लोगों में जागृति उत्पन्न हो, ताकि विकास का लाभ गांस के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक पहुँच सके।
4. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत निर्वाचित महिलाओं के स्थान पर पति, भाई या अन्य रिश्तेदार बैठक में भाग लेते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को शिक्षित किया जाए, जिससे वे अपने अधिकारों को समझें और अपने दायित्वों का निर्वाह ईमानदारी पूर्वक कर सकें।

5. यह भी देखने में आया है कि पंचायत की बैठक नियमित रूप से नहीं हो पाती हैं। पंचायत अर्थात ग्राम सभा तो तभी काम करेगी जब इसकी नियमित बैठक हो। इस समस्या से निबटने के लिए औचक निरीक्षण कर कठोर से कठोर कदम उठाए जाने चाहिए।
6. वित्तीय संस्थाओं की कमी पंचायती संस्थाओं की बहुत बड़ी कमजोरी है। राज्य वित्तीय आयोग होने के बावजूद पंचायत संस्थान धन के अभाव से ग्रसित रहते हैं। अतः इस समस्या से निबटने के लिए उन्हें सक्षम बनाने के लिए पंचायती सम्पत्ति का न्यायोचित प्रयोग करने का अधिकार दिया जाना चाहिए तथा समुचित प्रशासनिक वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाए।
7. पंचायतों के प्रति नौकरशाही का नकारात्मक रवैया एक अवरोधक का कार्य करती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को सरल और सुलभ बनाया जाना चाहिए। साथ ही इससे जुड़े अधिकारियों की प्रोन्नति तथा पुरस्कार के मापदण्ड को सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिससे नौकरशाहों का रवैया जनता के प्रति सहयोगात्मक हो।
8. भ्रष्टाचार, हिंसा और पंचायत चुनाव में धन और शक्ति के वर्चस्व ने लोकतंत्र की इस बुनियादी इकाई को बेइमानी बना दिया है। इससे लोगों की जनसहभागिता जो ग्रामीण संस्थाओं का केन्द्र बिन्दु है, गंभीर तरीके से प्रभावित होती है। इस समस्या के समाधान के लिए कठोर कानून बनाकर भ्रष्ट एवं अपराधी तत्वों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। साथ ही साथ भ्रष्ट एवं अयोग्य प्रतिनिधियों को वापस बुलाने (Recall System) का अधिकार प्रदान किया जाए।
9. पंचायती राज व्यवस्था की समस्या में भारत के गाँवों का सामाजिक वातावरण भी उत्तरदायी है। ग्रामीण समाज न केवल अशिक्षित और रूढिवादी है बल्कि जाति-प्रथा में जकड़ा हुआ है। परिणामतः लोगों में अवसरों और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव देखने को मिलता है। इसके लिए जन-जागृति कार्यक्रम चलाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में जनसभा, संगोष्ठी, प्रदर्शनी, नुक्कड नाटक, आकाशवाणी कार्यक्रम, दूरदर्शन कार्यक्रम आदि किया जाना उल्लेखनीय पहल सिद्ध हो सकता है।

पंचायती राज व्यवस्था में अनेक खामियों के बावजूद इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। पंचायत के चुनावों ने समाज में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की है और राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि भी हुई है। चूँकि भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र में जनसहभागिता और विकेन्द्रीकरण प्रमुख तत्व होते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण, राजनीतिक-प्रशासनिक सहभागिता में उत्तरोत्तर वृद्धि और इन सब के लिए स्थानीय इकाइयों को मजबूती देना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत के किस काल-खण्ड में 'सभा' और 'समिति' का वर्णन मिलता है?
2. रामायण में कितने प्रकार के गांवों का उल्लेख मिलता है?
3. मनुस्मृति के अनुसार गांव के अधिकारी को क्या कहा जाता था?
4. किस अंग्रेज वायसराय के समय भारत के सभी गांवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया?
5. भारत में ग्रामीण संस्थाओं को सुदृण करने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल कब की गयी?
6. स्थानीय स्वशासन के इतिहास में 'अंधकार युग' कब से कब तक माना जाता है?
7. यह कथन किसका है? कि ''भारत की आत्मा गांवों में बसती है।''
8. भारत में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' की शुरूआत कब की गयी?
9. किस समिति ने अपनी शिफारिश में पंचायती राज संस्थाओं के त्रि-स्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया?
10. संविधान के किस अनुच्छेद में पंचायतों से सम्बन्धित प्रावधान किए गये हैं?

2.6 सारांश

सन प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ रूप यानी लोकतंत्र का ग्रासरूट अर्थात जमीनी स्तर पर स्थापना ग्रामीण संस्थाएं(पंचायती राज व्यवस्था) के माध्यम से ही हुई है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रतीक पंचायती राज संस्थाओं ने निर्धन, निरक्षर, असंगठित और उपेक्षित ग्रामीण जनता की आवाज व जुबान दोनों प्रदान की हैं। आरक्षण की व्यवस्था के चलते महिलाएं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़ेवर्ग के व्यक्तियों का राजनीतिक सशक्तीकरण हुआ है। पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार ने 73वां संवैधानिक संशोधन किया। पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय ढ़ाँचे को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया और अधिक अधिकार दिए गए। निःसंदेह रूप से इस संशोधन के बाद पंचायती राज संस्थाएं काफी सशक्त हुई है। हमें आशा की जानी चाहिए की आने वाले दिनों में पंचायती राज संस्थाएं लोगों की आकांक्षाओं और विश्वास को पूरा कर पाएंगी, जिससे सही मायनों में ग्राम स्वराज्य की अवधारणा फलीभूत होंगी।

2.7 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक स्थान पर केन्द्रीत ना होना या अलग-अलग स्थान, जनसहभागिता- सभी लोगों की भागीदारी, पहल- शुरूआत, न्यायोचित- न्याय की दृष्टि से सही, अवरोध- रूकावट, रूढिवादी- पुरानी मान्यताओं को मानने वाला या परिवर्तन को स्वीकार ना करने वाला, सुदृण- सुधार, उत्तरोत्तर वृद्धि- लगातार बढना, सशक्तिकरण- मजबुत बनाना

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वैदिक काल, **2.** घोष और ग्राम, **3.** ग्रामीक, **4.** लार्ड रिपन, **5.** 1919 में माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार के अन्तर्गत, **6.** 1939- 1946 तक, **7.** महात्मा गांधी, **8.** 02 अक्टुबर 1952, **9.** बलवंत राय मेहता समिति, **10.** अनुच्छेद-243

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0एस0 अलतेकर ‘‘प्राचीन भारतीय शासन पद्धतियां’’, भारतीय भंडार, इलाहाबाद, 1948
2. ए0आर0 देसाई, ‘‘रूरल सोसियोलॉजी इन इण्डिया’’ एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 1978
3. सत्यकेतु विद्याधर, ‘‘प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं एवं राजनीतिक विचार’’, मंसूरी, 1975
4. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, संपादन पौली, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1923
5. एस0आर0 माहेश्वरी ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सत्यकेतु विद्याधर, ‘‘प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं एवं राजनीतिक विचार’’, मसूरी, 1975
2. एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय शासन’’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय इतिहास में ग्रामीण संस्थाओं के विकास पर प्रकाश डालें।
2. ग्रामीण संस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. 73वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से ग्रामीण संस्थाओं(पंचायती राज व्यवस्था) की भूमिका को बताएं।
4. ग्रामीण संस्थाओं की समस्याओं को बताते हुए इनके सुझाव पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

इकाई- 3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि
3.3 सामुदायिक विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं
3.4 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं
3.5 सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप
3.6 जनसहभागिता की भूमिका
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

ग्रामीण भारत में निर्धनता, पिछड़ापन, अशिक्षा, मानव शक्ति के विकास में मुख्य रूप से बांधक है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के नीति निर्माताओं का ध्यान चहुँमुखी विकास के लिए गाँवों की ओर गया। यहाँ की कृषि अत्यन्त पिछड़ी हुई और प्रति उत्पादन का औसत भी अन्य देशों की तुलना में कम रहा है। लोगों को रोजगार सम्बन्धी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं और कौशल आधारित रोजगार की आवश्यकता है, जिससे लोग आत्म निर्भर हो सकें।

ग्रामीण जनता के रहन-सहन के स्तर में बहुमुखी सुधार करने का प्रयत्न सामुदायिक विकास कार्यक्रम है। इसके अंतर्गत 'जियो और जीने दो' तथा प्रत्येक को अपनी क्षमता के अनुसार विकसित होने का पूरा अवसर मिले; यह इस व्यवस्था का नैतिक समावेश है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस रूप में हो कि स्थानीय क्षेत्रों में समाज कल्याण एवं विकास का प्रथम केन्द्र बन सके। इस लक्ष्य को अमली जामा पहनाने के लिए अनेक कार्य निरूपित किए गये। इसमें मुख्य थे- जनता के मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करना, गांव के उत्तरदायी एवं क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना, गांव को आत्मनिर्भर बनाना, कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्वास्थ, संचार तथा शिक्षा को उन्नत बनाना आदि। इन कार्यों को फलीभूत करने के लिए ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पहल की गई।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- मानव विकास की अवधारणा में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को समझ पायेंगे।
- जनसहयोग के माध्यम से भारतीय समाज के विकास के सम्बन्ध में पायेंगे।
- अधिकतम लोगों के अधिकतम कल्याण की प्रक्रिया को जान पायेंगे।

3.2 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि

'नीति निर्देशक सिद्धान्तों' के उद्देश्य के अंतर्गत नवीन सामाजिक व्यवस्था करने हेतु साधनों की खोज आरम्भ हुई। वर्ष 1949 में वित्त आयोग ने सम्पूर्ण देश के लिए राष्ट्रीय प्रसार सेवा आरम्भ करने की अनुशंसा की थी। योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में सुरक्षित एकीकृत विकास के लिए ग्रामीण प्रसार सेवा की स्थापना का सुझाव दिया था। दोनों संकल्पनाएं सामुदायिक विकास और ग्रामीण प्रसार सेवा को एक इकाई मानकर व्याख्या की गई थी। इस प्रकार 02 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।

पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में वस्तुतः आगामी पाँच वर्षों में संपूर्ण देश में 05 सौ सामुदायिक केन्द्र स्थापित करने की कल्पना की गई थी। योजना आयोग ने कहा था, ''सामुदायिक विकास केन्द्र को इस रूप में विकसित करना सरल होगा कि वह ग्रामीण तथा नगरीय दोनों ही क्षेत्रों के समाज कल्याण कार्यों के समन्वित विकास का बीज केन्द्र सिद्ध हो सके।'' किन्तु वास्तविक रूप में कार्यक्रम का शुभारम्भ तभी किया जा सका, जब किसी संस्थान ने उसे सार्वजनिक रूप से उसे मान्यता दे दी और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने उसके व्यय को वहन करने की स्वीकृति दे दी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम सरकार द्वारा संचालित था। आरम्भ में कार्यक्रम के निर्वहन का दायित्व योजना आयोग में स्थापित नई इकाई सामुदायिक परियोजना प्रशासन को सौंपा गया था, किन्तु 1956 में इस इकाई का एक स्वतंत्र मंत्रालय सामुदायिक विकास मंत्रालय को मान्यता दी गई। वर्ष 1966 में इस मंत्रालय का कृषि एवं खाद्य मंत्रालय में विलय कर इसका नाम खाद्य, कृषि सामुदायिक विकास और सहयोग रखा गया। वर्ष 1974 के बाद सहयोग को कृषि मंत्रालय नवगठित औद्योगिकी और सहयोग का हिस्सा बना दिया गया। सामुदायिक विकास विभाग का प्रमुख कार्य कार्यक्रम सम्बन्धी नीतियों और खण्ड स्तर पर योजनाओं का निर्माण करना है। राज्य सरकार पर इस कार्यक्रम को लागू करने का दायित्व है। जिला स्तर पर जिला परिषद, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति, ग्राम स्तर पर पंचायत इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। राज्यों ने जिलाधीश को विकास कार्यक्रम को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व सौंपा। खण्ड विकास अधिकारी और ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता दोनों इस कार्यक्रम की नवीनता हैं। ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता जो ग्राम सेवक के नाम से प्रसिद्ध हुए, सामुदायिक विकास की प्रशासनिक सोपान की अंतिम कड़ी है।

वर्ष 1957 में भारत सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सुधार लाने हेतु 'बलवंत राय मेहता समिति' की स्थापना की गई। इस समिति ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की-

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की शुरूआत की जानी चाहिए।
2. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित द्विस्तरीय प्रणाली के स्थान पर त्रिस्तरीय राज प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर पंचायत समिति और शीर्ष स्तर पर जिला स्तर पर जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना की जानी चाहिए।
3. निर्वाचित स्थानीय निकायों की स्थापना करनी चाहिए और इन संस्थानों को प्रशासन की वास्तविक शक्तियां और उत्तरदायित्व प्रदान करना चाहिए।
4. स्थानीय निकायों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाएं।
5. योजना द्वारा बनाए गए समस्त सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रम स्थानीय संस्थाओं द्वारा चलाए जाने चाहिए।
6. एक ऐसी व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए जिससे शक्तियों और उत्तरदायित्वों का विकेन्द्रीकरण किया जा सके।

इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मूल भावना यह रही है कि इन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोग ना केवल नीति का ही निर्धारण करें, बल्कि उसके क्रियान्वयन तथा प्रशासन का नियंत्रण एवं मार्गदर्शन भी करें।

वर्ष 1969 तक देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्यक्रम फैल गया। ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वाधिक गरीब परिवारों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए और उन्हें निर्धनता रेखा से ऊपर उठाने के उद्देश्य से वर्ष 1978-79 में ''समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम'' नामक एक नवीन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार सामुदायिक विकास कार्यक्रम समन्वित विकास कार्यक्रम का एक अंग बन चुका है।

3.3 सामुदायिक विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं

सामुदायिक विकास का अर्थ है कि संपूर्ण समुदाय का विकास करना और उसे आत्मनिर्भर बनाना। सामुदायिक विकास एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय के लोग अपने सर्वांगीण विकास के लिए सरकार के साथ सहयोग करते हैं। सामुदायिक विकास को ग्रामीण जनता का सामूहित प्रयत्न माना गया है। इसलिए इसके क्रियान्वयन में स्वयं समुदाय के लोगों की सहभागिता पर बल दिया गया है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है जो निम्न है-

एस0आर0 देसाई के अनुसार, ''सामुदायिक विकास कार्यक्रम वह पद्धति है जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजना गाँव के सामाजिक और आर्थिक जीवन का स्थानान्तरण करने की एक प्रक्रिया प्रारम्भ करना चाहती है।''

के0सी0 टेलर के अनुसार, ''सामुदायिक योजना वह प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्ति, जो स्थानीय गाँवों में रहते हैं, अपनी आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं को उत्पन्न करने में सहायता देने के लिए प्रवृत्त होते हैं तथा भौतिक उन्नति के विकास में प्रभावशाली कार्यक्रम समूह बनाते हैं।''

आल्विन लैकी के शब्दों में, ''सामुदायिक विकास ऐसे व्यक्तियों की योग्यताओं और गुणों को प्रस्तुत करता है जो एक सामान्य क्षेत्र के निवासी हों और पारस्परिक निर्भरता का सम्बन्ध रखते हैं।''

3.4 सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताएं

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताऐं निम्नांकित हैं-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामवासियों की सभी समस्याओं का हल करने पर आधारित है। व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा और मकान हैं। उनमें गुणात्मक परिवर्तन लाना है, जिससे व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकें।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम जनता के आर्थिक पुनरुत्थान पर विशेष बल देता है। यह कार्यक्रम जनता के आर्थिक जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास करता है। कृषि के साथ-साथ कुटीर उद्योगों में व्यापक सुधार कर जनता को इस लायक बनाता है ताकि व्यक्ति अपनी दैनिक न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम का स्वरूप अवयवी है। यह कार्यक्रम इस बात पर विश्वास करता है कि कोई योजना जिस क्षेत्र में वह शुरू की गयी है, उसमें अपनी जड़ें मजबूती से जमा सके और अपने विकास के लिए बाहरी सहायता पर कम से कम निर्भर हो।
4. सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस बात पर विशेष बल देता है कि जनता को इस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सके जिससे कि वह इस योजना को अपना समझकर स्वीकार कर सके और बाहर से थोपी हुई चीजों को वह स्वीकार न करें चाहे इसके लिए सैद्धान्तिक पूर्णता का परित्याग ही क्यों न करना पड़े।
5. सामुदायिक विकास कार्यक्रम लोगों में अधिकाधिक श्रम करने की प्रेरणा देता है। अधिक श्रम से उत्पादन और उपयोग की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी जिससे जनता का जीवन सुखी होगा।

6. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्राम स्तर के बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ता को सशक्त रूप देना है। उसे कृषि, पशुपालन, उद्यानशास्त्र आदि के बारे में विशेष जानकारी होती है। यह कार्यकर्ता किसान को अधिकतम जानकारी देने का प्रयास करता है, जिससे कृषि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान कर सकें।

वर्ष 1954 में संयुक्त राष्ट्र संघ की क्षेत्रीय सभा में 'सामुदायिक विकास योजना' की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई गई-

1. इस योजना की मूल भावना होनी चाहिए कि व्यक्ति स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित हो जिससे कि उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो सके।
2. इस योजना के कार्यक्रम इस रूप में बनाए जाने चाहिए कि सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक कार्य की दशाओं में सहयोग प्राप्त हो सके। इसके साथ ही उनमें उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न हो सके।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के बारे में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "यह कार्यक्रम वास्तविक, ठोस, रचनात्मक काम है जिससे शांतिपूर्ण ढंग से क्रान्ति आयेगी। सिर फोड़ने और चिल्लाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह शांतिमय मौन क्रांन्ति प्रचण्ड स्वरूप की होगी। यह वास्तव में पृथ्वी को हिला देने वाली महान क्रांति होगी।"

3.5 सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप

सामुदायिक विकास कार्यक्रम अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम कल्याण की बात करता है। यह विचार 11वीं सदी में जेरेमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रकट किया गया था। भारत में यह विचार उस समय तक नहीं आया जब तक की उत्पादन में विशेषकर कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न की जाए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम की संरचना में कहा गया कि "सामुदायिक विकास परियोजना का उद्देश्य होगा कि वह उसके क्षेत्र में बसने वाले पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के लिए जीवित रहने के अधिकार की स्थापना करने में मार्गदर्शक का कार्य करे। कार्यक्रम की प्रारम्भिक उवस्था में प्राथमिक बल आहार पर दिया जाएगा जिसका इस लक्ष्य की प्राप्ति साधनों में प्रमुख स्थान है।"

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कार्यकलाप निम्नलिखित हैं-

1. **कृषि तथा समवर्ती क्षेत्र-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उपलब्ध अनगुनी तथा ऊजड़ भूमि को कृषि योग्य बनाना। कृषि के लिए सिंचाई नहरों, नलकूपों, सतही कूपों, तालाबों, नदियों, झीलों, और कुण्डों से ऊपर उठाकर सिंचन के द्वारा पानी की व्यवस्था करना। बेहतर बीज की व्यवस्था। समुन्नत कृषि प्रक्रिया की व्यवस्था। पशु चिकित्सा सम्बन्धी सहायता। उन्नत कृषि उपकरणों की व्यवस्था। बाजार और ऋण-सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था। पशु-पालन के लिए प्रजनन केन्द्रों की स्थापना। अंतर्स्थलीय मत्स्य क्षेत्रों का विकास। आहार-विद्या का पुनर्संगठन। फलों और सब्जियों के उत्पादन का विकास। मृत्तिका विषयक शोध और खाद्यों की व्यवस्था। तरूपालन (वनारोपण सहित) की व्यवस्था और परिणामों के मूल्यांकन की व्यवस्था।
2. **संचार साधन-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सडकों की व्यवस्था। यांत्रिक सड़क परिवहन सेवा को प्रोत्साहन। पशु-परिवहन का विकास।
3. **शिक्षा**- इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था। उच्च और माध्यमिक विद्यालयों का विकास। सामाजिक और पुस्तकालय-सेवाओं की व्यवस्था।
4. **स्वास्थ्य-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सफाई तथा लोक व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों की व्यवस्था। बीमारी के लिए चिकित्सा की व्यवस्था। प्रसूति-विद्या सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था।

5. **प्रशिक्षण-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यमान कारीगरों के स्तर में सुधार लाने के लिए पाठ्यक्रम। कृषकों का प्रशिक्षण। प्रसार-सहायकों का प्रशिक्षण। परिवीक्षकों का प्रशिक्षण। कारीगरों का प्रशिक्षण। प्रबन्धकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण। स्वास्थ्य-कर्मचारियों का प्रशिक्षण। परियोजनाओं के लिए कार्यकारी अधिकारियों का प्रशिक्षण।
6. **रोजगार-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों को मुख्य या गौण पेशों के रूप में प्रोत्साहन देना। मध्यम और लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना। नियोजित वितरण, व्यापार तथा कल्याणकारी सेवाओं के द्वारा रोजगार को प्रोत्साहन देना।
7. **आवास-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण आवास के लिए उन्नत तकनीक तथा डिजाइनों की व्यवस्था। नगरीय क्षेत्रों में रिहायशी मकानों की व्यवस्था।
8. **समाज कल्याण-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्थानीय प्रतिभा और संस्कृति पर आधारित सामुदायिक मनोरंजन की व्यवस्था। स्थानीय तथा अन्य प्रकार के खेल-कूद सम्बन्धी कार्यकलाप का संगठन।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम का कार्यकलाप व्यापक रूप ग्रहण किए हुए है।

3.6 जनसहभागिता की भूमिका

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह मानना था कि सामुदायिक विकास के तहत स्वयं जनताके प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जीवन का सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरण करने का प्रयत्न किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में कहा गया कि ''सामुदायिक विकास उन सभी क्रियाओं को करता है जिसके द्वारा समुदाय की आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक दशा सुधारने, इन समुदायों को राष्ट्र के जीवन में एकीकृत करने तथा राष्ट्र की उन्नति में उन्हें योगदान करने योग्य बनाने में व्यक्तियों के स्वयं के प्रयास सहकारी पदाधिकारियों के प्रयत्नों से समन्वित हो जाते हैं।'' इस प्रकार की जनसहभागिता को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न स्तरों पर सलाहकार समितियां बनी थी जिनके सदस्य सामान्य नागरिक हुआ करते थे। खण्ड स्तरीय सलाहकार समिति में ग्राम समितियों के सदस्य, राज्य विधानसभा के सदस्य और संसद सदस्य, सहकारी समितियों, प्रगतिशील किसान के सम्मिलित थे। जिला स्तरीय समिति में कुछ नागरिक तथा विभिन्न तकनीकी विभागों के प्रमुख शामिल थे। लेकिन सतही स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कुशल कार्यकर्ताओं का चयन, नहीं हो पाया। किसी भी कार्यक्रम की सफलता के लिए एक आवश्यक शर्त है- उस कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले लोगों में कार्यक्रम के प्रति विश्वास एवं उत्साह का होना। किन्तु ऐसा नहीं हो पाया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के उद्देश्य पर आधारित थे अर्थात ग्रामीण समाज में परम्परा के प्रभाव में कमी लाते हुए उन्हें आधुनिकता की ओर उन्मुख करना। ग्रामीण जनता के इन कार्यक्रमों को अपनी भावनाओं के प्रतिकूल समझा और इन कार्यक्रमों से दूरी बनाये रखी। गाँवों के शिक्षित एवं प्रभावशाली लोगों ने भी परम्परावादी और अशिक्षित ग्रामीण जनता को समझाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत इन योजनाओं का लाभ स्वयं लेना आरम्भ कर दिया। इससे गाँवों के एक वर्ग को तो लाभ मिला किंतु शेष जनता वहीं की वहीं रह गई।

सामुदायिक विकास की योजना अपने कार्यक्षेत्र को पूरी तरह से कवर नहीं कर पाई। यह ज्ञातव्य था कि ग्रामीण भारत अर्थात लगभग दो तिहाई प्रतिशत भारत का विकास किया जाना है किंतु सामुदायिक विकास हेतु प्रशासनिक संगठन का अधिक विस्तार नहीं किया गया। इस कारण योजना एवं कार्यक्षेत्र की सीमाओं के मध्य एक बड़ा असंतुलन उत्पन्न हो गया।

अतः यह माना जा सकता है कि सामुदायिक विकास का प्रशासन नौकरशाहों के हाथ में चला गया। इसके फलस्वरूप सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन में जनता की भागीदारी को उचित स्थान नहीं दिया गया जिसके लिए अपेक्षित था। जबकि जन भागीदारी से स्थानीय समस्याओं एवं तत्सम्बन्धी समाधान का ज्ञान

स्थानीय जनता को अधिक होता है। परिणाम स्वरूप सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रहा। रजनी कोठारी का मानना था कि "सामुदायिक विकास कार्यक्रम नौकरशाहों के द्वारा संचालित होने के कारण सफल नहीं हो सका।" रेनहार्ड बडिक्स का कथन था कि "सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमजोरी उसका सरकारी स्वरूप और नेताओं की लदफ्फाजी थी। एक तरफ इस कार्यक्रम के आधार जनता के आगे आने की आशा करते थे दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही नतीजा निकल सकता है। कार्यक्रम जनता को संचालित करना था, परंतु वे बनाए ऊपर से जाते थे।"

अभ्यास प्रश्न-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत कब की गयी?
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सुधार हेतु भारत सरकार द्वारा किस समिति का गठन किया गया?

3.7 सारांश

भारत के विकास के लिए ग्रामीण समाज का विकास अपरिहार्य है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाज का समग्र विकास सामुदायिक विकास है क्योंकि गाँव को एक समुदाय के रूप में माना जाता है। ग्रामीण समाज के विकास हेतु आरम्भ किए गए कार्यक्रम सामुदायिक विकास कार्यक्रम हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम कल्याण से है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कई कार्य निर्धारित किए गए। उनमें प्रमुख थे- पड़त तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, उन्नत कृषि यंत्रों की व्यवस्था, कृषकों तथा कर्मचारियों आदि का प्रशिक्षण, कुटीर उद्योगों को बढावा देना, आवास प्रबन्ध, लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम की व्यवस्था आदि। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1952 में इसलिए की गई जिससे कि आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुनरुद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की ग्रामीण जनता में सक्रिय रूचि पैदा की जा सके। किंतु दुर्भाग्यवश ग्रामीण स्तर पर योजना के कार्यान्वियन में ग्रामीण जनता को इच्छुक पक्ष न बनाया जा सका।

इतना सब होने के बावजूद भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं रही है। भारतीय ग्रामीण समाज कई कारणों से बहुत तेजी से रूपान्तरित हो रहा है। सरकार के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यक्रम जैसे- औद्योगीकरण, विद्युतीकरण, भूमि सुधार, भूमि सिंचन, यातायात के साधनों के विकास के द्वारा देश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रहे हैं। ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि जनता उसे अपना कार्यक्रम समझकर पूर्ण सहयोग एवं समर्थन प्रदान करे तथा विकास कार्य में लगे हुए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति निष्ठा का भाव रखे और सच्चाई, ईमानदारी, मेहनत और लगन से कार्य करें।

3.8 शब्दावली

पुर्नरुद्धार- दोबारा किसी चीज में सुधार करना, पुनर्निर्माण- किसी चीज को दोबारा बनाना, सामुदायिक- समुदाय के साथ पूर्ण रूप से किसी कार्य को करना, पुनरूत्थान- किसी को दोबारा जीवित करना, उजड़- बंजर, सम्मुनत- सुधार, अवयवी- अंग या अंश

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 02 अक्टुबर 1952, **2.** बलवन्त राय मेहता कमेटी

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एस0आर0 माहेश्वरी, "भारत में स्थानीय प्रशासन", आगरा, 2012
2. रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्टल ब्लैकवॉन, नई दिल्ली, 1970
3. वी0एन0 सिंह, जन्मेजय सिंह, "ग्रामीण समाजशास्त्र", विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2013
4. जी0आर0 मदन, "परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र", विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2015

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एस0आर0 माहेश्वरी, ‘‘भारत में स्थानीय प्रशासन’’, आगरा, 2012
2. वी0एन0 सिंह, जन्मेजय सिंह, ‘‘ग्रामीण समाजशास्त्र ’’, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2013

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामया’ की अवधारणा को चरितार्थ करता है, स्पष्ट कीजिए।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम की मुख्य विशेषताओं और कार्यकलापों का उल्लेख करें।
4. सामुदायिक विकास कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं तथा क्या आप मानते हैं कि जनसहभागिता के आभाव में सामुदायिक विकास कार्यक्रम असफल रहा है?

इकाई- 4 बलवन्त राय मेहता समिति प्रतिवेदन एवं त्रिस्तरीय व्यवस्था

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य
4.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन
4.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां
4.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था
    4.5.1 ग्राम पंचायत
    4.5.2 पंचायत समिति
    4.5.3 जिला परिषद
4.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वन
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

भारत गांवों का देश है, जिसकी प्रतिशत जनसंख्या 05 लाख 75 हजार गांवों में निवास करती है। यहाँ पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्व स्वतः सिद्ध और सर्वथा असंदिग्ध है। वस्तुतः ग्रामीण शासन सम्बन्धी विचार जनता के सामाजिक और आर्थिक उन्नति की महती चिन्ता का एक अंग मात्र है। हमारा देश अत्यन्त प्राचीन काल से ही जनकल्याण के लक्ष्य के प्रति अटूट रूप से समर्पित है। इस शब्द का प्रयोग करते ही हमारा ध्यान सुदूर धुंधले अतीत की तरफ बरबस हो चला जाता है, इसलिए ग्रामीण विकास प्रारम्भ से ही भारतीय शासन के चिन्ता का मुख्य विषय रहा है। इसी उद्देश्य को लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सविधान में नीति निदेश क तत्वों के तहत गांवों को स्वशासन की इकाई के रूप में विकसित करने का विचार रखा गया। ग्रामीण विकास को दृष्टिगत रखकर ही 02 अक्टूबर 1952 ई0 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' का आरम्भ केन्द्र सरकार के द्वारा किया गया। यह सरकार द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में जनता की भागीदारी के बारे में एक नयी सोच थी सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस ढंग से बनाया गया था कि यह निरन्तर विस्तृत होता चला जाय और अन्ततोगत्वा यह सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र तक विस्तृत हो जाय। इसके बाद 1953 में सारे देश में 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' स्थापित की गयी। इसके लिए सारे देश को विकास खण्ड में बांट दिया गया। प्रत्येक विकास खण्ड का प्रशासनिक अधिकारी विकास अधिकारी को बनाया गया। जनता का सहयोग लेने के लिए तदर्थ सलाहकारी समितियां बनायी गयी परन्तु इनमें नामित सरकारी अधिकारी ही अधिक होते थे। इसमें सामुदायिक विकास के प्रशासन का उत्तरदायित्व नौकरशाही के कंधों पर था। किन्तु विद्यमान संगठनात्मकढ़ाँचे में हेर फेर कर दिया गया था। इस कार्यक्रम के अधीन सरकार ने ग्रामीणों के सहयोग से विकास योजनाएं बनायी थी तथा इस बात का ध्यान रखा गया था कि ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता और खण्ड विकास अधिकारी दोनों का नीति निर्धारण में समन्वय बना रहे। सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन ने जनता का विश्वास नहीं किया। अतः अपेक्षित जन सहयोग के

अभाव यह कार्यक्रम अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा। इन सभी कदमों ने स्वायतशासी इकाईयों के रूप में पंचायतों को पनपने नहीं दिया।

अतः सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करने तथा ग्रामीण विकास की अवधारणा को पुर्नस्थापित करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 1956 ई0 में एक समिति की नियुक्ति की जिसका नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' था, इसके अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता थे। इसलिए इसको बलवन्त राय मेहता समिति भी कहा जाता है। इस समिति का कार्यक्षेत्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता के कारणों की जांच करने के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन की स्थापना के मजबूत आधार का उल्लेख करना था। ग्रामीण विकास या स्थानीय शासन के इतिहास में यह समिति तथा इसके सुझाव मील के पत्थर साबित हो रहें है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह समझ पाओगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायत व्यवस्था का विकास कैसे प्रारम्भ हुआ।
- पंचायती राज के वर्तमान स्वरूप को स्थापित करने में इस समिति का क्या योगदान था, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।
- त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था की नींव कब और कैसे पड़ी, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।

4.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य

बलवन्त राय मेहता समिति का निर्माण भारत सरकार के अधीन 'कमेटी ऑन प्लान प्रोजेक्ट्स' (आयोजक परियोजना समिति) ने सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा का अध्ययन करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए की थी। इसलिए इसका पूरा नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' है। विशेष रूप से समिति को निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा हेतु कर्मचारियों की आवश्यकता का आकलन और प्रशिक्षण की विद्यमान सुविधाओं का परीक्षण जिससे कार्यक्रम के प्रसार के लिए कर्मचारियों की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार-सेवा की उपलब्धियों का जिक्र करने के लिए अपनायी गयी पद्धतियां।
3. केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों, मन्त्रालयों, केन्द्र-राज्य सरकारों तथा सामुदायिक विकास प्रशासन के विभिन्न अभिकरणों तथा राज्य सरकार के संगठनों एवं विभागों के बीच तालमेल।
4. सामुदायिक विकास परियोजना के कार्यक्रम की अन्तर्वस्तु तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्षेत्रों के लिए निर्धारित की गयी प्राथमिकताएं।
5. इस बात की जांच करना कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करने में तथा ऐसी संस्थाओं का निर्माण करने में कहाँ तक सफल हुआ, जिनके द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास तथा सामाजिक दशा के सुधार की प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखा जा सके।
6. अन्य किसी प्रकार के सुझाव जिनको समिति ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के क्रियान्वयन में मितव्ययता लाने हेतु आवश्यक समझे।

मेहता समिति ने देश भर के चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, स्थानीय अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिध्यात्मक संगठनों के प्रतिनिधियों, विभागों के अध्यक्षों और विकास विभाग के सरकारी सचिवों से बातचीत

की। समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि तत्कालीन स्थानीय संस्थाएं कार्य कर सकती हैं या नहीं, यदि नहीं तो फिर कौन सी नयी संस्थाएं किस क्षेत्र किन शक्तियों और साधनों के साथ निर्मित की जाय। तत्कालीन जिला बोर्ड का अध्ययन करते हुए समिति ने उनकी अयोग्यताओं पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला। समिति का मानना था कि जिला बोर्डों ने उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की, जिनके लिए उनको स्थापित किया गया था। उन्हें लोगों को स्वशासन की शिक्षा देनी चाहिए थी, लेकिन यह उनकी परम्परा नहीं रही और न तो उनके पास इस तरह के साधन थे कि वे ऐसा कर सकें। उन्हें कार्य तो सौंप दिया गया था। लेकिन उन्हें इतना साधन सम्पन्न नहीं बनाया गया था, जिससे वे अपनी समस्याओं का समुचित समाधान कर सकें। अध्यक्ष व सदस्य इस स्थिति में नहीं थे कि वे तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए समय दे सकें। वे अधिकांश कार्यों को अधिकारियों पर छोड़ने के लिए बाध्य थे, इसलिए अनुभवी अधिकारियों की नियुक्ति आवश्यक थी। राज्यों की भी प्रवृत्ति यह रही कि उन्होंने जिला बोर्डों से कई कार्य वापस ले लिये। इसके अलावा वहाँ दोहरे शासन की स्थिति भी पायी जाती थी।

समिति ने प्राथमिक शिक्षा को जिला बोर्डों के अधिकार में रखने की व्यवस्था से भी असहमति प्रकट किया, क्योंकि जिला बोर्ड स्वयं अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए आर्थिक रूप से सरकार पर निर्भर थे। इसलिए वे उनकी समस्याओं में बहुत ही कम रूचि दिखाते थे। पंचायतों को भी जिला बोर्डों से जोड़ने के विचार को श्रेयस्कर नहीं माना गया। समिति का विचार था कि पंचायतों को जिला बोर्ड से सीधे जोड़ना न तो सरल होगा और न ही सुविधानक और व्यवहारिक। कई राज्यों में एक ही जिले में कई सौ ग्राम पंचायतें हैं और उनमें से कई का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उनकी इतनी बड़ी संख्या भी असुविधा का एक बड़ा कारण है। ऐसी स्थिति में जिला बोर्ड और पंचायतों के बीच सामंजस्य एक बड़ी समस्या है।

4.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन

उपर्युक्त समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात समिति ने 24 नवम्बर 1957 ई0 को अपना प्रतिवेदन तत्कालीन सरकार को सौंपा। जिसमें उसके द्वारा कई महत्वपूर्ण जानकारियों पर भारी आश्चर्य व्यक्त किया गया था। समिति ने देखा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय प्रसार सेवा के कार्यक्रम जनता में अभिक्रम की प्रवृत्ति पैदा करने में सफल नहीं हुए। जिससे जनता इन कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग नहीं की। पंचायतों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन नहीं किया गया। पंचायत स्तर के ऊपर के स्थानीय निकायों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया गया। इन तथ्यों से समिति को गहरा आघात लगा।

समिति का दृष्टिकोण था कि इन व्याघियों को समाप्त करने के लिए सबसे बढ़िया उपाय यह है कि राज्य के नीचे के स्तरों पर शक्ति तथा उत्तरदायित्व का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। उसका सुझाव था कि ''शक्ति को एक ऐसे निकाय को अन्तरित कर दिया जाय जो निर्मित हो जाने पर अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत विकास कार्य का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले ले। सरकार पथ-प्रदर्शन, परिवीक्षण तथा उच्चतर आयोजन का काम अपने हाथों में सुरक्षित रखे और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान करें।'' अर्थात समिति का प्रमुख निष्कर्ष यह था कि आम लोगों को ग्रामीण विकास योजनाओं में भागीदार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि योजना और प्रशासनिक सत्ता दोनों का विकेन्द्रीकरण हो। इस रिपोर्ट में पहली बार विकेन्द्रीकरण के साथ लोकतान्त्रिक शब्द जोड़ा गया। इसका आशय था कि जो लोकतान्त्रिक पद्धति हमारे देश में अपनायी गयी है उसमें सभी ग्रामीण सक्रिय रूप से भाग लें। जिससे सामान्य नागरिक यह महसूस करें कि शासन प्रक्रिया में उसका भी योगदान है। समिति के रिपोर्ट में कहा गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का विकास इसलिए नहीं हो पाया कि इसमें जनता के सहभागिता का अभाव था। जनता स्थानीय क्रियाकलापों में तभी सक्रिय रूचि लेगी जबकि उसके लिए प्रतिनिधि सभाएं गठित की जाय।

विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट करते हुए समिति ने कहा कि सरकार के कार्यों व अधिकारों को निचले स्तर पर स्थानान्तरित करने के साथ-साथ उनको वित्तीय दृष्टि से भी सबल बनाया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायों के हाथों में हो। रिपोर्ट में कहा गया कि बिना जिम्मेदारी और अधिकारों के विकास कार्यों में प्रगति नहीं हो सकती। सामुदायिक विकास सही अर्थों में तभी हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, आवश्यक अधिकारों का प्रयोग कर सके और स्थानीय प्रशासन पर लगातार और समझदारी के साथ निगाह रख सके। इस उद्देश्य से हम शीघ्र ही चुने हुए संविधानिक एवं निर्वाचित निकायों की स्थापना की सिफारिश करते हैं और आवश्यक संसाधन, अधिकार तथा प्राधिकार सौंपे जाने की संस्तुति करते हैं।

4.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां

बलवन्त राय मेहता समिति के द्वारा विकेन्द्रीकरण को प्रभावी बनाने के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित संस्तुतियां की गयी थी -

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु प्रस्तावित पंचायती राज की योजना ग्राम से लेकर जिला स्तर तक त्रि-स्तरीय होनी चाहिए (शीर्ष पर जिला परिषदें, बीच में पंचायत समिति तथा निचले स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना की जाय)। ये तीनों स्तर एक-दूसरे से जुड़े होने चाहिए। रिपोर्ट में पंचायत समिति को इस ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। समिति के अनुसार इन संस्थाओं को कानूनी दर्जा मिलना चाहिए, इनके अधिकार व कर्तव्य साथ-साथ परिभाषित होने चाहिए और इन्हें सरकारी नियन्त्रण में नहीं रखा जाना चाहिए।
2. सरकार को क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी कुछ कार्यों एवं दायित्वों को इन निकायों को सौंप देना चाहिए और अपने को केवल निर्देशन, परीक्षण और उच्च नियोजन तक ही सीमित रखना चाहिए।
3. विकास खण्ड स्तर पर अपने क्षेत्र में विकास सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक निर्वाचित स्वशासित संस्था की स्थापना की जाय।
4. समिति ने इस बात पर अधिक बल दिया कि लोकतन्त्रीय संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण किया जाय ताकि निर्णय लेने के केन्द्र जनता के अधिक निकट हो और जनता इन निर्णयों में भाग ले सके साथ ही नौकरशाही अथवा सरकारी कर्मचारी स्थानीय जनता के नियन्त्रण में काम करें। इसके अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं के पर्याप्त अधिकार दिये गये। उन्हे अपने क्षेत्र के विकास-विषयक कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी बनाया गया।
5. इन निकायों को अपना कार्य करने के लिए समुचित वित्तीय साधन मिलना आवश्यक है, इसके लिए एक कानून बनाकर आप के कुछ साधन इन्हें सौंप देने चाहिए। इसके अलावा राज्य सरकार इनको पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करे जिसमें पिछड़े हुए क्षेत्र हेतु विशेष ध्यान दिया गया हो।
   पंचायत समिति का गठन ग्राम पंचायतो द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए सदस्यों द्वारा हो। इनका क्षेत्राधिकार इतना व्यापक नहीं होना चाहिए कि वह अपने उद्देश्य में विफल हो जाय, साथ ही साथ इतना सीमित भी नहीं होना चाहिए कि वे मितव्ययता व कार्यकुशलता के मार्ग में बाधक बन जाय।
6. पंचायत समिति को कृषि विकास, पशुपालन, स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी कार्य सौंपे जाऐं। विकास सम्बन्धी इन योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु पंचायत समिति को राज्य सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिए।
7. समस्त केन्द्रीय व राजकोष जो विकास खण्ड क्षेत्र के विकास हेतु दिये गये हो पंचायत समिति द्वारा ही खर्च किये जाने चाहिए। समिति ने आषा व्यक्त की कि सरकार पंचायत समिति के अधिकार क्षेत्र के

अन्तर्गत आने वाले विषयों में काम बन्द कर देगी और यदि किन्ही विशेष परिस्थितियों में उसे करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण के द्वारा ही करेगी।

8. यद्यपि सरकार को पंचायत समिति के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु साथ ही साथ उसका यह भी विचार था कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सरकार का नियन्त्रण आवश्यक होगा। उदाहरण स्वरूप सरकार के हाथों में सार्वजनिक हित में पंचायत समिति के कार्यों को स्थगित करने तथा उसको भंग करने का अधिकार होना चाहिए। जिलाधिकारी को यह अधिकार हो कि यदि पंचायत समिति का कोई प्रस्ताव शान्ति भंग करने वाला, संविधान विरूद्ध अथवा राष्ट्रीय कानून के विरूद्ध हो तो वह उसे स्थगित कर दे।
9. पंचायतों के गठन के सम्बन्ध में समिति का सुझाव था कि ग्राम पंचायत स्तर पर चुने गये सदस्योंमें दो महिलाएं, एक अनुसूचित जाति तथा एक अनुसूचित जनजाति से होना चाहिए। ग्राम पंचायत का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। मध्य स्तर पर सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायतें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से करें। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं हो जो बच्चों और महिलाओं के काम में दिलचस्पी लेती हों। इसमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को आरक्षण देने की सिफारिश भी की गई थी। पंचायत समितियों के प्रधानों के अलावा सांसद व राज्य विधान सभा के सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होगें। जिला परिषद पंचायत समितियों व सरकार के बीच कड़ी का काम करें।
10. पंचायतों के आय का मुख्य स्रोत सम्पत्ति कर, गृहकर, बाजार था सवारी पर कर, चुंगी कर बिजली व पानी कर, पशु मेले पर कर एवं पंचायत समिति से प्राप्त वित्तीय आय होनी चाहिए।
11. ग्राम पंचायतों के बजट का अनुमोदन पंचायत समिति द्वारा होना चाहिए तथा ग्राम पंचायत का स्थगन केवल राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद की संस्तुति पर होनी चाहिए।
12. ग्राम पंचायतों के आवश्यक कर्तव्यों में जलपूर्ति, सफाई, रोशनी, सड़कों का रख-रखाव, भूमि प्रबन्ध, भूलेखों का संकलन और प्रबन्ध तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण सम्बन्धी कार्य आते हैं।
13. न्याय पंचायतों का क्षेत्र ग्राम सभा से ज्यादा बड़ा होगा। विभिन्न पंचायत समितियों के मध्य समनवय स्थापित करने के लिए एक जिला परिषद होगी। जिसमें इन समितियों के प्रमुख, उस क्षेत्र के लोक सभा और विधान सभा के चुने हुए सदस्य एवं जिला स्तर के अन्य अधिकारी होगें। जिलाधिकारी उसका अध्यक्ष होगा।
14. समिति के विचार में जिला परिषद के कार्यकारी काम नहीं होगें, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिसके फलस्वरूप प्रारम्भिक समिति में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर आंच आयेगी।
15. जिला परिषद मात्र पंचायत समितियों के बजट को स्वीकृति देगी, मांगों को सरकार की ओर अग्रसर करेगी, सरकार से प्राप्त धन को खण्डों में वितरित करेगी, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा और समितियों के गतिविधियों का मार्ग निर्देशन आदि कार्य करेगा।

4.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों में पंचायत व्यवस्था के त्रिस्तरीय स्वरूप कीसिफारिश की गई थी। निचले स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर क्षेत्र पंचायत और सबसे ऊपर जिला परिषद अर्थात् ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खण्ड स्तर पर क्षेत्र पंचायत तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। जिनका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकाता है-

4.5.1 ग्राम पंचायत

त्रिस्तरीय व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी। जिसका निर्माण निर्वाचन द्वारा किया जाना चाहिए। इसके सदस्यों का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं दो अनुसूचित जाति तथा दो अनुसूचित जनजाति में से लिए जाने चाहिए। आईये ग्राम पंचायत को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **ग्राम पंचायत के कार्य-** समिति के द्वारा ग्राम पंचायतों को निम्नलिखित कार्य एवं अधिकार देने की संस्तुति की गई जल की व्यवस्था करना, गांव के साफ-सफाई का प्रबन्ध करना, गलियों, नालियों व तालाबों के रख-रखाव का प्रबन्ध करना, गांव की गलियों में प्रकाश की व्यवस्था, भूमि प्रबन्ध, गांव की सड़कों, पुलियों, पुलों व नालों की देख-रेख, संकट में सहायता देना, प्राथमिक पाठशालाओं का परिवीक्षण, पशुओं से सम्बन्धित अभिलेखों का रख-रखाव आकाड़ों को एकत्रित करना और संरक्षण देना, पिछड़े हुए वर्गों का कल्याण और भू-राजस्व की वसूली आदि। इन कामों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत विभिन्न विकास परियोजनाओं अथवा अन्य कार्यकलापों में पंचायत समिति के अभिकरण के रूप में भी कार्य कर सकती है।
2. **वित्त-व्यवस्था या आय व्यवस्था-**समिति ने ग्राम पंचायत के अन्य के मुख्य स्रोतों को निम्न प्रकार वर्णित किया है- सम्पत्ति कर अथवा गृह कर, हाटों तथा बाजारों पर कर, चुंगी व सीमा कर, साईकिलों, गाड़ियों, बोझा ढोने वाले पशुओं, नावों आदि पर कर, सफाई और जल कर, गांव क्षेत्र में बिकने वाले पशुओं पर पंजीकरण शुल्क,बूचड़खानों पर कर, मवेशी खानों से आय और पंचायत समिति से प्राप्त अनुदान।

   कर की वसूली सन्तोषजनक नहीं थी, इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि कानून द्वारा यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि जो व्यक्ति पिछले वर्ष के करो को अदा नहीं किया है। उसे आने वाले पंचायत के चुनाव में मतदान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। यदि किसी पंचायत सदस्य के द्वारा छः महीने से अधिक तक कर अदा नहीं किया जाय तो उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जानी चाहिए।
3. **नियन्त्रण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति को ग्राम पंचायत के पुनरीक्षण व स्वीकृति का अधिकार दिया जाना चाहिए। जिससे पंचायत समिति ग्राम पंचायत के ऊपर नियन्त्रण रखने का कार्य भी करें।

4.5.2 पंचायत समिति

मध्यम स्तरीय या खण्ड स्तरीय निकाय को मेहता समिति ने पंचायत समिति का नाम दिया। समिति के अनुसार पंचायत समिति एक निर्वाचित व संविधानिक निकाय होनी चाहिए। उसके कार्य विस्तृत हो तथा उसके पास आवश्यक कार्यकारी शक्ति और समुचित साधन हो। इसे सरकार के हस्तक्षेप या व्यापक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य का अधिकार हो। सरकार द्वारा उसे आवश्यक पथ-प्रदर्शन भी मिलना चाहिए। पंचायत समिति को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **पंचायत समिति के कार्य-** समिति के द्वारा त्रिस्तरीय व्यवस्था में पंचायत समिति को सबसे महत्वपूर्ण इकाई माना गया क्योंकि समिति का मानना था कि ग्राम पंचायत इतनी छोटी है कि उसे प्रशासन की सफल इकाई नहीं बनाया जा सकता है और जिला परिषद जनता से इतनी दूर होगी कि जनता उसमें सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकेगी। यह ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाई के रूप में कार्य करने के साथ-साथ अपने क्षेत्र के सभी विकास कार्यों की भी एकमात्र सत्ताधारी संस्था होगी। इस हेतु वह कृषि, पशुपालन, ग्रामीण-उद्योग, सहकारिता, लघु सिंचाई, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य, स्थानीय संचार साधन, स्थानीय सुविधाएं आदि विकास कार्यों को सम्पन्न करेगी। इसलिए सरकार उसके कार्यक्षेत्र में

कोई कार्य नहीं करेगी और यदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण द्वारा ही करेगी। इस प्रकार राज्य पर्यवेक्षण, मार्ग दर्शन, उच्च स्तरीय आयोजन व वित्तीय सहायता देने तक ही अपने को सीमित रखेगा।

2. **वित्तीय व्यवस्था-** बलवन्त राय मेहता समिति ग्रामीण संस्थाओं के वित्तीय समस्याओं से भलीभाँति परिचित थी। इसलिए उसने इस समस्या की ओर समुचित ध्यान दिया और पंचायत समिति के आय के लिए निम्नलिखित साधन पंचायत समितियों को सुपुर्द करने की संस्तुति की- विकास खण्ड में वसूल किये जाने वाले भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत भाग, व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर, विकास खण्ड की अचल सम्पत्तियों, घाटों, मत्स्य क्षेत्र से प्राप्त कर व लाभ, सड़क व पुलों पर प्राप्त चुंगी कर, मनोरंजन के साधनों से प्राप्त कर, प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी उप-कर, समय-समय पर लगने वाले मेलों व हाटों पर लगने वाले कर, ऐच्छिक सार्वजनिक चन्दे, मोटर-गाड़ी कर का एक भाग, तीर्थ यात्री कर, जल कर तथा भू-राजस्व कर आदि पर उप-कर और सरकार से प्राप्त अनुदान।

   समिति की संस्तुति है कि विकास खण्ड क्षेत्र में केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा जो भी धनराशि खर्च की जाय वह निर्अपवाद रूप से पंचायत समिति को दे दी जानी चाहिए और उसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खर्च करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो केवल उन संस्थाओं को अपवाद माना जा सकता है जिनको सहायता देना या तो पंचायत समिति के कार्य कलाप के बाहर है या उनके वित्तीय साधनों से परे है।

3. **नियन्त्रण-** बलवन्त राय मेहता समिति ने संस्तुति की कि पंचायत समिति के कार्यों में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में समिति ने सरकार का नियन्त्रण आवश्यक माना। ये विशेष परिस्थितियां है, यदि समिति के किसी प्रस्ताव से शान्ति भंग की आशंका हो, प्रस्तावित कार्य संविधान या देश के किसी प्रचलित कानून के विरूद्ध हो तो जिलाधिकारी उसे स्थगित कर सकता है।

4. **कर्मचारीगण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति में दो प्रकार के कर्मचारी व अधिकारी होंगे। प्रथम, खण्ड स्तर पर और द्वितीय, ग्राम पंचायत स्तर पर। खण्ड स्तर के अधिकारियों में खण्ड विकास अधिकारी, कृषि, सिचाई, सड़कों, इमारतों, लोक स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा आदि की देखरेख करने वाले तकनीकी तथा प्रसार अधिकारी सम्मिलित होंगे। खण्ड विकास अधिकारी कार्यकारी अधिकारी होगा। समिति के अनुसार खण्ड विकास अधिकारी में सांविधिक रूप से प्रशासकीय शक्ति निहित होनी चाहिए।

   ग्राम स्तरीय कर्मचारियों में ग्राम सेवक, प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक आदि आते हैं। इनकी भर्ती जिला परिषद द्वारा की जानी चाहिए तथा इन्हें विभिन्न पंचायत समितियों को सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए। ये कर्मचारी प्रशासन और कार्य दोनों के दृष्टि से खण्ड विकास अधिकारी द्वारा नियन्त्रित होंगे।

4.5.3 जिला परिषद

बलवन्त राय मेहता समिति का मानना था कि जिले स्तर पर भी कोई ऐसा संगठन होना चाहिए जो जिले के पंचायत समितियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करे। इस हेतु उसने जिला स्तर पर जिला परिषद के स्थापना की संस्तुति की और कहा कि जिला परिषद पंचायत समितियों में तालमेल स्थापित करने के साथसाथ उसके परिवीक्षण का कार्य करेगी किन्तु उसके हाथों में कार्यकारी शक्ति नहीं होनी चाहिए।

1. **जिला परिषद के सदस्य-** जिला परिषद में जिले के अन्तर्गत आने वाले सांसद, विधायक, पंचायत समितियों के अध्यक्ष, कृषि, लोक स्वास्थ्य, पशु चिकित्सा, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, अभियन्त्रण, सार्वजनिक निर्माण तथा विकास विभागों के जिला स्तर के अधिकारी आदि सदस्य होंगे। जिलाधिकारी जिला परिषद का अध्यक्ष होगा तथा एक अन्य अधिकारी उसका सचिव होगा।

2. **जिला परिषद के कार्य-** जिला परिषद का मुख्य कार्य केवल पंचायत समितियों का परिवीक्षण तथा उनमें समन्वय स्थापित करना था। समिति की संस्तुति थी कि ''हमारा ऐसा विचार नहीं है कि इस परिषद के कार्यकारी काम होगे। उससे तो स्थानीय अभिक्रम को ठेस पहुँचेगी तथा फलस्वरूप प्रारम्भिक वर्षों में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर भी आंच आयेगी।'' समिति की संस्तृतियों में जिला परिषद के निम्नलिखित कार्यों की अनुशंसा की गयी थी-
   - जिला परिषद सरकार द्वारा जिले के लिए दी गयी धनराशि को पंचायत समितियों को वितरित करेगी।
   - जिला परिषद जिले के समस्त पंचायत समितियों के बजट का परिवीक्षण तथा अनुमोदन करेगी।
   - जिला परिषद जिले की विकास खण्ड योजनाओं को एकीकृत व समन्वित करेगा।
   - जिला परिषद पंचायत समितियों द्वारा अनुदानों हेतु दिये गये आवेदन पत्रों को एकीकृत कर सरकार को अग्रसारित करेगी।
   - जिले के पंचायत समितियों के कार्यों का परिवीक्षण भी जिला परिषद के द्वारा किया जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बलवन्त राय मेहता समिति ने स्थानीय स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था की संस्तुति की। मेहता समिति की संस्तुतियों ने विद्यमान ग्रामीण शासन की व्यवस्था को प्रभावमयी व उचित व्यवस्था में रूपान्तरित कर दिया। इसकी संस्तुतियां वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था को आधार प्रदान करने का कार्य की। वर्तमान व्यवस्था के स्थापना में समिति की संस्तुतिया मील का पत्थर साबित हो रही है।

4.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वयन

बलवन्त राय मेहता समिति का मत था कि ये संस्तुतियां उस शासन तन्त्र का एक व्यापक चित्र हैं। जिसे हम लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए आवश्यक समझते हैं और जिसके द्वारा प्रभावकारी ग्रामीण विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन कुछ राज्य सरकारों ने यह मत व्यक्त किया कि उनके राज्य में जो परिस्थितियां हैं, उनको देखते हुए वे एक ऐसे स्थानीय निकाय का शक्ति अन्तरित करना उचित तथा सुविधाजनक समझते हैं जिसका अधिकार क्षेत्र जिले जितना बड़ा हो। यद्यपि हमारा विश्वास है कि, एक छोटे निकाय को शक्ति अन्तरित करना लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सबसे प्रभावकारी तरीका होगा। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार का अन्तरण जिले के निकाय को ही किया जा सकता है।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों का अध्ययन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया। तत्पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। जिसमें वहस के उपरान्त समिति के प्रायः सभी सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद ने यथावत स्वीकार कर लिया। इसके बाद इस प्रस्ताव को केन्द्र सरकार ने राज्यों के पास भेज दिया। राज्यों को यह विशेषाधिकार दिया गया कि हर राज्य इस सम्बन्ध में अपने-अपने नियम बनाये और अपनी इच्छानुसार पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें। स्थानीय शासन की केन्द्रीय परिषद ने इस बात का समर्थन किया कि पंचायती राज का वह स्वरूप स्वीकार किया जाय जो परिस्थितियों के अनुकुल हो, जटिल न हो, क्योंकि हमारा देश अत्यन्त विशाल है। इसलिए इसका रूप भिन्न-भिन्न राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। सन् 1959 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने संस्तुति की कि वाह्य ढ़ाँचा व प्रधान तत्वों में एक रूपता हो सकती है किन्तु आकार, प्रकार में जटिलता नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः देश इतना विशाल है और पंचायती राज (लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण) इतना जटिल विषय है तथा उसके परीक्षण की पूरी-पूरी गुंजाइश है। अधिक महत्व की बात यह है

कि जनता को शक्ति का अन्तरण करना है। यदि यह सुनिश्चित हो जाय तो रूप व आकार-प्रकार में विभिन्न राज्यों में विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार भिन्नताएं हो सकती हैं।

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु के सुझाव के अनुसार इस त्रिस्तरीय प्रशासन की प्रक्रिया का विशुद्ध भारतीय नाम 'पंचायती राज' रखा गया। मद्रास राज्य 1957 के आरम्भ से ही जनवादी विकेन्द्रीकरण के एक अगुवा खण्ड को प्रयोग के तौर पर अपने ढंग से चला रहा था। इस खण्ड के अनुभव मौजूद थे। आन्ध्र प्रदेश के हर जिले में इस तरह का एक खण्ड था। बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों के अनुसार राजस्थान राज्य के अनुभवों से प्रेरित होकर 02 अक्टूबर (महात्मा गाँधी का जन्मदिन) 1959 ई0 में सम्पूर्ण प्रदेश को जनवादी विकेन्द्रीकरण के अधीन लाने की पहल पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नागौर जिले में दीपक जलाकर पंचायती राज का उद्-घाटन किया। जिसके तहत सम्पूर्ण राज्य को 232 सामुदायिक विकास खण्डों में बांट दिया गया और राज्य के विकास की जिम्मेदारी जनता और पंचायत से शुरु कर उनके ऊपर के प्रतिनिधियों को सौप दी गयी। 1959 ई0 में आन्ध्र प्रदेश सभी सक्रिय सामुदायिक विकास खण्डों और सब जिलों की जिला परिषदों में जनवादी विकेन्द्रीकरण की यह योजना लागू कर दी। इसके पश्चात दूसरे राज्यों ने भी इसके ढ़ाँचे , कार्यों और साधनों में कुछ अनिवार्य परिवर्तन के साथ उसे स्वीकार कर लिया।

अभ्यास प्रश्न-

1. बलवन्त राय मेहता समिति के गठन का कारण क्या था?
2. सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा दल' के अध्यक्ष कौन थे?
3. बलवन्त राय मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
4. क्या पंचायत का त्रिस्तरीय ढ़ाँचा बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का परिणाम है?
5. बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुति में ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला परिषद में सबसे महत्वपूर्ण किसे माना गया?
6. बलवन्त राय मेहता समिति के सिफारिशों के अनुरूप पंचायती राज व्यवस्था का प्रारम्भ सर्वप्रथम किस राज्य में हुआ?
7. नगौर जिला किस राज्य में स्थित है ?

4.7 सारांश

भारत गांव प्रधान देश है, अतः भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि गांवों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। गांवों का विकास चाहे वह आर्थिक क्षेत्र में हो अथवा राजनीतिक क्षेत्र में नियोजित तरीके से ही सम्भव हो सकेगा। इसी बात को ध्यान में रखकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गांवों का शासन गांव स्तर पर चलाने तथा लोकतन्त्र को मजबूती प्रदान करने के लिए जन सहभागिता प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायती राज की स्थापना की गई।

ग्रामीण विकास के उद्देश्य से ही प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरु ने 1952 ई0 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा 1953 ई0 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा का प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक नियोजन के विरूद्ध गांवों में सक्रिय चेतना जागृत करना था, लेकिन यह प्रयास मात्र सरकारी प्रयास बनकर रह गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रम की असफलता तथा उसे ग्रामीण जनता का सहयोग न मिलने के कारणों की जांच के लिए सर्वप्रथम 1956 में बलवन्त राय मेहता के नेतृत्व में 'सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' नामक समिति का गठन किया गया।

समिति ने देश की स्थितियों का अध्ययन किया और पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का सबसे प्रमुख कारण जनता के सहयोग का अभाव था। समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 1957 में भारत सरकार को

सौंपा, इसमें विकास कार्यों में जनता के सहयोग को बढ़ाने के लिए समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। लोकतन्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अलावा समिति के रिपोर्ट में कहा गया था कि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायो के हाथों में होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने निम्न तीन स्तरों पर पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद। इनमें पंचायत समिति को ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। सरकार के द्वारा समिति के प्रतिवेदन का अध्ययन करने पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। परिषद की स्वीकृति मिलने के उपरान्त इसे राज्यों को इस विशेषाधिकार के साथ भेज दिया गया कि वे अपनी स्थितियों व परिस्थितियों के अनुरूप नियम बनाकर पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें।

बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों को लागू करने के लिए प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने महात्मा गाँधी के जन्म दिवस 02 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में दीपक जलाकर इसका उद्-घाटन किया। जवाहर लाल नेहरु के सुझाव पर ही इस प्रक्रिया को 'पंचायती राज' नाम दिया गया।

4.8 शब्दावली

संविधान-किसी राज्य की शासन व्यवस्था के लिए विधित बनाये गये आधारभूत नियमों का संग्रह, समिति- किसी निश्चित उद्देश्य से निर्मित लघु संगठन, परियोजना- दीर्घ काल के लिए निर्मित योजना, सामुदायिक- सर्व समुदाय के लिए की गयी व्यवस्था, प्रतिवेदन- अधिकारी के पास भेजी जाने वाली रिपोर्ट, संस्तुति- किसी कार्य के करने के लिए प्रबल सिफारिश, पंचायती- पंचायत द्वारा किया हुआ, विकेन्द्रीकरण- शक्तियों का केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाह, प्रशासनिक- राज्य शासन की कार्यकारिणी से सम्बन्धित, स्वशासित- स्वयं द्वारा शासित होने की स्थिति, नियोजित- नियुक्त किया हुआ या योजनाबद्ध तरीके से कुछ करना।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करना और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का मूल्यांकन करना, **2.** बलवन्त राय मेहता, **3.** 1956 ई0 में, **4.** हॉं, **5.** क्षेत्र पंचायत को, **6.** राजस्थान, **7.** राजस्थान में

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0लि0, दिल्ली।
2. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
3. एम0पी0 त्यागी और आर0 के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
4. एस0के0 डे, पंचायती राज (हिन्दी में), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. त्रिवेदी प्रसाद गुप्त एवं चन्द्रिका प्रसाद उपाध्याय, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, किरण बुक कम्पनी, इलाहाबाद।
6. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी और आर0 के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. बलवन्त राय मेहता समिति की स्थापना के उद्देश्यों एवं उसके प्रतिवेदन का उल्लेख कीजिये।
2. भारत में स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के सम्बन्ध में बलवन्त राय मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन का संक्षेप में विवेचन कीजिये।

इकाई- 5 ग्राम पंचायत

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 ग्राम पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
  5.2.1 वैदिक काल में ग्राम पंचायत
  5.2.2 महाकाव्य काल में ग्राम पंचायत
  5.2.3 मौर्यकाल में ग्राम पंचायत
  5.2.4 राजपूत काल में ग्राम पंचायत
  5.2.5 मुगलकाल में ग्राम पंचायत
  5.2.6 ब्रिटिश काल में ग्राम पंचायत
  5.2.7 स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायत
5.3 ग्राम पंचायत का संगठन
5.4 ग्राम पंचायत और कर्मचारी तथा राज्य सरकार
5.5 ग्राम पंचायत की वित्तीय व्यवस्था
5.6 ग्राम पंचायत के अधिकार और कार्य
5.7 ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति जब मानवीय सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ तभी गांवों की स्थापना हो गयी। मानव स्वभाव ने ही व्यक्ति को सामाजिक संगठनों के विकास के लिए प्रेरित किया। भारत में पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। जो जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत थी। विकास तथा मानव कल्याण के साथ-साथ ये ग्रामीण समुदाय के न्याय का काम भी करती थी। ग्राम पंचायत जिन्हें ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की सबसे लोकप्रिय इकाई माना जाता था। अपने आप में स्थानीय स्वशासन की समर्थ इकाईयां हुआ करती थी। प्राचीन काल में इसी पंचायत व्यवस्था के कारण प्रत्येक ग्रामीण समाज अपने आप में छोटा सा राज्य था। जो भारत की जनता को एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा था। हर्षदेव मालवीय के अनुसार ''भारत में पंचायतों का उद्-भव प्राचीन था, क्योंकि हमारी संस्कृति को विकसित तथा समृद्धिशाली बनाने में इसने प्रकार्यात्मक दृष्टि से शक्तिशाली आधार प्रदान किया है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भारत विश्व का प्रथम देश था, जहाँ पंचायत के सदस्यों को पंच-परमेश्वर कहा जाता था। गांव के किसी झगड़े या विवाद को हल करने के लिए पंचायत होती थी, जिसमें पांच व्यक्तियों के प्रतिनिधिमण्डल की एक समिति गठित होती थी, जो दोनों पक्षों के वाद-विवाद सुनने के बाद अपना फैसला सुनाती थी जिसे सबको मानना पड़ता था।''

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही महात्मा गांधी के द्वारा ग्राम स्वराज्य की अवधारणा का प्रतिपादन किया गया। उन्होंने कहा था कि ''भारत की स्वाधीनता गांव से प्रारम्भ होनी चाहिए। गांव की जनता को पूरे-पूरे अधिकार प्राप्त होने चाहिए। पंचायतों को जितने ही अधिक अधिकार प्राप्त होगें, उतनी ही जनता की भलाई होगी और हमारे गांवों में ग्राम स्वराज्य, सर्वोदय तथा राम राज्य की परिकल्पना साकार हो सकेगी।'' गांधी जी द्वारा सूत्रित ग्राम स्वराज्य की यह अवधारणा असल में आदर्श ग्राम पंचायत की परिकल्पना प्रस्तुत करती है। गांधी जी पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की कमोवेश आत्म-निर्भर इकाई बनाना चाहते थे।

15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का नवयुग प्रारम्भ हुआ। संविधान निर्माताओं ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि प्रजातान्त्रिक राज में लोग अपने कल्याण के लिए स्वयं कार्य करे। संविधान निर्माता इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि चूँकि देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। अतः भारत का विकास तभी होगा जबकि भारत के गांवों का विकास हो। इसलिए ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के बारे में भारतीय संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद- 40 में कहा गया कि ''राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा तथा उनमें इतनी शक्तियां और सत्ता सौंपेगा कि उनको ग्रामीण स्थानीय शासन की स्वायत्त इकाई के रूप में विकसित किया जा सके।''

यह इकाई ग्राम पंचायत से सम्बन्धित है जो पंचायती राज व्यवस्था की सबसे लोकप्रिय और निचले स्तर की इकाई है। इसमें ग्राम पंचायत के ऐतिहासिक विवरण के साथ-साथ उनकी संरचना, कार्य व शक्तियां, वित्तीय व्यवस्था तथा उस पर नियन्त्रण का उल्लेख किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ग्राम स्वराज्य या ग्राम पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण में ग्राम पंचायत की स्थिति को समझ सकेंगे।
- ग्राम पंचायत के उद्देश्य व सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- वर्तमान ग्राम पंचायतों की स्थिति व व्यवहारिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत के योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे।

5.2 ग्राम पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

निः सन्देह पंचायत प्रथा की प्राचनिता भारत भूमि की एक अटूट प्राचीन विशेषता रही है। यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही किस प्रकार फली-फूली है, उसके सापेक्ष आधार हमें वैदिक साहित्य से भली-भाँति मिल जाते हैं। उस समय उसे सभा या समिति की संज्ञा दी जाती थी। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ0 के0 पी0 जायसवाल ने लिखा है कि ''आरम्भिक काल में राष्ट्रीय जीवन और उनकी गतिविधियों का उल्लेख तत्कालीन लोकप्रिय सभा और समितियों के माध्यम से प्राप्त होता है।''

5.2.1 वैदिक काल में ग्राम पंचायत

ऋग्वैदिक कालीन राजनीतिक व्यवस्था में प्रत्येक ग्राम का एक अधिकारी होता था जिसे 'ग्रामणी' कहते थे। ग्रामणी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था, क्योंकि वह ग्राम का एक मात्र प्रशासनिक अधिकारी होता था। मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही जीवन की यात्रा को सुखमय बनाने के लिए सामाजिक संगठनों की आवश्यकता महसूस हुई। जिसमें व्यक्ति को समाज तथा समाज को व्यक्ति के लिए कुछ कर्तव्य करना अपेक्षित था। यजुर्वेद में इसका आभास इस प्रकार मिलता है-

''अन्धुतमः प्रविषान्ति ये सुभंतिमुवासते।
ततो भूव इव ते तमों य उसंमुत्वा छरताः।।''

मानव सृष्टि के प्रारम्भिक काल में मानव जीवन को आनन्दमय बनाने के उद्देश्य से जनशक्ति एकत्र हुई और उत्क्रान्त होकर 'विराड' या वैराज की स्थापना की जिसमें सभी स्त्री-पुरूष प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर नियम बनाते थें। इसे प्रारम्भिक राज्य विहीन शासन कहा जा सकता है। इस वैराज शासन का दर्शन अथर्ववेद में इस प्रकार होता है-

''विराड्वा इद्धग आसीत तस्या जतायाः सर्वभविमेदिय भविष्यतीर्ति''

वैराज्य अथवा राजविहीन शासन में कोई अध्यक्ष नहीं होता था। फलतः सभी व्यक्तियों को स्वतः सभी नियमों का निर्माण करना पड़ता था। जो छोटे गांव या समाज में ही सम्भव था। अतः इसके कार्यान्वयन में कठिनाई महसूस हुई। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए एकत्रित जनशक्ति पुनः उत्क्रान्त हुई और जनसभा में परिणत हुई-

''रसाउद क्रमात या सामायान्व क्रामत''

इस प्रकार ग्राम सभा के अध्यक्षों का निर्वाचन हुआ जो ग्राम का शासन करते थे। इस व्यवस्था में गांव के सभी लोगों के स्थान पर उनके द्वारा निर्वाचित गांव के थोड़े सदस्यों की सभा की ओर गांव के लोग नेतृत्व भाव से देखते थे। साथ ही साथ गांव के सदस्य भी दायित्व के साथ अपने कर्तव्यों का सम्पादन करते थे। ग्राम सभा का कार्यक्षेत्र गांव तक ही सीमित और मर्यादित था, जिसमें जनशक्ति भी कम थी। जनशक्ति को बढ़ाकर बड़े-बड़े कार्यो का सम्पादन करने के विचार से अनेक गांवों को मिलाकर समाज का विस्तार कर समिति बनाने की भावना लोगों में उठी। फलतः जनशक्ति और अधिक उत्क्रान्त होकर समिति में परिणत हुई-

''सोदं क्रामत स समितो न्याक्रामाता''

समिति का अर्थ राष्ट्र समिति से है। जो अनेक गांवों का निरीक्षण करने के लिए अनेक गांवों को मिलाकर बड़ी समिति के रूप में संगठित हुई। अब तक संघीय शक्तिअनेक गांवों में बिखरी हुई थी जो इस समिति के शासन के अन्तर्गत संगठित हो गयी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा समिति का संगठन हुआ। समिति के संगठन तक राजा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। शासन व्यवस्था पूरी तरह जनतान्त्रिक था।

राष्ट्र समिति में ग्राम सभा के प्रतिनिधि बैठकर नियम बनाते थे, जिसके कार्यान्वयन के लिए कार्यकारिणी समिति की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलतः जनशक्ति और अधिक उत्क्रान्त हुई और आमंत्रण अर्थात मन्त्रिमण्डल में परिणत हुई।

इस प्रकार भारत वर्ष में पंचायत व्यवस्था की प्राचीनता, सृष्टि के प्रारम्भ से ही देखने को मिलती है। इस व्यवस्था के प्रचलन के पर्याप्त साक्ष्य वैदिक साहित्य, उपनिषदों एवं जातक कथाओं में विद्यमान है।

5.2.2 महाकाव्य काल में ग्राम पंचायत

रामायण व महाभारत काल में भी इस प्रकार की सभाओं और समितियों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि शासन के केन्द्रीय स्तर पर तत्कालीन समय में बड़े-बड़े साम्राज्यों का भी वर्णन मिलता है फिर भी प्रशासन के सुविधा के दृष्टि से बड़े-बड़े साम्राज्यों को विभिन्न इकाईयों में विभक्त किया गया था। जिसकी सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी, जिसके अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे। मनु स्मृति भी गांव के अधिकारी को ग्रामिक ही कहा गया है। उसका प्रमुख कार्य कर वसूली करना था।

डॉ0 अल्टेकर के अनुसार बौद्ध काल में गणराज्यों में ग्राम की अपनी सीमाएं होती थी। जिनका अधिवेशन गांव के संथागार में होता था। इसमें स्थानीय विषयों पर विचार किया जाता था। इस सभा में गांव के प्रत्येक परिवार को प्रतिनिधित्व प्राप्त था।

डॉ0 डी0डी0 शुक्ल ने भी लिखा है कि ''बौद्ध कालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था। सभा के कार्य बहुमत से होते थे। इस काल में गणराज्यों के ग्राम की व्यवस्था ग्राम सभाओं द्वारा होती थी।''

5.2.3 मौर्यकाल में ग्राम पंचायत

मौर्यकाल में कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा लिखित 'अर्थशास्त्र' भारत में राजनीति पर लिखा गया प्रथम प्रमाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। इसके पूर्व की राजनीतिक व्यवस्था का हमारा अधिकांश ज्ञान जातकों एवं धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर की गयी कल्पना पर निर्भर था। कौटिल्य के अनुसार उस समय की सम्पूर्ण व्यवस्था कृषि की आवश्यकता से प्रभावित थी। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि उस समय राज्य ग्रामीण जीवन में बहुत कम हस्तक्षेप करता था। शासन के सुविधा के लिए प्रान्तों के उपविभाग किये गये थे। जो इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम तथा ग्राम/जनपद का अधिकारी मुखिया स्थानिक कहलाता था। ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था।

सम्राट चन्द्र गुप्त की शासन व्यवस्था का पर्याप्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय स्थानीय शासन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। चन्द्रगुप्त ने स्वायत्त शासन प्रणाली विकसित कर बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया था। डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि सम्राट गुप्त ने यद्यपि भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया तथा एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु उसने भी ग्राम समाज के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया। उस समय का प्रत्येक गाँव अपने विषय में स्वतन्त्र तथा स्वायत्तशासी था। प्रत्येक गाँव में अपनी सभा होती थी जो गाँव से सम्बन्धित सभी विषयों पर वाद-विवाद करती थी। समाज में सुव्यवस्था के लिए नियम बनाये गये और उनको तोड़ने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी। सभा गाँव के अनेक रूपी कार्यों का केन्द्र थी। गुप्त काल में भी पंचायत व्यवस्था की गयी। सभा गाँव के अनेक रूपी कार्यों का केन्द्र थी। गुप्त काल में भी पंचायत व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया।

5.2.4 राजपूत काल में ग्राम पंचायत

राजपूत काल में ग्राम पंचायतों का महत्व कम हो गया, क्योंकि उन पर भी सामान्तों की अधिकार-सत्ता छा गयी। सामान्तगण न केवल स्थानीय शासन को कम महत्व देते थे बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियन्त्रण मुक्त होने का भी प्रयत्न करते रहते थे। ग्राम शासन दक्षिण भारत में जितना संगठित था उतना उत्तर भारत में नहीं था। तत्कालीन शासन (राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और गांवों में विभक्त होता था। इस दृष्टि से राजपूत कालीन पद्धति गुप्त कालीन शासन पद्धति पर ही आधारित थी। राजपूतों के शासन काल के पश्चात सल्तनत शासन काल में भी शासन की सबसे छोटी इकाई गांव थे। गांवों का प्रबन्धभार लम्बरदारों, पटवारियों, पंचायतों आदि पर था। लम्बरदार शान्ति बनाये रखता था और भूमिकार एकत्रित करने में सहायता देता था। इस प्रकार गांवों को अपने मामलों में काफी स्वतन्त्रता मिली हुई थी।

5.2.5 मूगल काल में ग्राम पंचायत

भारतीय शासन के मुगलकालीन इतिहास के पन्नों को पलटने से यह प्रतीत होता है कि इस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। मुगल काल में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थे। परगने गाँवों में विभाजित थे। गाँव के प्रबन्ध पंचायतें करती थीं। यद्यपि मुस्लिम शासकों ने इन पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की फिर भी उन्हें कम या नष्ट करने का भी प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि शासन ने जहाँ तक बन पड़ा अपने हित में इन पंचायतों का खूब फायदा उठाया। ग्रामीण शासन व्यवस्था में जमीनदार या जागीदार व्यवस्था का विकास हुआ। इस प्रथा के अधीन समृद्ध किसान या तो स्वयं कर लेकर या अपने एजेटों के द्वारा कर वसूल कर अन्य ग्रामीणो पर नियन्त्रण रखते थे। व्यवहारतः ग्राम पंचायतोंके क्रियाकलाप इन्हीं जमीनदारों या जागीरदारों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। इस प्रकार ग्रामीण शासन पूर्ण-रूपेण उनके सामन्ती चपेट में आ गया परन्तु उनका अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ, लेकिन पंचायतें विश्रृंखलित हो गयी।

5.2.6 ब्रिटिश काल में ग्राम पंचायत

यद्यपि भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन की व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन काल से है, फिर भी संगठन और कार्यप्रणाली के दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ। गाँवों के विकास की ओर सर्वप्रथम

ध्यान 1863 ई0 में 'शाही स्वच्छता आयोग' की रिपोर्ट के बाद दिया गया। इस रिपोर्ट में भारतीय गाँवों के साफ-सफाई सम्बन्धी दुर्दशा के बारे में बताया गया था और कहा गया कि गांवों के स्वच्छता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इसके बाद विभिन्न राज्यों में ग्रामीण स्वच्छता अधिनियम पारित किये गये। 14 दिसम्बर 1870 को लार्ड मेयो ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण और स्वायत्त सत्ताशासी संस्थाओं के गठन के लिए कौंसिल में प्रस्ताव पारित करवाया। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वायत्त शासन स्थापित करने का पहला प्रयास था। इसका उद्देश्य प्रशासनि क्षमता को बढ़ाना तथा वित्तीय साधन जुटाना था। 1907 ई0 में चार्ल्स हाबहाऊस की अध्यक्षता में 'रायल कमीशन' की नियुक्ति की गयी। जिसकी रिपोर्ट 1909 ई0 में प्रकाशित हुई। आयोग का यह निष्कर्ष था कि स्वायत्त शासन की संस्थाएं सफल नहीं हो रही हैं, जिसका कारण निर्वाचन का अभाव, वित्तीय उत्तरदायित्व की कमी तथा संस्थाओं के कर्मचारियों पर नियन्त्रण का शैथिल्य था।

कमीशन का विचार था कि स्वायत्त शासन के संस्थाओं की शुरूआत ग्राम स्तर से होनी चाहिए न कि जिला स्तर से जैसा कि प्रचलन में था। उसका यह भी विचार था कि पंचायतें ग्रामीण विकास व दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों के अलावा न्याय सम्बन्धी कार्य भी करें। जिससे लोगों को कोर्ट कचहरी से दूर रखा जा सके। आयोग ने सिफारिश की कि ग्रामीण जनता अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनें। फौजदारी व दीवानी मुकदमें सुनने के अलावा गांव की सफाई तालाब, कुएं एवं सड़कोंका निर्माण, प्राथमिक शिक्षा आदि पंचायतों के काम में शामिल किये गये।

इस बात को समझते हुए कि वित्तीय साधनों के अभाव में कार्य सौंपने का कोई अर्थ नहीं हैं। आयोग ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने और उनके लिए आय के साधन जुटाने के लिए निम्न सुझाव दिये-

1. भूमि कर (जिसे जिला बोर्डों द्वारा लगाया जाता है) का एक हिस्सा ग्राम पंचायतों को दिया जाय।
2. जिला बोर्ड तथा जिलाधीश द्वारा स्थानीय सुधार के लिए विशेष अनुदान दिया जाय।
3. तालाबों व बाजार आदि से प्राप्त आय पंचायतों को मिले।
4. उन मुकदमों की मामूली फीस भी रखी जाय, जिनकी सुनवाई ग्राम पंचायत करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कमीशन की सिफारिशें पंचायतों को वास्तव में जन प्रतिनिधित्व की संस्थाऐं बनाने और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत करने की दिशा में सराहनीय कदम था। लेकिन आयोग की सिफारिषें कागज तक ही सीमट कर रह गयी और उसका कोई नतीजा नहीं निकला, क्योंकि सरकार ने कमीशन के प्रतिवेदन पर कोई निर्णय नहीं किया।

स्वतन्त्रता पूर्व महात्मा गांधी ने गाँवोंका शासन गाँव स्तर पर चलाये जाने तथा पंचायती राज कायम करने की बात स्पष्ट की, जो कि उनके इस कथन से स्पष्ट है कि ''हमारे गाँवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराष्ट्र की स्थापना होगी, अन्य सभी प्रयत्न निरर्थक होगें। अगर गाँव नष्ट हो जायेगा तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जायेगा, वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जायेगा, दुनिया में उसका अपना मिशन खत्म हो जायेगा।'' गांधी जी कमोवेश ग्राम पंचायतों को स्थानीय स्वशासन की आदर्श और आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे, पर यह सोच बाकी कांग्रेस नेतृत्व की नहीं रही। अतः राष्ट्रीय नेतृत्व ब्रिटिश प्रशासकों पर पंचायती व्यवस्था के क्रियान्वयन के लिए प्रभावशाली ढंग से कभी जोर नहीं डाल सका। इस प्रकार ब्रिटिश काल में पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए न तो राजनैतिक इच्छा शक्ति थी और न ही प्रशासनिक सहयोग। इस पूरे दौर में यदि कही पंचायतें गठित भी हुई तो उसमें नौकरशाही का बोलबाला रहा। ब्रिटिश काल में गाँवो की राजनीतिक इच्छा को नष्ट करने का प्रयास शुरु था। इस काल में जो न्याय व्यवस्था थी उसमें गाँव के झगड़े दूर न्यायालय में ले जाये जाने लगे। इससे गाँव के निर्भरता में कमी आयी। गाँव के मुखिया, लेखपाल व अन्य अधिकारियों को जो गाँव के प्रतिनिधि माने जाते थे, वेतन देने की प्रथा शुरु की गयी। जिसके कारण ग्रामीण समुदाय ने अपने नेताओं को खो दिया। इसके अतिरिक्त शिक्षा-प्रणाली एवं औद्योगीकरण ने भी ग्रामीण समुदाय को शहरों की ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया। जिसके परिणामस्वरूप गाँव के स्वायत्ता और आत्मनिर्भरता में कमी आयी।

5.2.7 स्वतन्त्र भारत में ग्राम पंचायत

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का विधिवत् शुभारम्भ 1947 में संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम के रूप में हुआ। कांग्रेस ने पंचायती राज की स्थापना से शीघ्र ही अपने नीतियों एवं व्यवहारों को प्रभावित करना शुरू किया। 1948 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री की पहल पर राज्यों के स्वायत्त मन्त्रियों का एक सम्मेलन राजधानी में आयोजित किया गया। इसको सम्बोधित करते हुए तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि मुझे विश्वासहै कि भारत में इस प्रकार का सम्मेलन इससे पूर्व कभी नहीं बुलाया जा सका, क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन पूर्ण तथा प्रान्तीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आता था। सम्मेलन का उद्-घाटन करते हुए प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि ''स्थानीय स्वायत्त शासन सच्ची प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार है और होना भी चाहिए, क्योंकि हमलोगों की आदत हो गयी है कि हम प्रजातन्त्र को शासन के ऊँचे स्तर पर ही सोचते हैं, नीचे के स्तरों पर नहीं। जब तक नीचे की इन आधारशिलाओं पर प्रजातन्त्र का निर्माण और विकास नहीं किया जाता तब तक वह उच्च स्तरों पर कदापि सफल नहीं हो सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान निर्माता इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि चूकि देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों मे निवास करती है। इसलिए ग्रामीण स्थानीय शासन को संविधान के भाग चार में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद- 40 में स्थान दिया गया। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद-246 (3) में देश के प्रत्येक राज्य की विधानसभाओं को यह अधिकार दिया गया कि वह स्थानीय शासन से सम्बद्ध व्यवस्थाओं के लिए कानून पारित करें, जिससे वे स्वायत्त शासन के इकाई के रूप में कार्य कर सके।

भारतीय संविधान में पंचायती राज के महत्व को स्वीकार करते हुए हर्ष देव मालवीय ने कहा है कि भारतीय संविधान में पंचायत के विचार को संलग्न करना अत्यन्त महत्व की घटना थी, जिसका राज्य की बनावट पर बड़ा सुदुरगामी प्रभाव होने वाला था। पंचायती राज की अवधारणा को संविधान में शामिल करने का पूरे देश भर में स्वागत किया गया। इसके द्वारा उस सिद्धान्त को मान्यता दे दी गयी जो पहले केवल शब्दों तक सीमित था। राज्य के नीति निदेशक सिद्धातों में स्थान मिलने के बाद से ही भारत में ग्राम पंचायतों का संगठन किया जाने लगा और शीघ्र ही ये पंचायतें लोकप्रिय होने लगी। कांग्रेस पार्टी ने भी शीघ्र ही अपनी नीतियों एवं व्यवहारों को प्रभावित किया। पंचायती व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से ही तत्कालीन सत्तारुढ़ कांग्रेस पार्टी की कार्य समिति ने मई 1954 में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसकी संरचना इस प्रकार थी- यह कार्यकारिणी समिति विभिन्न राज्यों में पंचायती राज के स्थापना के महत्व को जानती है। यह न केवल प्राचीन भारत के परम्पराओं को बनाये रखने का एक तरीका है वरन यह आज की परिस्थितियों में भी उपयुक्त है। आधुनिक राज्य धीरे-धीरे केन्द्रीकरण की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। इस प्रवृति को स्थानीय स्वायत्त सरकार की स्थापना करके संतुलित करना चाहिए, ताकि जनता स्वयं अपने शासन में भाग ले सके तथा सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं जैसे- आर्थिक, न्यायिक में भी सक्रियता से योगदान कर सके। यह सबसे अच्छी प्रकार से तभी किया जा सकता है जबकि भारत के गांवों में पंचायतों का विकास किया जा सके। इन पंचायतों को न्यायिक कार्यों कीभाँति प्रशासनिक कार्य भी सौंपे जायेंगे।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों में त्रिस्तरीय प्रणाली को स्वीकार किया गया। जिसमें सबसे नीचे के स्तर पर ग्राम पंचायत के स्थापना की बात की गयी। बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों के अनुरुप ही अधिकांश राज्यों ने ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायतों का गठन किया। किन्तु 1977 में गठित अशोक मेहता समिति ने तो अपनी सिफारिश में ग्राम पंचायत के अस्तित्व को ही समाप्त करने की संस्तुति की। इससे पंचायत व्यवस्था के मूल इकाई के ही समाप्त होने का खतरा महसूस किया गया, इसलिए समिति के एक सदस्य सिद्धराज चड्ढा ने इस ओर संकेत करते हुए कहा कि, मुझे जिला परिषद व मंडल पंचायत से आपत्ति नहीं है, किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की है, जबकि पंचायती राजसंस्थाओं का धरातल तो ग्राम सभा को ही बनाया जाना चाहिए था।

1988 ई0 में कार्मिक लोक सेवा संघ एवं पेंशन मन्त्रालय के तत्वाधान में पी0के0 थुंगन की अध्यक्षता में गठित उप-संसदीय समिति ने भी पंचायतों के त्रिस्तरीय स्वरुप को बनाये रखने कीसिफारिश की, जिसमें सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना की बात की गयी। इसके साथ ही साथ समिति ने यह भी कहा कि ग्राम पंचायत के न्यायिक कार्यों को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए, जिससे साधारण विवाद ग्राम स्तर पर ही सुलझाये जा सकें।
73वें संविधान संसोधन अधिनियम1992 द्वारा ग्राम पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इस संसोधन के पूर्व पंचायत व्यवस्था का प्रावधान राज्य के नीति निदेश कतत्वों के तहत किया गया था। जिसे लागू करना सरकारों के लिए बाध्यकारी नहीं था। जिसके कारण कभी-कभी इनके चुनावों को 10 से15 साल टालकर इनको निष्क्रिय बना दिया जाता था। लेकिन इस संसोधन के उपरान्त पंचायतों का गठन सरकारों के लिए संवैधानिक बाध्यता हो गया है। इस लिए अब इनके चुनावों को छः महीने से अधिक नहीं टाला जा सकता हैं। इसमें पंचायत व्यवस्था का सबसे निचला स्तर ग्राम पंचायत घोषित किया गया। यद्यपि के चुनाव की विधि निश्चित करने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों को हैं। इसके द्वारा ग्राम पंचायतों के एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया गया है। इस संसोधन के साथ 11वीं अनुसूची जोड़ी गयी है। इसमें कुल 29 विषयों का उल्लेख किया गया है। जिनका क्रियान्वयन गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों द्वारा किया जाना है।
भारत सरकार ने संविधान के भाग-9 में उल्लिखित 73वें संविधान संसोधन की पांचवी अनुसूची में वर्णित अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों पर लागू करने के लिए कानून की मुख्य विशेषताओं पर सिफारिश करने हेतु दसवीं लोक सभा के सदस्य दिलीप सिंह भूरिया के अध्यक्षता में कुछ चुने हुए संसद सदस्यों और विशेषज्ञों की समिति जून 1994 में गठित की गयी। जिसने अपनी रिपोर्ट 1995 ई0 में सरकार को सौंपा। जिसमें कहा गया कि पांचवीं अनुसूची के अन्तर्गत वर्णित आदिवासी क्षेत्रों में ग्राम पंचायत और पंचायत संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार व स्वतंत्रता दी जाय। यदि किसी ग्राम पंचायत में एक से अधिक गाँव हों तो प्रत्येक गाँव की अपनी ग्राम सभा हो। पुलिस, आबकारी, वानिकी, राजस्व सम्बन्धी विभागों के निचले स्तर के कर्मचारियों की भूमिका आदिवासी क्षेत्रों में कम होनी चाहिए और उन्हें सम्बन्धित पंचायत के अधीन कार्य करना चाहिए। ग्राम सभा को ऐसी शक्तियां दी जानी चाहिए ताकि वे सामुदायिक भूमि, वन (आरक्षित वनों को छोड़कर) जल, हवा व अन्य प्राकृतिक संसाधनों को विनियमित कर सके और उनका इस्तेमाल कर सकें। इन अधिकारों और कार्यों को प्रदान करने से पंचायतें सही मायने में 'स्वशासन की इकाई' के रूप में कार्य कर सकेंगी। स्वशासन के इस नूतन प्रयोग से ग्राम स्वराज का प्रसार होगा। इससे लोकतन्त्र को एक नयी दिशा मिलेगी। जिससे आम जन की सहभागिता का मार्ग प्रशस्त होगा। समिति के रिपोर्ट के आधार पर संसद ने दिसम्बर 1996 ई0 में एक विधेयक पारित किया। इस नये अधिनियम द्वारा पाचवीं अनुसूची के आदिवासी क्षेत्रों की पंचायत प्रणाली में ग्राम सभा को ज्यादा शक्तियां प्रदान की गयी है।
इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि भारत में ग्राम पंचायतों की एक लम्बी परम्परा रही है। समय-समय पर इनके अधिकारों एवं दायित्वों का मूल्यांकन विभिन्न समितियों एवं संस्थाओं द्वारा किया गया। तद्नुसार इनके स्वरूप में परिवर्तन भी समय-समय पर किया गया। वर्तमान ग्राम पंचायतें उस लम्बी परम्परा के सीख का प्रतिफल कहीं जा सकती हैं, जो वर्तमान में ग्राम शासन की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य कर रही हैं।

5.3 ग्राम पंचायत की संरचना या संगठन

उत्तराखण्ड त्रिस्तरीय पंचायत राज संसोधन अधिनियिम संख्या 8, सन् 2002 के द्वारा उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत विधि में संसोधन करते हुए व्यवस्था की गयी है कि 'उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947' और 'क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम1961' तथा उसके उपरान्त किये गये संसोधनों में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढ़ा जायेगा। इसमें ग्राम पंचायत की संरचना हेतु व्यवस्था की गयी है कि पवर्ततीय

क्षेत्र में न्यूनतम 03 सौ या अधिकतम 01 हजार तथा मैदानी क्षेत्र में न्यूनतम 01 हजार तथा अधिकतम 05 हजार मतदाताओं वाले किसी ग्राम क्षेत्र को ग्राम पंचायत घोषित किया जायेगा। ग्राम पंचायत के निर्वाचन की जिम्मेदारी राज्य निर्वाचन आयोग की होगी। 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति ग्राम पंचायत का मतदाता होगा। इसके लिए सम्पूर्ण ग्राम पंचायत के मतदाताओं की मतदाता सूची राज्य निर्वाचन आयोग के देखरेख में तैयार की जायेगी। ग्राम पंचायत के प्रधान तथा सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायत के इन्हीं मतदाताओं द्वारा किया जायेगा। ग्राम पंचायत प्रधान पद तथा सदस्य पद के प्रत्याशियों में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति को ग्राम पंचायत का प्रधान या सदस्य निर्वाचित घोषित किया जाता है। प्रधान ही ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है। उप-प्रधान को निर्वाचित करने का कार्य ग्राम पंचायत के सदस्य बहुमत के आधार पर करते हैं, जो ग्राम पंचायत का उपाध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत के कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने तथा उसकी देख-रेख के लिए विभिन्न समितियों का भी गठन किया जाता है।

ग्राम पंचायत प्रधान, उप-प्रधान तथा सदस्यों के पदो को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े-वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित किया जाता है, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इनके लिए पदों का आरक्षण क्रमश: 21, 02 तथा 27 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। कुल पदों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होता है। यह आरक्षण अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के आरक्षित पदों में भी उस वर्ग की महिलाओं को प्राप्त होता हैं। आरक्षित पदों को प्रत्येक निर्वाचन के पूर्व चक्रानुक्रम में परिवर्तित कर दिया जाता है। अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लोगों को आरक्षण का लाभ तभी तक मिलेगा जब तक कि उनको संविधान द्वारा आरक्षण प्रदान किया जायेगा।

ग्राम पंचायत का कार्यकाल उसके प्रथम बैठक के दिनांक से पांच वर्ष होता है। ग्राम पंचायत का चुनाव उसका कार्यकाल समाप्त होने के छः माह के भीतर अनिवार्य रूप से करा लिया जायेगा। यदि किसी ग्राम पंचायत को किसी कारणवश उसके कार्यकाल से पूर्व विघटित कर दिया जाता है तो अगली पंचायत का चुनाव उसके शेष कार्यकाल के लिए ही किया जायेगा। यदि कार्यकाल के अवसान के पूर्व किन्हीं कारणों से चुनाव नहीं कराया जा सका तो राज्य सरकार पंचायतों के कृत्यों का सम्पादन करने के लिए प्रशासक नियुक्त कर सकेगी।

5.4 ग्राम पंचायत और कर्मचारी तथा राज्य सरकार

ग्राम पंचायत में एक सचिव होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त खण्ड विकास स्तर पर सहायक विकास अधिकारी होता है। जो समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा निश्चित कर्तव्यों का पालन करते हुए ग्राम पंचायत का पथ प्रदर्शन, नियमन तथा नियन्त्रण करता हैं।

राज्य सरकार पंचायतों के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। वह ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार को सीमित या परिवर्तित कर सकती है। वह किसी ग्राम पंचायत का दूसरे ग्राम पंचायत में विलय कर सकती है, उसे समाप्त कर सकती है। उसका नियन्त्रण पंचायत के कार्य के हर क्षेत्र में फैला हुआ हैं जैसे कर्मचारियों की नियुक्ति, अभिलेखों का प्रबन्ध, वित्तीय प्रशासन, चुनाव इत्यादि। यदि कोई ग्राम पंचायत अपने निर्धारित दायित्वों का निर्वहन करने में असफल रहती तो राज्य सरकार उसे अपना कोई कर्मचारी नियुक्त करके पूरा करा सकती है और उसका खर्च पंचायत से वसूल कर सकती है। राज्य सरकार ग्राम पंचायत से आवश्यक रिर्पोट तथा अभिलेख मांग सकती है। यदि किसी ग्राम पंचायत के किसी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने से सार्वजनिक जीवन, स्वास्थ्य, अथवा सम्पत्ति के लिए खतरा उत्पन्न होता है तो उस प्रस्ताव को स्थागित कर सकती है। विशेष परिस्थितियों में वह किसी ग्राम प्रधान को उसके पद से हटा सकती है। यदि कोई ग्राम पंचायत अपने शक्ति का दुरूपयोग कर रही हो अथवा अपने निर्धारित कर्तव्यों का निर्वहन करने में लगातार असफल रहती है और जनहित में उसका बना रहना वांछनीय न रह जाय तो राज्य सरकार उसे निलम्बित कर सकती है।

5.5 ग्राम पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

भारत में ग्राम पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से है लेकिन यह सर्वविदित है कि इन संस्थाओ की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ नहीं रही है जबकि इनकी सफलता काफी हद तक इनके वित्तीय साधनों और शक्तियों पर निर्भर है। इसलिए वर्तमान समय में प्रत्येक ग्राम पंचायत के अधिकारों एवं कार्यों के सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक ग्राम निधि की स्थापना की गयी है। जिसमें मुख्य रूप से दो स्रोतोंसे वित्त की व्यवस्था की जाती है। प्रथम राज्य सरकार ग्राम पंचायत को ग्राम के विकास हेतु कुछ अनुदान देती है तथा द्वितीय ग्राम पंचायतों को कुछ कर लगाने का भी अधिकार है जिससे वह अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा कर सके। ग्राम निधि में निम्नलिखित धनराशि जमा की जायेगी-

1. इस अधिनियम के अधीन लगाये गये किसी कर की आय।
2. राज्य सरकार द्वारा ग्राम पंचायत को दी गयी समस्त धनराशियां।
3. वे धनराशियां, जिन्हें न्यायालय या किसी अन्य नियम के अन्तर्गत ग्राम निधि में जमा करने का निर्देश दिया गया हो।
4. 'विलेज पंचायत एक्ट' के अधीन पहले से विद्यमान विलेख पंचायत के नाम जमा अवशेष(Balance) यदि कोई हो।
5. धारा- 104 के अधीन प्राप्त समस्त धनराशि।
6. ग्राम पंचायतों के सेवकों द्वारा संग्रहित(Collected) धूल, गन्दगी, गोबर, कूडा-करकट, पशुओं के शव आदि के विक्री से प्राप्त धन।
7. नजूल की सम्पत्ति और लगान का हिस्सा, जो राज्य सरकार ग्राम निधि में जमा करने का निर्देश दे।
8. जिला पंचायत अथवा किसी अन्य स्थानीय प्राधिकारी द्वारा ग्राम निधि में अंशदान के रूप में दी गयी धनराशि।
9. ऋण अथवा दान के रूप में प्राप्त धनराशियां।
10. ऐसी अन्य धनराशियां जो राज्य सरकार की किसी सामान्य अथवा विशेष आज्ञा द्वारा ग्राम निधि को अभ्यर्पित की जाय।
11. समस्त धनराशियां, जो धारा- 24 अथवा किसी अन्य विधि के अधीन किसी व्यक्ति अथवा निगम अथवा राज्य सरकार से ग्राम पंचायत को प्राप्त हुई हो।
12. राज्य की संचित निधि से सहायता अनुदान के रूप में प्राप्त समस्त धनराशियां।

ग्राम निधि में से धन का समस्त आहरण और उसका वितरण ग्राम पंचायत के प्रधान और सचिव द्वारा संयुक्त रूप से किया जायेगा।

5.6 ग्राम पंचायत के अधिकार और कार्य

ग्राम पंचायत को प्रायः वे सभी कार्य करने का अधिकार दिया गया है, जिन्हें करने की समान्यतः एक स्थानीय प्रशासन से अपेक्षा की जाती है। ग्राम पंचायत मुख्यतः निम्नलिखित कृत्यों का सम्पादन करेगी-

1. कृषि और बागवानी का विकास और प्रोन्नति।
2. बंजर भूमि और चारागाह भूमि का विकास और उनके अनधिकृत कब्जों की रोकथाम करना।
3. भूमि विकास, भूमि सुधार और भूमि संरक्षण में सरकार और अन्य एजेंसियों की सहायता व चकबन्दी में सहायता करना।
4. लघु सिंचाई परियोजनाओं से जल वितरण में सहायता करना। लघु सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण, मरम्मत तथा उनकी सुरक्षा में सहायता करना।

5. पशुपालन, दुग्ध उद्योग, मुर्गीपालन को ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ावा देना और पशुओं की नस्लों को सुधारने का प्रत्यन करना।
6. गांव में मछली पालन के विकास में सहायता करना।
7. सड़कों तथा सार्वजनिक भूमि के किनारे वृक्षारोपण करना और उनकी रक्षा करना।
8. लघु वन उत्पादों की उन्नति और विकास करना।
9. लघु उद्योगों के विकास में सहायता करना, तथा स्थानीय बाजारों के उन्नति का प्रयत्न करना।
10. कृषि और अन्य उद्योगों के विकास में सहायता करना, ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योगों की उन्नति को प्रोत्साहन देना।
11. ग्रामीण आवास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना तथा आवास स्थलों का वितरण और उनसे सम्बन्धित अभिलेखों को सुरक्षित रखना।
12. पीने, कपड़े धोने, स्नान करने के लिए जल की व्यवस्था करने हेतु कुओं, तालाबों का निर्माण कराना, उनकी मरम्मत और सुरक्षा करना और पीने के पानी के लिए अन्य स्रोतो का विकास करना।
13. ईधन और चारा से सम्बन्धित पौधों का विकास करना तथा चारा भूमि के अनियमित अन्तरण पर नियन्त्रण रखना।
14. सड़कों, पुलियों, पुलों, नौका घाट, जल-मार्ग और संचार के साधनों का विकास करना तथा सार्वजनिक स्थलों से अतिक्रमणों को हटाना।
15. सार्वजनिक स्थलों तथा मार्गों पर प्रकाश की व्यवस्था और उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना।
16. ग्राम में गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के कार्यक्रमों का विकास, प्रोन्नति और सुरक्षा का प्रबन्ध करना।
17. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को लागू करना।
18. प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय के विकास में सहायता करना और शिक्षा के प्रति सार्वजनिक चेतना पैदा करना।
19. तकनीकी प्रशिक्षण, व्यवसायिक शिक्षा, ग्रामीण कला और शिल्पकारों की उन्नति में सहायता करना।
20. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्रौढ़ साक्षरता की प्रोन्नति करना।
21. सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों की उन्नति करना, विभिन्न त्यौहारों पर सांस्कृतिक संगोष्ठियों का आयोजन करना तथा खेलकूद के लिए ग्रामीण क्लबों की स्थापना करना और उनकी सुरक्षा करना।
22. पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना करना तथा उनकी व्यवस्था व सुरक्षा करना।
23. पंचायत की भूमि पर मेलों बाजारों तथा हाटों को लगवाना एवं विनियम करना।
24. ग्रामीण स्वच्छता की व्यवस्था करना, महामारियों तथा बीमारियों की रोकथाम करना, मनुष्य तथा पशुओं को टीका लगवाना, आवारा पशुओं को रोकना, जन्म, मृत्यु तथा विवाह का लेखा-जोखा रखना।
25. परिवार कल्याण कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए व्यवस्थाओं को लागू करने में कर्मचारियों की मदद करना।
26. ग्राम पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए योजना तैयार करना और उनके क्रियान्वयन में सहयोग करना।
27. ग्राम पंचायत स्तर पर महिला एवं बाल विकास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना, बाल स्वास्थ्य तथा पोषण कार्यक्रमों की उन्नति करना।
28. वृद्धावस्था और विधवा पेंशन योजनाओं में सहायता करना, विकलांगों तथा मानसिक रूप से मन्दबुद्धि के व्यक्तियों के कल्याण को सम्मिलित करते हुए समाज कल्याण कार्यक्रमों में भाग लेना।

29. अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता करना। सामाजिक न्याय के लिए योजनाऐं तैयार करना और उनको लागू करने में सहायता करना।

30. आवश्यक वस्तुओं के वितरण में भाग लेना और लोगों में सार्वजनिक चेतना पैदा करने का प्रयत्न करना। इनके अतिरिक्त राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जैसी उसमें विनिर्दिष्ट की जाय कुछ कार्यों को ग्राम पंचायतों को समनुदेशित कर सकती है जिसमें प्रमुख है-

- पंचायत क्षेत्र में स्थित किसी वन की व्यवस्था करना और सुरक्षा की व्यवस्था करना।
- पंचायत क्षेत्र के भीतर स्थित सरकार की बंजर भूमि, चारागाह भूमि या खाली पड़ी भूमि की व्यवस्था करना।
- किसी कर या भू-राजस्व का संग्रह और सम्बन्धित अभिलेखों का अनुरक्षण।

5.7 ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका

भारत गांवों का देश है। अतः भारत का विकास तभी होगा जबकि भारतीय गांवों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाय। इसी उद्देश्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात से ही गांवों का शासन गांव के स्तर पर संचालित करने दिशा में मजबूत पहल प्रारम्भ हुई। ग्रामीण विकास की दिशा में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रथम प्रयास सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात समय-समय पर गांवों के विकास की व्यवहारिकता की जांच करने के लिए विभिन्न समितियों की स्थापना की गयी, जिनकी संस्तुतियों के आधार पर ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाएं संचालित की जाती रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों के महिलाओं और बच्चों के उत्थान को दृष्टिगत रखकर 1983-84 में एकीकृत ग्राम विकास योजना के उपयोजना के रूप में महिलाओं एवं बच्चों का उत्थान कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, इसमें गरीबी-रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली 10-15 महिलाओं का समूह बनाकर उन्हें इच्छित व्यवसायों में प्रशिक्षित कर आय में बृद्धि के लिए स्वावलम्बी बनाया जाता था। इसके लिए उन्हें 25 हजार रूपये 'रिवाल्विंग फंड' की राशि उपलब्ध करायी जाती थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को दूर करने, स्थायी प्रकृति की सामुदायिक परिसम्पत्तियां सृजित करने एवं ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर को बेहतर बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1980-81 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा वर्ष 1983-84 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये थे। रोजगार कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार लाने तथा प्रत्येक गाँव पंचायत को विकसित करने के उद्देश्य से उपरोक्त योजनाओं को समाप्त कर वर्ष 1989-90 में जवाहर रोजगार योजना प्रारम्भ की गयी। जिसमें मिट्टी की सड़क, खडण्जा, नाली, हैण्डपम्प, वृक्षारोपण, पंचायत भवन, साफ-सफाई आदि कार्य किये जाते थे।

गरीबी-रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले ऐसे निर्धन व्यक्तियों जिन्हें वास्तव में रोजगार की आवश्यक ता हो रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 02 अक्टूबर 1983 में सुनिश्चित रोजगार योजना का सूत्रपात किया गया। इस योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण, भू-संरक्षण, मेडों द्वारा अवरोध, वनारोपण, कृषि, बागवानी, वन, चारागाह, सिचाई, सड़क, प्राथमिक स्कूलों में भवनों का निर्माण, आगनबाड़ी के लिए भवनों का निर्माण आदि कार्य किया जाना था।

वर्तमान में मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के समस्त विकास कार्यों को गांवों के जाबकार्ड धारक मजदूरों से कराने का निश्चय किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते है वर्तमान में ग्राम पंचायत ग्रामीण विकास के सबसे सशक्त साधन के रूप में कार्य कर रही है। आज ग्राम पंचायत के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना करना आकाश कुसुम चुनने के समान होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. ऋग्वैदिक काल में ग्राम के अधिकारी को क्या कहा जाता था?
2. रायल कमीशन का गठन कब किया गया था?
3. ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था संविधान के किस भाग में गयी है?
4. बलवन्त राय मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
5. 73वां संविधान संसोधन किससे सम्बन्धित है?
6. क्या उत्तराखण्ड में पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था पायी जाती है?
7. ग्राम पंचायत का चुनाव उसका कार्यकाल समाप्त होने के कितने दिनों के भीतर बाध्यकारी रूप से आवश्यक है?
8. ग्राम निधि से पैसों का आहरण एवं वितरण कौन करता है?
9. पंचायत व्यवस्था की सबसे निचली इकाई कौन है?

5.8 सारांश

भारत की 80 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है, जिनके विकास का उत्तरदायित्व अत्यन्त प्राचीन काल से गांव पंचायतो पर है। इसलिए इनका अस्तित्व वैदिक काल से लेकर अब तक किसी न किसी रूप में बना हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही महात्मा गांधी के द्वारा गांवों का शासन गांव स्तर पर संचालित करने का प्रबल समर्थन किया। गांधी जी के विचारों को दृष्टिगत रखकर ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गांवों को स्वशासन के इकाई के रूप में स्थापित करने का दायित्व संविधान के अनुच्छेद- 40 (राज्य के नीति निदेश क तत्वों) के आधीन राज्यों को दिया गया। इनको मजबूत करने के उद्देश्य से समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया। जिनकी संस्तुतियों के अनुरूप वर्तमान ग्राम पंचायत की व्यवस्था ग्रामीण विकास का प्रबल साधन बन चुकी है। आज गांव पंचायत के विकास की कोई कल्पना गांव पंचायत से हटकर नहीं की जा सकेगी। इसलिए उत्तराखण्ड त्रिस्तरीय पंचायत राज संसोधन अधिनियम संख्या-08, सन् 2002 में पारित किया गया। जिसके द्वारा पूर्व में निर्मित सभी अधिनियमों में संसोधन करके उत्तराखण्ड के परिस्थितियों के अनुकुल ग्राम पंचायत को विकास की धुरी के रूप में स्थापित करने का सम्पूर्ण प्रयास किया गया है। यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि भविष्य में ग्राम के विकास की कोई योजना ग्राम पंचायत से पृथक होकर नहीं बनायी जा सकेगी। अर्थात ग्राम पंचायत ग्रामीण विकास का अतीत, वर्तमान और भविष्य प्रतीत होने लगा है। इसके लिए अधिनियमों के द्वारा ग्राम पंचायत को इतना अधिकार दिया जा चुका है, जिससे वे अपने विकास के दायित्वों का बखूबी निर्वहन करते हुए ग्रामीण विकास के सपनो को साकार करती हुई प्रतीत हो रही है।

5.9 शब्दावली

वैदिक- वेदों के समय का, महाकाव्य- किसी महापुरूष या उच्च कुलोदभव महापुरूष के जीवन का आद्यन्त वृतान्त

स्वतन्त्र- जो अपने नियमों द्वारा संचालित होता हो, अधिकार- सामाजिक जीवन की वह परिस्थिति जिसमें व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त हो, संस्कृति- सभ्य जाति के सदाचार के लक्षण को संस्कृत कहा जाता है, स्वराज्य- अपना राज्य, नीति निदेशक- नीति के निर्धारण हेतु मार्ग-दर्शक, कार्य कारिणी- किसी कार्य को सम्पादित करने के लिए कुछ प्रमुख व्यक्तियों की समिति, गणराज्य- जिस राज्य का प्रमुख प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा चुना जाता है, संवैधानिक- संविधान के व्यवस्थाओं के अनुकुल, अधिनियम-किसी नियम या विधि के अधीन बनाया गया नियम या उपविधि

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रामिक , **2.** 1901 ई0 में, **3.** भाग- 4, **4.** 1956, **5.** ग्रामीण पंचायतों से, **6.** हाँ , **7.** छः माह, **8.** ग्रामप्रधान और सचिव दोनों, **9.** ग्राम पंचायत

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947, हिन्द पब्लिशिंग हाउस, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
2. उत्तरांचल संसोधन अधिनियम- 7 और 8, सन् 2002,
3. हैबले ई0जी0 द्वारा उद्धृत पंचायती राज , सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
4. के0के0 शर्मा, भारत में पंचायती राज, कालेज बुक डिपो, जयपुर।
5. अवध नारायण दूबे , पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणसी।

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. के0के0 शर्मा, भारत में पंचायती राज, कालेज बुक डिपो, जयपुर।
2. अवध नारायण दूबे , पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, वाराणसी।

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में ग्राम पंचायतों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त उल्लेख करें।
2. ग्राम पंचायत के अधिकार एवं कार्यों का उल्लेख करें।
3. ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत की भूमिका का उल्लेख करें।

इकाई- 6 क्षेत्र पंचायत

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 क्षेत्र पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
    6.2.1 स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्र पंचायत(पंचायत समिति)
    6.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद क्षेत्र पंचायत
6.3 क्षेत्र पंचायत की संरचना
6.4 क्षेत्र पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण
6.5 क्षेत्र पंचायत की वित्तीय व्यवस्था
6.6 क्षेत्र पंचायत के कार्य(अधिकार) और दायित्व
    6.6.1 क्षेत्र पंचायत के कार्य
    6.6.2 क्षेत्र पंचायत के दायित्व
6.7 ग्रामीण विकास और क्षेत्र पंचायत
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलती हैं जो कई स्तरों पर विभाजित थीं। इनके मध्य समन्वय बनाये रखने के लिए तभी से मध्यवर्ती संस्थाओ का अस्तित्व भी देखने को मिलता है। मानव समाज के विकास के साथ-साथ इसका स्वरूप भी परिस्कृत होता रहा है। प्राचीन काल में ये संस्थाऐं सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई थीं और इनकी कार्यप्रणाली अत्यन्त प्रभावशाली तथा सक्रिय थीं। मानव जाति के प्रारम्भिक सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में देखने पर ये अत्यन्त कौतूहल पूर्ण प्रतीत होती है। वर्तमान प्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं के सफल संचालन के लिए स्वतन्त्र स्थानीय संस्थाओं का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है।

1952 ई0 में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम का केन्द्र विकास खण्ड को ही बनाया गया था तथा इसके संचालन का दायित्व विकास खण्ड अधिकारी के कंधों पर डाल दिया गया था। किन्तु अपेक्षित जनसहयोग प्राप्त न होने के कारण यह कार्यक्रम सफल नहीं हुआ। इसलिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन व ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाईयों को सुदृढ़ स्थिति प्रदान करने के उद्देश्य से बलवन्त राय मेहता समिति का गठन 1956 ई0 में किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट 1957 ई0 में प्रस्तुत करते हुए मध्य स्तर पर पंचायत समिति के स्थापना की प्रबल संस्तुति की।

समिति की सिफारिशों को दृष्टिगत रखकर ही सन् 1961 में 'उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम' उत्तर प्रदेश विधानमण्डल के द्वारा पारित किया गया। जिसका उद्देश्य, ग्राम स्तर के ऊपर विकास खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना कर प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित करना था। बदलते परिदृश्य में 73वें संविधान संसोधन के उपरान्त सन् 1994 में ग्राम पंचायत, क्षेत्र

पंचायत तथा जिला पंचायत का पुनर्गठन किया गया है। वर्तमान में क्षेत्र पंचायत ग्रामीण विकास के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो रही है। जनता के करीब होने के कारण यह संस्था लोकप्रिय भी होती जा रही है।
यह इकाई क्षेत्र पंचायत से सम्बन्धित है जो पंचायती राज व्यवस्था की मध्यवर्ती संस्था है। इसमें क्षेत्र पंचायत के प्राचीन स्वरूप के साथ-साथ इसकी वर्तमान संरचना (संगठन), वित्तीय व्यवस्था, अधिकार व कृत्य तथा सरकारी कर्मचारियों व सरकार से इसके सम्बन्धों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- क्षेत्र पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- पंचायत राज प्रणाली में क्षेत्र पंचायत की भूमिका को जान सकेंगे।
- क्षेत्र पंचायत के उद्देश्य तथा सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- क्षेत्र पंचायत की वर्तमान में व्यवहारिक स्थिति को समझ सकेंगे।
- ग्राम विकास में क्षेत्र पंचायत की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

6.2 क्षेत्र पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में मौजूद शासन-व्यवस्थाओं के स्वरूप और संचालन के सन्दर्भ में क्षेत्र पंचायत के इतिहास को जानने का प्रयास करते हैं।

6.2.1 स्वतन्त्रता पूर्व क्षेत्र पंचायत(पंचायत समिति)

क्षेत्र पंचायत (पंचायत समिति) की औपचारिक संरचना तो 'पंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961' के द्वारा की गयी, लेकिन ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की मध्यवर्ती इकाईयों का अस्तित्व भी भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। वैदिक काल में ग्राम के अधिकारी को 'ग्रामीक' अनेक गांवों के अधिकारी को 'विषपति' तथा सबसे ऊपर के अधिकारी को 'गोप' कहा जाता था। गोप प्रायः राजा ही होता था। विषपति मध्यवर्ती संस्था का मुखिया होता था हिन्दू राजनीति के प्रसिद्ध लेखक डॉ0 के0पी0 जायसवाल के अनुसार ''प्रारम्भिक काल में जिस राष्ट्रीय जीवन एवं क्रियाओं का अभिलेख मिलता है, वे जनसभाओं तथा संस्थाओं द्वारा सम्पन्न की जाती थीं। ये संस्थाएं भी कई स्तरों पर निर्मित थीं।''
अथर्ववेद में देखने को मिलता है कि ग्रामसभा के अध्यक्षों का निर्वाचन होता था, जिनका कार्यक्षेत्र ग्राम तक ही सीमित एवं मर्यादित था, जिसमें जनशक्ति कम थी। जनशक्ति को बढ़ाकर बड़े-बड़े कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से अनेक ग्रामों को मिलाकर समिति बनाने की भावना विचारको में उठी। इस प्रकार अब तक जो संघीय शक्ति अनेक गांवों में बिखरी हुई थी, इस समिति के अन्तर्गत संगठित हो गयी। समिति के संगठन तक राजा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी थी। समिति के अन्तर्गत प्रत्येक ग्राम सभा के प्रतिनिधि बैठकर नियम बनाते थे। जिसके क्रियान्वयन के लिए कार्यकारिणी समिति अर्थात मन्त्रिमण्डल की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रकार पंचायत की नीचे से ऊपर तक एक अटूट परम्परा प्राचीन काल से देखने को मिलती है। इसका पर्याप्त साक्ष्य वैदिक साहित्य, उपनिषदों एवं जातक कथाओं में भी विद्यमान है।
रामायण और महाभारत काल के साहित्य में भी इस प्रकार के सभाओं और समितियों का उल्लेख मिलता है। शासन के केन्द्रीय स्तर पर तत्कालीन समय में बड़े-बड़े साम्राज्यों के बाबजूद प्रशासन को सुविधा के दृष्टि से विभिन्न इकाईयों में विभक्त किया गया था। सबसे छोटी इकाई ग्राम था। जिसके ऊपर दस ग्राम, विषतिग्राम, शत ग्राम, सहस्रग्राम तथा राज्य थे। इन इकाईयों के अधिकारियों को क्रमश: ग्रामिक, विषतीय, शतग्रामी, अधिपति व राजा कहते थे। इन पदाधिकारियों का कर्तव्य लगान वसूल करना, अपराधियों को दण्डित करना व अपने कार्यक्षेत्र

में शान्ति बनाये रखना था। मनु स्मृति के अनुसार ग्राम का अधिकारी ग्रामिक, दस गांव का अधिकारी दषिक, बीस गांव का अधिकारी विषातीय, सौ गांवों का अधिकारी शतपाल तथा हजार गांव का अधिकारी सहस्रपति कहलाता था।

बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व एवं उनके समय में महाजनपदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे, जिनमें प्रशासन की वास्तविक शक्ति सभा में निहित होती थी जिसके सदस्य मिलकर राज्य की समस्याओं का समाधान करते थे। डॉ0 डी0डी0 शुक्ल ने लिखा है कि बौद्धकालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था। सभा के कार्य बहुमत से होते थे। इस काल में राज्यों में महामात्य, बोहारिक, सूत्रधार, अष्टकुल, सेनापति, उपराजा आदि पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है और सम्भवत ये पदाधिकारी न्याय और प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्य करते रहे होंगे। इस काल के गणराज्यों में गांव की व्यवस्था गांव सभाओंद्वारा होती थी। इस प्रकार की संस्थाएं प्रत्येक स्तर पर मौजूद थीं। उस समय की स्थानीय लोकप्रिय संस्थाओं को अनेक नामों से पुकारा जाता था। उदाहरण के लिए कुल, गण, जाति, पुरा, ब्रत, श्रेणी, संघ, समुदाय, समूह, परिषद, चरण आदि।

मौर्यकाल में भी स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं काफी विकसित थी। शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों के उप विभाग किये गये थे, जो अर्थशास्त्र के अनुसार इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम तथा ग्राम/जनपद। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का पर्याप्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय स्थानीय शासन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। चन्द्रगुप्त ने शासन में विकेन्द्रीकृत शासन प्रणाली अपनाकर बड़ी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने यद्यपि भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया तथा भारत में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु उन्होंने भी स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया। ये संस्थाएं अपने विषयों में स्वतन्त्र तथा स्वायत्तशासी होती थी।

राजपूत काल में स्थानीय शासन का महत्व कम हो गया, क्योंकि उन पर सामन्तों की अधिकार सत्ता छा गयी। सामन्तगण न केवल स्थानीय शासन को ही कम महत्व देते थे, बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियन्त्रण मुक्त होने का भी प्रयत्न करते रहते थे। तत्कालीन शासन(राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था। शासन विकेन्द्रीकरण की भावना पर आधारित होने के कारण केन्द्रीय शक्ति को हमेशा खतरा बना रहता था।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं, फिर भी संगठन एवं कार्यप्रणाली के दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तगर्त ही हुआ। 1882 ई0 में लार्ड रिपन द्वारा पारित प्रस्ताव स्थानीय स्वायत्त शासन आन्दोलन को नया बल प्रदान किया। इस प्रस्ताव से स्थानीय शासन को व्यवस्थित करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय बोर्डों का विस्तार करने में सहायता मिली। इसलिए इस प्रस्ताव को भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का महालेख (मैग्नाकार्टा) कहा जाता है। 1883 ई0 में एक अधिनियम बनाकर पिछड़े इलाकों को छोड़कर प्रत्येक तहसील व जिले में एक लोकल बोर्ड की स्थापना की गयी। इस प्रकार लार्ड रिपन का प्रस्ताव भारतीय शासन को वास्तविकता एवं व्यवहारिकता के निकट लाने का प्रयास था, लेकिन इसे सफलता नहीं मिली। बाद में 1909 में शाही आयोग, 1919 में मांण्टेग्यू चैम्स फोर्ड रिपोर्ट आदि के रूप में ग्रामीण जनता की चेतना को जागृत करने का प्रयास किया गया। 1919 के अधिनियम के द्वारा पंचायतोंको प्रान्तीय सरकारों सौंप दिया गया। इसी समय 1920-21 के आस-पास गांधीजी की ग्रामोद्योग योजना तथा एम0एन0 राय की जनता योजना महत्वपूर्ण थी।

1935 में भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना हुई। जिससे प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ तथा देहाती क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा और स्थानीय स्वायत्त

शासन की संस्थाओं को अधिकाधिक लोकतन्त्रीय बनाये जाने की चेष्टा की गयी। किन्तु 1939 ई0 में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के त्याग-पत्र देने तथा द्वितीय विश्व युद्ध के कारण स्थानीय संस्थाओं की प्रगति रूक गयी। जिसके फलस्वरूप इन संस्थाओं के पुनर्जीवन के लिए स्वतन्त्र भारत की प्रतीक्षा थी।

6.2.2 स्वतन्त्रता बाद क्षेत्र पंचायत

सूक्ष्म अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थिति ऊहापोह की रही है। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में विधिवत स्थान प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी इनके उत्थान और पतन की कहानी पूर्व की भाँति दृष्टिगोचर होती है। स्वातन्त्रोत्तर भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन के इतिहास में नये युग का सूत्रपात हुआ और इस दिशा में नये सिरे से 'शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति' का आलम्बन किया गया।

1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ इस उद्देश्य से किया गया कि जनता के सहयोग से विकास योजनाएं बनायी व क्रियान्वित की जायेगी। इसी उद्देश्य से 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा का भी प्रारम्भ किया गया, जिसमें ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं और खण्ड विकास अधिकारी दोनों में समन्वय बनाने की कोशिष की गयी। उदाहरणार्थ- खण्ड स्तरीय सलाहकार समिति में ग्राम समितियों के सदस्य, विधानमण्डल व संसद के वे सदस्य जिनके निर्वाचन क्षेत्र में विकास खण्ड था तथा सहकारी समितियों व प्रगतिशील किसानों को सम्मिलित किया गया था। इस तरह यह व्यवस्था शासन के विकेन्द्रीकरण को दृष्टिगत रखते हुए किया गया था, किन्तु इसे अपेक्षित जन सहयोग नहीं मिला।

इसलिए भारत सरकार ने 1956 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। मेहता समिति ने पूरे देश में चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिधि संगठनों के सदस्यों, विकास विभाग और अन्य विभागों के सचिवों से बातचीत की। तत्पश्चात इस प्रश्न पर विचार किया कि तत्कालीन संस्थाएं कार्य कर सकती हैं या नहीं और यदि नहीं तो कौन सी नयी संस्थाएं किस स्तर तथा किन शक्तियों एवं साधनों के साथ निर्मित की जाय। समिति ने अपनी रिपोर्ट 24 नवम्बर 1957 को सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

बलवन्त राय मेहता समिति ने ग्राम स्तर से जिला स्तर तक स्थानीय निकाय के त्रिस्तरीय स्वरूप को मान्यता प्रदान की। समिति ने ब्लाक स्तरीय निकाय को 'पंचायत समिति' का नाम दिया। अपनी त्रिस्तरीय योजना में समिति ने इस निकाय को सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई माना और इसे विकास खण्ड स्तर पर स्थापित किये जाने पर बल दिया। पंचायत समिति के गठन के सम्बन्ध में समिति का सुझाव था कि पंचायत समिति का संगठन ग्राम पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होगा। खण्ड के अन्तर्गत आने वाली ग्राम पंचायतों के समूह को इकाई मानकर उनके सभी पंचों द्वारा निर्धारित संख्या में पंचायत समिति के सदस्यों का चुनाव किया जायेगा। निर्वाचित सदस्यों द्वारा दो महिला सदस्यों का अनुमेलन किया जायेगा। यदि विकास खण्ड में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या 05 प्रतिशत से अधिक है और इस वर्ग का कोई सदस्य निर्वाचित न हो तो उस दशा में इस वर्ग के भी एक-एक सदस्यों का अनुमेलन किया जायेगा। प्रशासन, सार्वजनिक जीवन और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विशिष्ट अनुभव रखने वाले दो व्यक्तियों को भी पंचायत समिति अनुमेलित कर सकती है। पंचायत समिति का कार्यकाल पांच वर्ष होगा। इसका एक निर्वाचित अध्यक्ष होगा।

मेहता समिति ने पंचायत समिति के कार्यों में कृषि-विकास, बीजों का चुनाव, संरक्षण एवं वितरण, सहकारी बैंकों एवं शासकीय सहायता के साथ स्थानीय कृषि वित्त की व्यवस्था, लघु सिंचाई का विकास, स्थानीय उद्योगों का विकास, पेयजल आपूर्ति, स्वच्छता और जन स्वास्थ्य, औषधि सहायता, स्थानीय तीर्थ स्थलों एवं उत्सवों के सम्बन्ध में व्यवस्था, प्राथमिक पाठशालाओं की व्यवस्था और प्रशासकीय नियन्त्रण, पिछड़े वर्गों के लोगों का कल्याण, मजदूरी का निर्धारण, ग्राम पंचायतों की सड़कों को छोड़कर स्थानीय महत्व के सड़कों की मरम्मत और

निर्माण तथा आकड़ों का संग्रह एवं रख-रखाव आदि को शामिल किया। पंचायत समिति विकास योजनाओं के क्रियान्वयन एवं हस्तान्तरण सम्बन्धी क्रियाकलापों के सम्पादन में राज्य के अभिकरण के रूप में कार्य करेगी।
मेहता समिति ने पंचायत समितियों को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाने पर विशेष बल दिया, जिससे कि वे विकास कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित कर सकें, क्योंकि समिति के अनुसार ग्रामीण स्थानीय स्वायत्त शासन की विफलता का एक महत्वपूर्ण कारण उनमें संसाधनों का अत्यधिक अभाव रहा है। समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों के सम्पूर्ण विकास का दायित्व पंचायत समितियों को सौंपने की प्रबल संस्तुति की। समिति ने पंचायत समिति के आय के लिए निम्नलिखित स्रोतो की अनुशंसा की-

1. विकास खण्ड से जो भू-राजस्व राज्य सरकार द्वारा वसूल किया जाय उसका एक निश्चित भाग पंचायत समिति को स्थानान्तरित हो।
2. भू-राजस्व एवं जल कर देने आदि पर विचार।
3. सड़कों एवं पुलों पर चुंगी कर।
4. अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर।
5. व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर।
6. घाटों तथा मत्स्य क्षेत्रों से मिलने वाला किराया और लाभ।
7. मनोरंजन के साधनों पर कर।
8. तीर्थ स्थानों पर कर।
9. प्राथमिक शिक्षा पर कर।
10. मोटर गाड़ी पर लगने वाले कर का एक निश्चित भाग भी राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को स्थानान्तरित हो।
11. मेलों, बाजारों व हाटों से होने वाली आय।
12. जनता से विभिन्न प्रकार की आय।
13. शासन द्वारा दिया गया अनुदान।

पंचायत समिति को ग्रामीण अंचलों में अधिक प्रभावी व उपयोगी बनाने हेतु मेहता समिति द्वारा पर्याप्त शासकीय अनुदान की संस्तुति की गयी। समिति के अनुसार विकास खण्ड में व्यय की जाने वाली समस्त केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की राशि पंचायत समिति को ही सौंप दी जानी चाहिए, जिससे वह ग्रामीण विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से खर्च कर सके।
मेहता समिति के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज के प्रथम और द्वितीय सोपान पर क्रमश: ग्राम पंचायत तथा पंचायत समितियों को मुख्य इकाईयां मानते हुए तृतीय सोपान पर जनपद स्तर पर जिला परिषद के गठन की संस्तुति की गयी। समिति के अनुसार जिला परिषद ग्राम पंचायत एवं पंचायत समितियों के मध्य समन्वयात्मक कड़ी के रूप में कार्य करेगी। इसमें जिले के पंचायत समितियों के अध्यक्ष, जनपद के समस्त सांसद तथा विधायक, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य, कृषि, पशु चिकित्सा, अभियन्त्रण, शिक्षा, पिछड़ा वर्ग कल्याण, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी सदस्य के रूप में सम्मिलित होने चाहिए। जिला परिषद का कार्य प्रशासकीय नहीं होगा, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं- ग्राम पंचायत एवं पंचायत समिति के कार्य करने की स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिला परिषद पंचायत समितियों के बजट की जांच करेगी उसकी मांगोंको सरकार की ओर अग्रसर करेगी, सरकार से प्राप्त धन का खण्डों में वितरण करेगी, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगी और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी तथा उनके गतिविधियों की सामान्य निगरानी करेगी।
बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों और सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात स्वीकार कर लिया गया और राज्य सरकारों को उनकी अनुशंषाओं के आधार पर

पंचायती राज की स्थापना करने का निर्देश दे दिया गया। समिति की रिपोर्ट पंचायती राज के कार्य एवं निर्देशन की एक मोटी संरचना थी। वह भारत के स्थानीय शासन का संविधान नहीं थी, जिससे विचलित न हुआ जा सके। भारत सरकार के निर्देशानुसार सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखकर उत्तर प्रदेश में क्षेत्र पंचायत तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा गांव सभा, क्षेत्र पंचायत और जिला परिषद को एक सूत्र में बांधा गया। यही से क्षेत्र पंचायत की विधिवत स्थापना उत्तर प्रदेश मे मानी जा सकती है।

बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन और संस्तुतियों के आधार पर विभिन्न राज्यों में पंचायत व्यवस्था का पुनर्गठन किया गया। लगभग एक दशक पश्चात इन संस्थाओं का मूल्यांकन कर इन्हें अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को अशोक मेहता के नेतृत्व में एक 13 सदस्यीय समिति का गठन किया गया, जिसने अध्ययनोपरान्त पंचायती राज संस्थाओं के सुधार हेतु विभिन्न सुझाव दिये। इस समिति के द्वारा पंचायत के परम्परागत त्रिस्तरीय ढ़ाँचे के स्थान पर द्विस्तरीय ढ़ाँचे की सिफारिश की गयी। अर्थात जनपद स्तर पर जिला परिषद तथा निम्न स्तर पर मण्डल पंचायत। इस प्रकार इस समिति ने जिला स्तर के नीचे ब्लाक को विकेन्द्रीकरण का स्तर नहीं माना और गांव तथा ब्लाक के मध्य कई गावों को मिलाकर 15 से 20 हजार की जनसंख्या पर मण्डल पंचायत स्थापित करने की संस्तुति की। इस मण्डल पंचायत को जिला परिषद के बाद विकास के कार्यप्रणाली का द्वितीय सोपान माना। इस समिति के द्वारा ग्राम पंचायत तथा क्षेत्र पंचायत दोनों के अस्तित्व को नकार दिया गया। समिति के संस्तुतियों पर विचार करने के लिए 1979 में राज्यों के मुख्यमन्त्रियों का सम्मेलन आहूत किया गया। जिसमें अधिकांश राज्यों ने पंचायतों के द्विस्तरीय ढ़ाँचे की सिफारि को अस्वीकार कर दिया। इसलिए केन्द्रीय स्तर पर समिति के सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी, लेकिन तीन राज्यों- पश्चिाम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक ने अपने-अपने राज्यों में पंचायती राज को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठाये।

पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सघन विकास करने एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिएप्रशासनिक प्रबन्ध पर जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में 1985 में एक समिति बनायी गयी। समिति द्वारा स्थानीय स्तर पर राज्य की शक्तियों को हस्तान्तरित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए पूरे देश में पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने की सिफारिश की गयी। इसमें राज्य विकास परिषद, जिला परिषद, पंचायत समिति तथा ग्राम सभा प्रमुख संस्थाएं होंगी। यद्यपि समिति ने जिला परिषद को प्रमुख निकाय बनाने की अनुशंसा की, फिर भी खण्ड विकास अधिकारी को ऊँचा उठाने तथा विकास खण्ड के विकास को गति प्रदान करने के लिए खण्ड विकास स्तर पर एक सहायक विकास कमिश्नर के पद सृजन की भी अनुशंसा की। जिस पर 25 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति की नियुक्ति की जाय। मैदानी क्षेत्र में एक लाख तथा पहाड़ी क्षेत्र में 50 हजार की जनसंख्या पर विकास खण्ड बनाया जाय।

31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद अचानक राजीव गाँधी जैसे युवा नेता का पदार्पण भारत सरकार के प्रधानमन्त्री के रूप में हुआ। पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास की दुर्दशा ने राजीव गाँधी के हृदय को झकझोर कर रख दिया। युवा प्रधानमन्त्री में महसूस किया कि जब तक सत्ता राजनेताओं के चंगुल में बन्द रहकर फड़फड़ाती रहेगी तब तक देश के क्षितिज पर आम जनता की खुशहाली का स्वर्णिम प्रभात उदित नहीं होगा, इसलिए उन्होंने घोषणा की कि जो सत्ता राजनेताओं को जनता द्वारा मतदान के माध्यम से सौंपी जाती है वह सत्ता जनता को लौटा दी जाय। उन्होंने एक नारे का उद्-घोष किया ''जनता को सत्ता सौंप दो।'' इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर 1989 में 64वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा मेंपेश किया गया। इस विधेयक में 20 लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत का प्रावधान किया गया था, लेकिन कतिपय कारणों से यह विधेयक लोकसभा में पारित होने के बाद राज्य सभा में पारित नहीं हो सका।

73वां संविधान संसोधन अधिनियम1992 पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व काल में संसद द्वारा पारित किया गया। इस संसोधन के द्वारा संविधान में9वां भाग जोड़कर यह सुनिश्चित किया गया कि पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना अब संविधान द्वारा राज्यों का अनिवार्य कर्तव्य है। यह अधिनियम 64वें संविधान संसोधन की खामियों को दूर कर बनाया गया था। इसके द्वारा पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था , महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए स्थानों का आरक्षण, वित्त आयोग का गठन आदि व्यवस्थाएं की गयी। जिसके आलोक में उ0प्र0 पंचायत विधि संसोधन विधेयक 1994 प्रवृत्त हुआ। इसके प्रावधानों के अनुरूप त्रिस्तरीय पंचायतों को सौपे जाने वाले कार्यों एवं दायित्वों का निर्धारण करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अगस्त 1994 में जे0 एल0 एल0 बजाज की अध्यक्षता में 'प्रशासनिक सुधार एवं विकेन्द्रीकरण समिति ' का गठन किया गया। समिति ने क्षमता के अनुसार 32 विभागों के कार्यों को पूर्ण रूपेण पंचायती संस्थाओं को सौंपने की संस्तुति की। समिति ने व्यक्त किया कि प्रत्येक विकास खण्ड में एक किसान सेवा केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए जो वस्तुओं और सेवाओं का निक्षेप करेगी। इस उपयोगी योजना का क्रियान्वयन क्षेत्र पंचायत करेगी तथा ए0डी0ओ0 स्तर का एक अधिकारी इसके संयोजक के रूप में नामांकित किया जायेगा। बजाज समिति के सिफारिशों को क्रियाविन्त करने के पूर्व समिति के सिफारिशों पर विचार करने के लिए दिसम्बर 1995 में पुनः कृषि उत्पादन आयुक्त भोलानाथ तिवारी की अध्यक्षता में एक 'उच्चाधिकार समिति' का गठन किया गया। जिससे विचारोपरान्त बजाज समिति के सिफारिशों को स्वीकृति प्रदान की। 09 नवम्बर 2000 में उत्तराखण्ड के पृथक राज्य के रूप में अस्तित्व में आने के बाद उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या- 8, सन् 2002 में पारित किया गया। जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश पंचायत विधि संसोधन अधिनियम 1994 को स्वीकार करते हुए व्यवस्था की गयी कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1947 तथा क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत अधिनियम 1961 में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश शब्द आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढ़ा जायेगा।

6.3 क्षेत्र पंचायत की संरचना

राज्य सरकार गजट में अधिसूचना द्वारा प्रत्येक खण्ड के लिए एक क्षेत्र पंचायत स्थापित करेगी, जिसका नाम विकास खण्ड के नाम पर होगा। क्षेत्र पंचायत का एक प्रमुख होगा, जो इसका पीठासीन होगा। इसके अलावा खण्ड विकास के समस्त ग्राम पंचायतों के प्रधान, निर्वाचित सदस्य जो पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जायेंगे, (प्रादेशिक निर्वाचन पर्वतीय क्षेत्र में 25 हजार तक की जनसंख्या पर 20 तथा 25 हजार से अधिक जनसंख्या पर अधिकतम् 40 होगी एवं मैदानी क्षेत्र में 50 हजार तक की जनसंख्या पर 20 तथा 50 हजार से ऊपर अधिकतम् 40 होंगी। किन्तु किसी क्षेत्र पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र में किसी संघटक ग्राम पंचायत का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र भागतः सम्मिलित नहीं किया जायेगा)। लोक सभा और राज्य की विधान के ऐसे सदस्य जिनका क्षेत्र, क्षेत्र पंचायत सीमा में सम्मिलित हो तथा राज्य सभा और राज्य विधान परिषद के सदस्य जो खण्ड विकास के अन्दर मतदाता के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, से मिलकर बनेगी। केवल अविश्वास प्रस्ताव को छोड़कर अन्य सभी कार्यवाहियों में सभी सदस्यों को भाग लेने का अधिकार होगा।

निर्वाचित सदस्यों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के सदस्यों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होगा। पिछड़े वर्गों के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित होगा लेकिन यह चौदह प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। आरक्षित स्थानों की संख्या का आधे से कम स्थान उस वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित होगा तथा कुल स्थानों के आधे से अन्यून स्थान भी महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। यह आरक्षण चक्रानुक्रम में जैसा नियत किया जाय परिवर्तित होता रहेगा। क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा अपने में से ही एक प्रमुख, एक ज्येष्ठ उपप्रमुख तथा एक कनिष्ठ उपप्रमुख का चुनाव किया जाता है।क्षेत्र पंचायत के प्रमुखों के

स्थान भी उपर्युक्त वर्णित प्रकार से ही आरक्षित होंगे। किन्तु आरक्षित वर्ग के लोगों को सामान्य स्थानों से चुनाव लड़ने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

क्षेत्र पंचायत के कार्यों व दायित्वों के सुचारु व सरल संपादन के लिए निर्माण एवं कार्य समिति, नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति और समय-समय पर राज्य सरकार जैसी अपेक्षा करे समितियों का गठन किया जायेगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत आवश्यक समझे तो किसी विषय के जांच या परामर्श देने के लिए भी समय-समय पर अधिनियम के अधीन एक या अधिक परामर्श समितियां नियुक्त कर सकती है। समितियों के गठन का उद्देश्य सामूहिक विचार-विमर्श के आधार पर पारदर्शी निर्णय लेने के लिए किया जाता है।

6.4 क्षेत्र पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण

73वें संविधान संसोधन के द्वारा तीनों स्तर की पंचायत संस्थाओं में एक रूपता लाने का प्रयास किया गया है। क्षेत्र-पंचायत अपने दायित्वों का निर्वहन निष्ठा पूर्वक करे, इसके लिए क्षेत्र पंचायत पर राज्य सरकार को नियन्त्रण रखने का अधिकार कुछ निश्चित सीमाओं के तहत दिया गया है। राज्य सरकार को यदि यह प्रतीत हो जाय कि क्षेत्र पंचायत या उसके किसी समिति के द्वारा अपने कार्यों को करने में कोई त्रुटि की गयी है तो वह उसे सुधारने का अवसर एक निश्चित समयावधि में दे सकती है। यदि उस समयावधि में क्षेत्र पंचायत उस कार्य को अच्छे प्रकार से नहीं करती तो राज्य सरकार अपने किसी अधिकारी के माध्यम से उस कार्य को करवा सकती है। ऐसी स्थिति में उस कार्य पर होने वाले खर्च का वहन क्षेत्र पंचायत द्वारा उठाया जायेगा।

यदि क्षेत्र पंचायत के किसी सदस्य या प्रमुख के द्वारा अपने पद पर रहते हुए अपने किसी कृत्य से स्वयं अथवा किसी के व्यवसायिक हित को लाभ पहुँचाया गया हो या वह शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो गया हो या उसके किसी कृत्य से क्षेत्र पंचायत को क्षति पहुँची हो तो ऐसे लोगों को नियत रीति से उनके पद से हटाया जा सकता है, किन्तु ऐसा करने से पूर्व उस व्यक्ति को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत यदि अधिनियम द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से न करे या अपने अधिकारों का दुरूपयोग करे तो राज्य सरकार उससे स्पष्टीकरण मांग सकती है यदि जाचोपरान्त यह सिद्ध हो जाय कि क्षेत्र पंचायत के आकृत्य उसे विघटित करने के लिए पर्याप्त है तो वह उसे विघटित कर उनके कृत्यों का सम्पादन करने के लिए किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकती है। ऐसे विघटन के छः माह के भीतर क्षेत्र पंचायत का नये सिरे से निर्वाचन कराकर गठन करना आवश्यक होता है।

जिलाधिकारी जिले का मुखिया होने के कारण क्षेत्र पंचायत के ऊपर नियन्त्रण रखता है। वह उसके कार्यों का निर्देशन, नियन्त्रण व जांच कर सकता है। क्षेत्र पंचायत का एक पृथक प्रशासनिक तन्त्र होता है जिसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी या अगुवा खण्ड विकास अधिकारी होता है, वह क्षेत्र पंचायत के सचिव के रूप में भी कार्य करता है। वह उन विकास अधिकारियों के दल का भी नेता होता है जो पशुपालन, सहकारिता, पंचायती राज, लघु सिचाई, लोक स्वास्थ्य, उद्योग आदि विभागों में कार्य करते हैं। ये अधिकारी पेशेवर लोक सेवक होते हैं और राज्य सरकार के नौकर के रूप में कार्य करते है। खण्ड विकास में क्षेत्र पंचायत के अन्तर्गत खण्ड विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी(कृषि), प्रसार अधिकारी (पशुपालन), प्रसार अधिकारी (सहकारिता), प्रसार अधिकारी (पंचायत), प्रसार अधिकारी (ग्रामीण उद्योग), सर्वेक्षक (ओवरसियर), मुख्य सेविका, ग्राम सेवक, ग्राम सेविकाएं, प्रगति सहायक, लेखाकार एवं भण्डारी, वरिष्ठ लिपिक, रोकड़िया, टंकणकर्ता, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, पशुपालन भण्डारी, संदेश वाहक, पशु चिकित्सा, चिकित्साधिकारी, कम्पाउण्डर, सफाई निरीक्षक, महिला स्वास्थ्य निरीक्षक, दाईयां, सफाई कर्मचारी आदि होते है।

6.5 क्षेत्र पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

क्षेत्र पंचायतों अपने दायित्व का उचित तरीके से निर्वहन कर सके, इसके लिए वित्तीय व्यवस्था परम आवश्यक है, इसलिए प्रत्येक क्षेत्र पंचायत के अधीन एक क्षेत्र निधि की स्थापना की जाती है। जिसमें राज्य सरकार के प्राप्त समस्त अनुदान तथा जिला पंचायत की ओर से प्राप्त की गयी समस्त धनराशियां जमा की जाती हैं। इसके अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत नकद अथवा वस्तु के रूप में ऐसा अंशदान स्वीकार कर सकती है जो कोई व्यक्ति सार्वजनिक उपयोगिता के किसी कार्य के लिए देता है। इसे जहाँ कहीं आवश्यक हो, क्षेत्र पंचायत अपने अंशदान सहित कार्य के निष्पादन में लगायेगी। क्षेत्र पंचायत, निधि में से धन का समस्त आहरण और उसका वितरण प्रमुख और खण्ड विकास अधिकारी द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है।

क्षेत्र पंचायत को नियमों के अधीन कुछ कर लगाने व वसूलने का अधिकार भी होता है यथा जलकर- जहाँ वह पीने के पानी, सिचाई या किसी अन्य प्रयोजन के लिए पानी की व्यवस्था या किसी योजना का निर्माण या अनुरक्षण करती है। विद्युतकर, जहाँ वह किसी सार्वजनिक मार्ग या सार्वजनिक स्थान पर प्रकाश की व्यवस्था या उसका अनुरक्षण करती है। तथा कोई अन्य ऐसा कर संविधान द्वारा राज्य को दिया गया हो और राज्य सरकार ने क्षेत्र पंचायत को प्राधिकृत किया हो। क्षेत्र पंचायत उन लाइसेंसों, स्वीकृति या अनुमति के लिए भी शुल्क ले सकती है जो उपविधि द्वारा उसे दिये गये हों। ऐसे बाजार जो क्षेत्र पंचायत द्वारा स्थापित तथा अनुरक्षित हैं उसमें होने वाले व्यवसाय पर शुल्क वसूल सकती हैं।

6.6 क्षेत्र पंचायत के कार्य(अधिकार) और दायित्व

पंचायतीराज व्यवस्था में क्षेत्र पंचायत मध्यम स्तरीय संस्था है। क्षेत्र पंचायत को अधिनियम द्वारा निम्नलिखित अधिकार एवं कृत्य सौंपे गये हैं-

6.6.1 क्षेत्र पंचायत के कार्य

1. कृषि और बागवानी की प्रोन्नति और विकास तथा सब्जियों, फलों एवं पुष्पों की खेती और विपणन की प्रोन्नति।
2. सरकार के भूमि सुधार, भूमि संरक्षण और चकबन्दी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सरकार और जिला पंचायत की सहायता करना।
3. लघु सिचाई कार्यों के निर्माण और अनुरक्षण में सरकार और जिला पंचायत की सहायता करना एवं सामुदायिक और वैयक्तिक सिचाई कार्यों का कार्यान्वयन।
4. पशु सेवाओं का अनुरक्षण, पशु, कुक्कुट और अन्य पशुओं के नस्लों का सुधार, दुग्ध उद्योग, कुक्कुट पालन एवं सूअर पालन की प्रोन्नति।
5. मत्स्य पालन के विकास की प्रोन्नति।
6. सड़कों और सार्वजनिक भूमि के किनारों पर वृक्षारोपण एवं परिरक्षण, सामाजिक वानिकी और रेशम उत्पादन का विकास और प्रोन्नति।
7. लघु वन उत्पादों की प्रोन्नति और उसका विकास।
8. ग्रामीण उद्योग के विकास में सहायता करना, कृषि उद्योगों के विकास की सामान्य जानकारी का सृजन करना।
9. कुटीर उद्योगों के उत्पादों की प्रोन्नति एवं उसके विपणन की व्यवस्था करना।
10. ग्रामीण आवास कार्यक्रम में सहायता देना और उसका कार्यान्वयन।
11. पेयजल की व्यवस्था करना तथा उसके विकास में सहायता देना, प्रदूषित जल को पीने से बचाना, ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना और उसका अनुश्रवण करना।

12. ईंधन और चारा से सम्बन्धित कार्यक्रमों को प्रोन्नति, पंचायत क्षेत्र में सड़कों के किनारे वृक्षारोपण।
13. गांवों के बाहर सड़कों, पुलियों का निर्माण और उनका अनुरक्षण, पुलों का निर्माण, नौकाघाटों और जलमार्गों के प्रबन्ध में सहायता।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण की प्रोन्नति।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग को बढ़ावा देना और उसकी प्रोन्नति।
16. गरीबी उपशमन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
17. प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का विकास, प्रारम्भिक और सामाजिक शिक्षा की प्रोन्नति।
18. ग्रामीण शिल्पकारों एवं व्यवसायिक शिक्षा की प्रोन्नति।
19. प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का पर्यवेक्षण।
20. ग्रामीण पुस्तकालयों की प्रोन्नति और पर्यवेक्षण।
21. सांस्कृतिक कार्यों का पर्यवेक्षण, क्षेत्रीय लोक गीतों, नृत्यों और ग्रामीण खेलकूद की प्रोन्नति एवं आयोजन तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का विकास तथा प्रोन्नति।
22. ग्राम पंचायत के बाहर मेलों और बाजारों (जिसमें पशु मेला भी सम्मिलित है) की प्रोन्नति, पर्यवेक्षण और प्रबन्ध।
23. प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालयों की स्थापना और अनुरक्षण, महामारियों का नियन्त्रण एवं ग्रामीण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
24. परिवार कल्याण और स्वास्थ्य कार्यक्रमों की प्रोन्नति।
25. महिलाओं और बाल स्वास्थ्य के विकास एवं पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमों में संगठनों की सहभागिता के लिए कार्यक्रमों की प्रोन्नति।
26. समाज कल्याण कार्यक्रमों, जिसके अन्तर्गत विकलांगों एवं मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों के कल्याण भी हैं, में भाग लेना तथा वृद्धावस्था एवं विधवा पेंशन का अनुश्रवण करना।
27. अनुसूचित जातियों और कमजोर वर्गों के कल्याण को प्रोन्नति, सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
28. आवश्यक वस्तुओं का वितरण।
29. सामुदायिक आस्तियों के परिरक्षण और अनुरक्षण का अनुश्रवण और मार्गदर्शन करना।
30. आर्थिक विकास के लिए योजनाएं तैयार करना, ग्राम पंचायतों के योजनाओं का पुनर्विलोकन, समन्वय तथा एकीकरण, खण्ड तथा ग्राम पंचायत विकास योजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना, सफलताओं तथा लक्ष्यों की नियतिकालिक समीक्षा तथा खण्ड योजना के कार्यान्वयन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र करना तथा आंकड़े रखना।
31. नियत प्रक्रिया के अनुसार ग्राम पंचायतों को अनुदानों का वितरण, ग्राम पंचायत के क्रियाकलाप के ऊपर नियमों के अनुसार सामान्य पर्यवेक्षण।
32. प्राकृतिक आपदाओं में सहायता देना।

6.6.2 क्षेत्र पंचायत के दायित्व

उपरोक्त अधिकारों एवं कृत्यों के अतिरिक्त क्षेत्र पंचायत के द्वारा निम्नलिखित दायित्वों का भी निर्वहन किया जाता है-

1. ग्राम पंचायत के प्रधान तथा न्याय पंचायत के पंचों, सरपंचों एवं सहायक सरपंचों के पद की शपथ दिलाना।
2. सिंचाई की छोटी योजनाओं को हाथ में लेना तथा ग्राम पंचायत के प्रस्तावों को स्वीकृत करना।

3. प्राइमरी स्कूल तथा आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक अथवा यूनानी अस्पताल या औषधालय स्थापित तथा अनुरक्षित करने के लिए खण्ड में स्थित पास-पड़ोस के ग्राम पंचायतों के किसी समूह को परस्पर सम्मिलित होने का निर्देश देना।
4. पंचायत द्वारा किसी ऐसे पदों के सृजन का अनुमोदन करना, जिसके लिए उसके बजट में व्यवस्था न हो।
5. पंचायत कर्मचारियोंका खण्ड के अन्दर या खण्ड से बाहर स्थानान्तरण करना।
6. न्याय पंचायतों के अधीन सेवकों की नियुक्तियां स्वीकृत करना तथा उनके सम्बन्ध में स्थानान्तरण, दण्ड, पद-मुक्ति तथा पदच्युति के अधिकारों का प्रयोग करना।
7. पंचायत सचिवों पर छुट्टी, स्थानान्तरण तथा अन्य अनुशासन सम्बन्धी अधिकार जिनमें नियुक्ति, पदोन्नति, पदच्युति तथा हटाये जाने सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित नहीं है।
8. खण्ड के अन्दर संयुक्त समिति के संघटक इकाईयों के मध्य विवादोंको तय करना।
9. गलती से छोड़े गये किसी व्यक्ति पर कर या उप शुल्क लगाने के लिए ग्राम पंचायतों को निर्देश देना।
10. यदि ग्राम पंचायत अपने अदेयों की मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल करने के लिए तीन महीने के भीतर संकल्प पारित ना करे तो पंचायत करों का मालगुजारी के बकाया के रूप में वसूल किया जाना प्राधिकृत करना।
11. किसी कर या उप शुल्क से पूर्णतः या अंशतः छूट देने के, ग्राम पंचायत के निर्णय को अनुमोदित करना।
12. उस अनुपात को निर्धारित करना जिसमें न्याय पंचायत के व्यय सर्किल में सम्मिलित ग्राम पंचायत की निधियों (Gaonfunds) पर भारित होंगे।
13. ग्राम पंचायत द्वारा कोई अन्य कर्तव्य या कृत्य किये जाने का निर्देश देना।

6.7 ग्रामीण विकास और क्षेत्र पंचायत

क्षेत्र पंचायत, पंचायती राज व्यवस्था की धुरी है, क्योंकि इसका आकार न तो जिला पंचायत जैसे इतना बड़ा है कि यह जनता के पहुँच से दूर हो जाय और न ही ग्राम पंचायत जैसे इतना छोटा कि वह प्रभावी संस्था के रूप में कार्य न कर सके। बल्कि यह मध्य स्तरीय ऐसी की संस्था है जो जन सामान्य के अत्यन्त नजदीक होती है। इसलिए क्षेत्रीय ग्रामीण विकास और उन्नति का सबसे अधिक दायित्व भी इसी के कंधो पर होता है। 1955 ई0 में राष्ट्रीय विकास सेवा के अन्तर्गत समस्त विकास योजनाओं को लागू करने के लिए अविकसित क्षेत्रों में शैडो ब्लाक की स्थापना की गयी। 1967 में उ0प्र0 के पूर्व मुख्यमन्त्री स्व0 चरण चौधरी ने शैडो विकास खण्डों को राष्ट्रीय प्रसार सेवा (NES) में पुनः मिला दिया। विकास प्रक्रिया के प्रथम चरण में कृषि उत्पादन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता एवं सिचाई के मदों पर पूर्ण ध्यान केन्द्रित कर हरित क्रान्ति लाने का प्रयास किया गया। इसके साथ ही गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के लिए 02 अक्टूबर 1980 से पूरे भारत में एकीकृत ग्राम विकास योजना लागू की गयी जिसके अन्तर्गत कृषि एवं सिचाई पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय एवं सेवा के क्षेत्रों में लगे लोगों को ऋण व अनुदान की सुविधा प्रदान कर उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया गया।

क्षेत्र पंचायत एक तरफ विकास खण्ड के समस्त ग्राम पंचायतों के कार्यों एवं नीतियों में समन्वय स्थापित करता है तो वहीं दूसरी तरफ खुद क्षेत्र के विकास के लिए योजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन करती है। क्षेत्र पंचायत के अधिकांश सदस्य ग्राम क्षेत्र से निर्वाचित होते हैं, जो ग्रामीण समस्याओं से भली-भाँति अवगत होते हैं। ग्रामीण विकास के लिए प्राप्त अनुदानों को इन्हीं के प्रस्ताव पर खर्च किया जाता है। नयी व्यवस्था के तहत पंचायतों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किये गये हैं, जिनको सामाजिक विकास हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषक आहार जैसी सुविधाओं से शैशवावस्था से ही वंचित रखा जाता है। इसका असर निश्चित रूप से उनकी प्रतिभा पर भी पड़ता है। इस व्यवस्था से आधी आबादी के विकास को भी निश्चित रूप से बल मिल रहा है।

ग्रामीण विकास की तमाम योजनाओं के क्रियान्वयन में महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। जिसका प्रभाव निश्चित रूप से उनके जीवन स्तर पर पड़ रहा। क्षेत्र पंचायत द्वारा अपने संसाधनों का प्रयोग वर्तमान में 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी कार्यक्रम' के तहत किया जा रहा है। जिससे एक तरफ जहाँ गांवों में रास्ता, साफ-सफाई, पेयजल, नाली, वृक्षारोपण, सिंचाई आदि से सम्बन्धित कार्यों को मूर्तता प्रदान की जा रही है तो वहीं दूसरी तरफ गरीबी और लाचारी का जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को रोजगार मुहैया हो रहा है। जिससे प्राप्त आय उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में महती भूमिका निभा रही है। ग्रामीण जनता के दिन-प्रतिदिन के सम्पर्क मे होने के कारण क्षेत्र पंचायत अपने दायित्वों से विमुख होने की स्थिति में भी नहीं है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिला पंचायत और ग्राम पंचायत के बीच अवस्थित होने के कारण निश्चित रूप से क्षेत्र पंचायत का महत्व एवं भूमिका बढ़ जाती है। एक तरफ यह ग्राम पंचायतों के विकास कार्यक्रमों में उनका पथ प्रदर्शन व नियन्त्रण करती है तो दूसरी तरफ ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों तथा योजनाओं को जिला पंचायत की तरफ अग्रेसित भी करती है। मध्यम स्तरीय संस्था होने के कारण यह ग्राम पंचायत तथा जिला पंचायत के बीच कड़ी के रूप में कार्य करते हुए ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने में महती भूमिका निभाती है। क्षेत्र पंचायत के बिना वर्तमान ग्रामीण विकास का कल्पना भी अधूरी होगी। क्षेत्र पंचायत के माध्यम से क्षेत्रीय जनता अपनी समस्याओं और उलझनों से निपटने के लिए स्वयं जागरूक एवं चैतन्य रहती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. बौद्धकालीन गणतन्त्रात्मक राज्यों में प्रशासन की वास्तविक शक्ति किसमें निहित होती थी?
2. स्वतन्त्रता पूर्व सर्वप्रथम किस अधिनियम द्वारा पंचायतों को प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया?
3. अशोक मेहता समिति का गठन कब किया गया था?
4. पंचायत व्यवस्था के सम्बन्ध में उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या- 8, किस वर्ष पारित किया गया?
5. क्षेत्र पंचायत का पीठासीन कौन होता है?
6. पर्वतीय क्षेत्र में 25 हजार की जनसंख्या पर क्षेत्र पंचायत के लिए कितने सदस्यों के चुने जाने की व्यवस्था है?
7. मैदानी क्षेत्र में 50 हजार से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र पंचायत में निर्वाचित सदस्यों की संख्या अधिकतम कितनी होगी?
8. क्षेत्र पंचायत का सचिव कौन होता है?
9. पंचायत व्यवस्था के मध्य स्तरीय संरचना कोक्या कहा जाता है?

6.8 सारांश

भारत में प्राचीनकाल से पंचायतों का गठन कई स्तरों पर होता रहा है, जिसमें उच्च और निम्न स्तर के संस्थाओं के बीच कड़ी के रूप मध्यवर्ती संगठनों का अस्तित्व भी तभी से किसी न किसी रूप में देखने को मिलाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचायतों को विधिक स्थिति प्रदान रकने के उद्देश्य से 1947 में संयुक्त प्रान्त पंचायत विधि अधिनियम बनाया गया। 1957 में बलवन्त राय मेहता समिति के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को स्थापित करने की संस्तुति की गयी। केन्द्रीय सरकार तथा राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति मिलने के बाद विभिन्न राज्यों ने इसके आधार पर पंचायतों का पुनर्गठन किया। इसी क्रम में 1961 में उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम विधान मण्डल के द्वारा पारित किया गया। इसका उद्देश्य ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत में एकरूपता लाता था। क्षेत्र पंचायत में सुधार के लिए समय समय पर प्रयास किये जाते रहे। लेकिन इस दिशा में 73वां संविधान संसोधन मील का पत्थर साबित हो रहा है। इस अधिनियम के द्वाराक्षेत्र पंचायत को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है। अब क्षेत्र पंचायतों को अपने कृत्यों के सम्पादन में काफीस्वायत्तता मिल

गयी है। महिलाओं के लिए पदों के आरक्षण के कारण इस आधी आबादी की भी प्रजातन्त्र के आधारभूत स्तर पर सहभागिता सुनिश्चित हो गयी है। इस वर्ग के द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में निश्चित रूप से रूचि ली जाने लगी है। यद्यपि अभी उनकी भूमिका खुलकर देखने को नहीं मिल रही है। उत्तराखण्ड के उत्तर प्रदेश से पृथक होने पर कुछ मामूली परिवर्तन करते हुए उत्तर प्रदेश पंचायत विधि अधिनियमों को स्वीकार कर लिया गया है। उत्तराखण्ड में महिलाओं को ज्यादा प्रतिनिधित्व देने का भी प्रयास किया गया है जो निश्चित रूप से सराहनीय कदम है। क्षेत्र पंचायत, ग्राम पंचायत और जिला पंचायत की कड़ी के रूप में तो कार्य करता ही है, इसके साथ-साथ यह स्वयं भी ग्रामीण विकास के एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में इनके कार्यों में भरपूर सहयोग दे रही है।

6.9 शब्दावली

सभ्यता- मानव के सभ्य होने की समूची प्रक्रिया, रिपोर्ट- सूचनाओं का संग्रह, संविधान संसोधन- संवैधानिक व्यवस्था में समयानुकुल परिवर्तन, अभिलेख- प्राचीन लिखित धरोहर, संस्था- किसी खास उद्देश्य के लिए गठित की गयी इकाई, संघ- कुछ खास व्यक्तियों का समूह जो खास उद्देश्य के लिए कार्य करता हो, साहित्य- एक ऐसी रचना जो लोगों के हित के लिए कार्य करें, अधिकारी- विशेष क्षेत्र में अधिकार प्राप्त व्यक्ति, बहुमत- किसी व्यवस्था के आधे से अधिक लोग, स्वायत्तशासी- जो स्वयं द्वारा शासित हो, स्वतन्त्रता- अपने द्वारा विकसित तन्त्र का शासन, अनुमेलन- किसी पूर्व निर्धारित व्यवस्था में दूसरी व्यवस्था का समायोजन, योजना- किसी कार्य को पूर्ण करने के लिए तैयार की गयी युक्ति।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सभा में, **2.** 1919 ई0 में, **3.** 1977 ई0 में, **4.** 2000 ई0 में, **5.** क्षेत्र पंचायत प्रमुख, **6.** 20 सदस्य, **7.** 40, **8.** खण्ड विकास अधिकारी, **9.** क्षेत्र पंचायत

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
4. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली।
5. के0के0 राय, उ0प्र0 एवं उत्तरांचल के लिए, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम 1961, एलिया लॉ एजेंसी, इलाहाबाद।
6. डॉ0 निकुंज, पंचायती राज व्यवस्था एक दृष्टि एवं दृष्टिकोण, निकुंज प्रकाशन, बड़वानी, 1995 (सम्पादन)

6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
4. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली।

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. क्षेत्र पंचायतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का संक्षेप में उल्लेख करें।
2. क्षेत्र पंचायत के अधिकार एवं शक्तियों पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई- 7 जिला पंचायत

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
7.2.1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिला पंचायत(परिषद)
7.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जिला पंचायत
7.3 जिला पंचायत की संरचना
7.4 जिला पंचायत, राज्य सरकार और कर्मचारीगण
7.5 जिला पंचायत की वित्तीय व्यवस्था
7.6 जिला पंचायत के कार्य(अधिकार) और दायित्व
7.6.1 जिला पंचायत के कार्य(अधिकार)
7.6.2 जिला पंचायत के दायित्व
7.7 ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

भारत में पंचायतों का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से रहा है। ग्राम स्तरीय संस्थाएं सबसे निचले स्तर पर थीं इनको नियन्त्रित व निर्देशित करने के लिए किसी उच्च संस्था कि आवश्यकता प्रारम्भ से ही महसूस की जा रही थी। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानव जीवन की जटिलताएं भी उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अतः पंचायत के स्वरूप में भी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गयी। जिसे देखते हुए मध्य स्तर और उच्च स्तर के संस्थाओं की स्थापना की गयी।

बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व एवं उनके समय में महाजनपदों के अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे, जिनका वर्णन बौद्ध साहित्य में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों में बौद्ध संघों की प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है। उस समय छोटे-छोटे गणराज्य थे, जिसका अध्यक्ष चुनाव के द्वारा निश्चित समय के लिए चुना जाता था।

मौर्यकाल में स्थानीय स्वशासन काफी विकसित था। शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों के उपविभाग किये गये थे, जो अर्थशास्त्र के अनुसार इस प्रकार थे- जनपद, द्रोणमुख, स्वार्वतिक, संग्राम। जनपद का अधिकारी मुखिया 'स्थानिक' कहलाता था। शासन को सुविधाजनक व उपयोगी बनाने के लिए प्रारम्भ से ही भारत में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण देखने को मिलता है। जिसमें ग्राम, दस ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम, तथा हजार गांव का संगठन प्रमुख था। इस प्रकार उच्च स्तर, मध्य स्तर और निम्न स्तर पर प्रशासन का लोकतान्त्रिक संगठन प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है।

यह इकाई जिला पंचायत से सम्बन्धित है जो ग्रामीण पंचायत व्यवस्था की सबसे ऊपरी संस्था है। इसमें जिला पंचायत के प्राचीन स्वरूप जिला समिति या जिला बोर्ड के साथ-साथ वर्तमान में इनकी संरचना (संगठन) अधिकार व कार्य, वित्तीय प्रबन्ध तथा राज्य सरकार व उसके अधिकारियों के साथ सम्बन्ध का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जिला पंचायत की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- पंचायत व्यवस्था में जिला पंचायत की स्थिति को समझ सकेंगे।
- जिला पंचायत के उद्देश्य व सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- वर्तमान में जिला पंचायत की व्यवहारिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.2 जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जिला पंचायत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन सुविधा की दृष्टि ने निम्नांकित शीर्षकों के आधार पर कर सकते हैं-

7.2.1 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिला पंचायत

यद्यपि अपने वर्तमान स्वरूप में जिला पंचायत स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की संस्था है। लेकिन उसकी स्थिति या उसके जैसे संगठन का अस्तित्व भी भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। वैदिक काल में ग्राम पंचायतों को नियन्त्रित व निर्देशित करने के लिए उसके ऊपर की संस्थाओं का अस्तित्व देखने को मिलता है। गांवों के ऊपर अनेक गांवों का समूह या संगठन 'विष' कहलाता था जिसका अधिकारी 'विषपति' कहा जाता था। अनेक विष मिलकर 'जन' की रचना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को 'गोप' कहते थे।

मनु स्मृति के अनुसार गांव के अधिकारी को 'ग्रामिक' कहते थे तथा गांवों का सबसे बड़ा अधिकारी सहस्रपति होता था, जिसके अधीन लगभग एक हजार गांव होते थे। उस समय स्थानीय कार्यकलाप यथा प्रशासन व न्याय सुव्यवस्थित समितियों या पंचायतों के द्वारा राज्य के अद्देश से प्रशासित होता था। इस समय के शिलालेख बताते हैं कि स्थानीय समस्याओं को निपटाने के लिए बाग, तालाब तथा स्वर्ण निरीक्षण समितियों का गठन किया जाता था।

1857 ई0 में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भ के उपरान्त भारत का शासन प्रबन्ध ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर सीधे ब्रिटिश महारानी के हाथों में आ गया। अब भारतीय प्रशासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन होने के कारण स्वायत्त शासन संस्थाओं के विकास का मार्ग भी खुल गया। इसके अतिरिक्त आर्थिक कारणों एवं अन्य भौतिक आवश्यकताओं से विवश होकर अंग्रेजों को भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहन देना पड़ा। 1861 ई0 में बंगाल में हैजे का प्रकोप हुआ, जिसका उपचार जनता के सहयोग के बिना असम्भव था। इसलिए 1861 ई0 में इण्डिया कौंसिल एक्ट पारित करके ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रशासन में स्वायत्त शासन को प्रोत्साहित किया। आगे चलकर 'टाऊन इम्प्रुवमेंट एक्ट' तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट' भी पारित किये गये।

1870 ई0 में लार्ड मेयो के द्वारा शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से भारतीय जनता को प्रशासन से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव पारित किया गया। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने का प्रथम प्रयास था। इसका उद्देश्य प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाना तथा वित्तीय साधन जुटाना था। इस प्रस्ताव को ध्यान में

रखकर केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा, चिकित्सा सेवाओं, सड़कों के रख-रखाव और निर्माण आदि का काम प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित करने तथा इस हेतु उन्हें अनुदान देने का निर्णय किया। इस प्रकार 1871 ई0 के अधिनियम के अनुसार बम्बई, बंगाल, पंजाब व उत्तर पश्चिमी प्रान्तों में मयो के प्रस्ताव के बाद स्थानीय स्वायत्त प्रशासनों की स्थापना हुई। इन अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार सेस को कानूनी दर्जा दिया गया था तथा व्यय को बढ़ाने के लिए उन्हें बढ़ाया भी जा सकता था। इसमें जिला समिति के गठन की व्यवस्था तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी सभी सदस्यों के मनोनयन आदि का उल्लेख था। जिला समिति का अध्यक्ष सरकारी व्यक्ति को बनाने का प्रावधान था। लेकिन यह लोकप्रिय पंचायतों की स्थापना नहीं कर सका, क्योंकि इसमें जन प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व न के बराबर था।

स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने में 1882 ई0 का का लार्ड रिपन का प्रस्ताव मील का पत्थर सिद्ध हुआ। लार्ड रिपन चाहते थे कि सभी स्थानीय संस्थाओं में गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रहे और इनको अपने-अपने क्षेत्र में काम करने के लिए कुछ स्वायत्तता भी प्राप्त हो। इस उद्देश्य से प्रत्येक जिले में दो स्वशासित संथाओं की व्यवस्था की गयी। जिला स्तर पर जिला बोर्ड तथा तहसील स्तर पर तहसील बोर्ड। लार्ड रिपन के इस प्रस्ताव को तत्कालीन नौकरशाही ने सुरूचिपूर्ण नहीं पाया, जिसके कारण यह पूर्ण रूप से क्रियान्वित नहीं हो सका। नतीजा यह हुआ कि सरकारी अधिकारी ही बोर्डो के अध्यक्ष बनाये गये।

1907 ई0 में चार्ल्स हॉबहाऊस की अध्यक्षता में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग का गठन किया गया। आयोग ने आम राय जानने के बाद पाया कि लोग विकेन्द्रीकरण चाहते हैं और वे सरकारी अधिकारियों के वर्चस्व से खिन्न हैं। आयोग ने स्वायत्त शासन के संस्थाओं का प्रारम्भ जिला स्तर के स्थान पर ग्राम स्तर से करने पर बल दिया। इस बात को महसूस करते हुए कि वित्तीय साधनों के अभाव में कार्य सौंपने का कोई अर्थ नहीं है। आयोग ने पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुधारने और उनके लिए आय के साधन जुटाने हेतु निम्न सुझाव दिये-

1. भूमिकर जो जिला बोर्डों द्वारा लगाया जाता है का एक हिस्सा ग्राम पंचायतों को दिया जाय।
2. जिला बोर्डों व जिलाधीश द्वारा स्थानीय सुधार के लिए विशेष अनुदान दिया जाय।
3. उन मुकद्मों की फीस मामूली रखी जाय जिनकी सुनवाई पंचायतें करें।

लेकिन आयोग द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों का नतीजा कुछ नहीं निकला। इसलिए 13 मार्च 1912 को गोखले ने कहा कि जिला प्रशासन वहीं का वही है, जहाँ वह सौ साल पहले था तथा स्वायत्त शासन की संस्थाएं भी वहीं की वहीं हैं, जहाँ वे 30 साल पहले लार्ड रिपन के समय में थी।

यह ब्रिटिश राज के विरूद्ध जन आन्दोलन का दौर था। देश में पैदा हुई राजनीतिक जागृति के कारण 1917 में ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न स्तरों पर भारतीयों को भागीदारी देने तथा पंचायतों को कारगर व सशक्त बनाने का एलान किया। इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ब्रिटिश सरकार ने 1919 के भारत सरकार अधिनियम में पंचायतों के गठन का दायित्व प्रान्तीय सरकारों को सौंपा। माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड आयोग की संस्तृतियों के उपरान्त ग्राम्य क्षेत्र के स्वायत्त शासन में क्षेत्रीय जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाने के दृष्टि से उत्तर प्रदेश में यूनाइटेड प्राविन्शियल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट 1922 लागू किया गया। इस अधिनियम के द्वारा निर्धारित संख्या में जनपद के ग्रामीण क्षेत्र से चुने हुए प्रतिनिधियों और उनके द्वारा चुने हुए प्रेसीडेंट को एक्ट के प्रावधानों के अनुसार विभिन्न क्रियाकलापों और नीति निर्धारित तथा क्रियान्वित करने का दायित्व सौंपा गया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट के दायित्व तथा उन कृत्यों का विवेचन था जो जिला बोर्ड के विवेक पर आधारित थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कार्य क्षेत्र में जूनियर बेसिक व सीनियर बेसिक विद्यालयों का पूरा प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के चिकित्सालयों एंव औषाधलयों का प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के पशु चिकित्सालयों का प्रबन्ध, ग्राम्य क्षेत्र के अधिकांश सड़कों का रख-रखाव आदि प्रमुख था। ग्रामीण क्षेत्र में बिमारियों की रोकथाम हेतु टीकाकरण डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा ही कराया जाता था। इस प्रकार ग्राम्य क्षेत्र के सार्वजनिक जीवन में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपनी महत्वपूर्ण सेवा अर्पित करता था।

भारत शासन अधिनियम 1935 ई0 द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता स्थापित की गई। राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास से भारत में स्थानीय शासन का स्वरूप बदला। अब स्थानीय शासन एक प्रयोग की अपेक्षा सम्पूर्ण स्वशासन का एक अभिन्न अंग बन गया।

7.2.2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिला पंचायत

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नवनिर्मित संविधान में पंचायतोंको स्थान देने को लेकर डॉ0 भीम राव अम्बेडकर ने प्रबल विरोध जताया, लेकिन अन्य सदस्यों के परामर्श पर अन्ततः इसे संविधान में स्थान दिया गया। संविधान निर्मात्री सभा के अनुभव के अनुसार देश के 05 लाख 75 हजार गांवों का शासन दिल्ली (केन्द्र) से कर पाना सम्भव नहीं था। इसलिए लोकतान्त्रिक शासन को सफल व सुदृढ़ बनाने के लिए प्रशासनिक कार्यों के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। नवनिर्मित संविधान के प्रवर्तित होने के पश्चात स्थानीय स्वशासन को राज्य-सूची का विषय घोषित किया गया।

संविधान के अनुच्छेद- 40 में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के तहत पंचायतों को स्थान दिये जाने के बाद भी इनका विकास सन्तोषजनक नहीं था। सरकार द्वारा 1952 में शुरु किया गया 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' तथा 1953 में 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' के परिणाम भी सन्तोषजनक नहीं थे। इसलिए 1956 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन भारत सरकार ने किया। समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि तत्कालीन स्थानीय संस्थाएं कार्य कर सकती है अथवा नहीं, यदि नहीं तो कौन सी नयी संस्थाए किस क्षेत्र, किन शक्तियों और साधनों के साथ निर्मित की जायें। तत्कालीन जिला बोर्डों के अध्ययन करते हुए समिति ने उनकी अयोग्यताओं पर प्रकाश डाला। जिला बोर्ड उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर रहे थे जिनके लिए उनको स्थापित किया गया था। उन्हें लोगों को स्वशासन की शिक्षा देनी चाहिए थी लेकिन यह उनकी परम्परा नहीं रही, क्योंकि उनके पास ऐैसे साधन नहीं थे। उन्हें कार्य तो सौंप दिया गया था लेकिन उन्हें इतना साधन सम्पन्न नहीं किया गया था, जिससे वे अपनी समस्याओं पर पूरा ध्यान दे सके। अध्यक्ष व सदस्य इस स्थिति में नहीं थे कि वे तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए समय दे सकें। वे अधिकांश कार्यों को अधिकारियों पर छोड़ने के लिए बाध्य थे। राज्यों की प्रवृति भी जिला बोर्डों से कार्य वापस लेने की रही, क्योंकि वहाँ दोहरे शासन की स्थिति पायी जाती थी।

समिति ने प्राथमिक शिक्षा को जिला बोर्ड को देने के विचार को भी पसन्द नहीं किया, क्योंकि वे स्वयं सरकार पर निर्भर थे। इसलिए वे उनकी समस्याओं पर बहुत कम ध्यान देते थे। पंचायतों को भी जिला बोर्डों से जोड़ने का विचार श्रेयस्कर नहीं था। समिति के अनुसार पंचायतों को जिला बोर्ड से सीधे जोड़ना न तो सरल होगा, न सुविधाजनक और न ही व्यवहारिक। बहुत से राज्यों में एक जिले में कई सौ ग्राम पंचायतें हैं और उनमें से कई का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उनकी बड़ी संख्या भी असुविधानक है। ऐसी स्थिति में जिला बोर्ड और पंचायतों के बीच सामंजस्य नहीं हो सकता है।

जिला परिषद में जिले के सभी पंचायत समितियों के अध्यक्ष, सांसद, विधायक, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य, कृषि, पशु चिकित्सा, अभियन्त्रण, शिक्षा, पिछड़े वर्ग का कल्याण, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी सदस्य के रूप में सम्मिलित होने चाहिए। समिति का मानना था कि जिला परिषद के कार्य प्रशासनिक नहीं होने चाहिए, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं यथा ग्राम पंचायत और क्षेत्र पंचायत के कार्य करने की स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिला परिषद पंचायत समितियों के बजट की जांच करेगी और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी तथा पंचायत समितियों के गतिविधियों की सामान्य निगरानी करेगी।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों और सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात स्वीकार कर लिया गया और राज्य सरकारों को उनकी अनुशंसाओं के आधार पर पंचायती राज की स्थापना करने का निर्देश दे दिया गया। जिसके आलोक में उत्तर प्रदेशविधान सभा के द्वारा उत्तर प्रदेशपंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961, पारित किया गया। यहीं से जिला परिषद ने एक

संवैधानिक निकाय के रूप में अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया। इस अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा, क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद इकाईयों को एक सूत्र में बांधा गया। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात पंचायती राज संस्थाओं का महत्वपूर्ण ढ़ाँचा अस्तित्व में लाया गया, किन्तु व्यवहार में इसकी प्रभावशीलता सीमित रही और पंचायती राज की उपयोगिता नगण्य प्रतीत होने लगी।

अतः पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने और उन्हें सुदृढ़ बनाने हेतु केन्द्र सरकार ने दिसम्बर 1977 में अशोक मेहता के नेतृत्व एक 13 सदस्यीय समिति का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1978 में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की। जिसमें पंचायत के द्विस्तरीय, जिला स्तर पर जिला परिषद तथा निम्न स्तर पर मण्डल पंचायत स्थापित करने का सुझाव दिया गया था। समिति का मानना था कि राज्य स्तर के नीचे विकेन्द्रीकरण का आधार जनपद को बनाया जाय, क्योंकि इस स्तर पर ही नियोजन, विकास कार्यक्रमों में समन्वय, मार्ग दर्शन एवं तकनीकी क्षमता सम्पन्न प्रबन्धन उपलब्ध हैं। पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाय। जिला परिषद के अध्यक्ष का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होना चाहिए तथा इसका कार्यकाल 04 वर्ष होना चाहिए। समिति का सुझाव था कि जिला परिषद में छः प्रकार के सदस्य होने चाहिए। जिला पंचायत निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य, पंचायत समितियों के प्रमुख, नगरपालिकाओं के निर्दिष्ट व्यक्ति, दो महिलाएं, तथा दो अनुमेलित सदस्य, जिसमें एक ग्रामीण विकास में रूचि रखने वाला तथा दूसरा कालेज या विश्वविद्यालय का अध्यापक हो। जिला परिषद अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन करेगी। जिला परिषद के सभी सदस्यों तथा जनपद के सभी सांसदों व विधायकों को मिलाकर योजना निर्माण एवं सामाजिक समीक्षा के लिए जिला स्तर पर नियोजन समिति का गठन किया जायेगा।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न राज्यों के राय को जानने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने राज्यों के मुख्यमन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। जिसमें अधिकांश राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों ने अशोक मेहता समिति के सिफारिशों पर असहमति प्रकट की। इसलिए केन्द्रीय स्तर पर समिति के सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी लेकिन तीन राज्यों- पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक ने अपने-अपने राज्यों में पंचायती राज को सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये। जिसमें जिला परिषद को अति म्हत्वपूर्ण स्तर पर रखा गया।

1985 ई0 में जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए प्रशासनिक प्रबन्ध पर एक समिति बनायी गयी। समिति द्वारा स्थानीय स्तर पर राज्य की शक्तियों को हस्तान्तरित करने की सिफारिश की गयी। इसने जिला परिषद को प्रमुख निकाय बनाने की अनुशंसा करते हुए कहा कि जिला परिषद को जिले स्तर पर नीति निर्धारण और कार्यान्वयन का पूर्ण दायित्व दिया जाना चाहिए। जिससे जिले स्तर के सभी प्रकार के विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आसानी से हो सके।

1988 ई0 में कार्मिक लोक सेवा संघ एवं पेंशन मन्त्रालय के तत्वाधान में पी0के0 थुंगन की अध्यक्षता में जिला नियोजन के प्रशासकीय-तन्त्र के बारे में सुझाव देने के लिए एक उप-संसदीय समिति गठित की गयी। इस समिति की प्रमुख संस्तुतिया थीं-

- पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा मिले।
- योजना एवं विकास का दायित्व जिला परिषद को दिया जाय।
- सांसद व विधायक जिला परिषद से सम्बन्धित हों।
- अनुसूचित जाति, जनजाति एवं महिलाओं को पंचायत राज में यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

- पंचायत संस्थाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाय।
- पंचायत संस्थाओं का कार्यकाल पांच वर्ष का हो।

पी0के0 थुंगन उपसमिति के सिफारिशों के पश्चात 27 जनवरी से 30 जनवरी 1989 तक दिल्ली में चार दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें उत्तरी एवं पश्चिमी राज्यों के पंचायत राज प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि जिला विकास जैसी संस्थाओं को जिला परिषद के अधीन कार्य करना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए वेतन भत्ता आदि की व्यवस्था की जाय। इन संस्थाओं को अधिक शक्तियां दे दी जाय और जो शक्ति जिला, ब्लाक एवं गांव स्तर की संस्थाओं को दी जाय, उन्हें किसी तरह से समाप्त न की जाय और न ही वापस ली जाय। 1989 में पंचायत संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के उद्देश्य से प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के काल में 64वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। जिसमें 20 लाख से अधिक आबादी वाले राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में त्रिस्तरीय (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत) व्यवस्था का प्रावधान था। सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था थी। इसका चुनाव केन्द्रीय निर्वाचन आयोग के देखरेख कराने की व्यवस्था थी। यह प्रस्ताव लोकसभा में तो पारित हो गया, लेकिन राज्य सभा ने इसे अस्वीकृत कर दिया। अतः यह प्रयास विफल हो गया।

1990 में गठित हरलाल सिंह खर्रा समिति ने ग्रामीण सुविधाओं और आवश्यकताओं से जुड़े सभी प्रशासनिक मामलों विशेषकर शिक्षा, आयुर्वेद, स्वास्थ्य, हैण्डपम्प आदि में पंचायती राज संस्थाओं का नियन्त्रण आवश्यक बताया। जिला परिषदों एवं जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के विलय का प्रस्ताव भी समिति ने किया। आर्थिक सुदृढ़ता स्थापित करने के लिए समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को दी जाने वाली प्रति व्यक्ति राजकीय सहायता में बृद्धि करने की भी संस्तुति की।

सन् 1991 में प्रधानमन्त्री पी0बी0 नरसिम्हा राव ने 64वें संविधान संसोधन की खामियों को दूर करते हुए पंचायती राज संस्थाओं को उपयोगी और गतिशील बनाने हेतु एक नया संसोधन विधेयक लाने का फैसला किया। 24 अप्रैल 1993 को यह संसोधन प्रस्ताव राष्ट्रपति की संस्तुति प्राप्त कर लिया। इसके द्वारा भी पंचायतों के त्रिस्तरीय ढ़ाँचे को स्वीकृति प्रदान की गयी, लेकिन उन राज्यों के लिए जिनकी 20 लाख से कम थी यह ढ़ाँचा बाध्यकारी नहीं था। इसके द्वारा पंचायत संस्थाओं के प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान किया गया। प्रत्येक स्तर पर एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए भी आरक्षित किये गये। इनका चुनाव प्रत्येक पांच वर्ष के उपरान्त कराने का प्रावधान किया गया। यदि किन्ही परिस्थितियों में इनको भंग किया जाता है तो अधिकतम छः माह के भीतर अनिवार्य रूप से चुनाव कराना निश्चित किया गया।

संविधान के 73वें संसोधन के अनुक्रम में उत्तर प्रदेश पंचायत विधि (संसोधन) विधेयक 1994 से प्रदेश में प्रवृत हुआ। जिसमें संयुक्त प्रान्त पंचायत राज अधिनियम 1947 तथा उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 में संसोधन कर राज्य की तीनों स्तर की पंचायतों में एकरूपता लाने, पंचायतों (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत) का संगठन, संरचना, अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं और पिछड़े-वर्ग के लिए आरक्षण, पंचायतों का निश्चित कार्यकाल, निर्वाचन आयोग तथा वित्त आयोग की स्थापना, पंचायतों के कृत्य, शक्तियां और उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में व्यापक व्यवस्था की गयी। उत्तर प्रदेश से अलग उत्तराखण्ड राज्य के निर्माण के पश्चात उत्तराखण्ड संशोधन अधिनियम संख्या- 08, में सन् 2002 द्वारा व्यवस्था की गयी कि उत्तर प्रदेशपंचायती राज अधिनियम 1947 तथा क्षेत्र पंचायत व जिला परिषद अधिनियम 1961 में जहाँ-जहाँ उत्तर प्रदेश आया है, वहाँ उत्तराखण्ड पढा जायेगा।

7.3 जिला पंचायत की संरचना

उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 में उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या- 9, सन् 1994 के द्वारा किये गये संसोधन के उपरान्त जिला पंचायत की संरचना जिले के समस्तक्षेत्र पंचायत प्रमुख, निर्वाचित सदस्य जो जिला पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं, जो लगभग 50 हजार की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। राज्य सरकार नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, टिहरी, पौड़ी, देहरादून, चमोली या उत्तरकाशी के पर्वतीय जिलों में उसके द्वारा निर्मित विनिर्दिष्ट ग्राम केन्द्र से एक किमी के अर्द्धव्यास (चौदह किमी के व्यास) के भीतर के क्षेत्र या उसके बराबर के किसी क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र घोषित कर सकती है। भले ही इसकी जनसंख्या 50 हजार से कम हो। लोक सभा और राज्य विधान सभा के सदस्य जिनका निर्वाचन क्षेत्र जिला पंचायत में समाविष्ट हो तथा राज्य सभा और विधान परिषद के ऐसे सदस्य जो जिला पंचायत क्षेत्र के भीतर निर्वांचक के रूप में रजिस्ट्रीकृत हो से मिलकर होती है। इन सदस्यों को जिला पंचायत के कार्यवाहियों में भाग लेने और बैठकों में मत देने का अधिकार तो होता है, लेकिन जिला पंचायत अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के निर्वाचन व उनके विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव में केवल निर्वाचित सदस्यों को ही मत देने का अधिकार होता है।

जिला पंचायत में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था उनके जनसंख्या के अनुपात में की गयी है, लेकिन प्रतिबन्ध यह है कि पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित सीटें 27 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। कुल स्थानों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होता हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गोंके लिए आरक्षित स्थानों में भी एक तिहाई स्थान उन वर्गों की स्त्रियों के लिए आरक्षित होता है।

जिला पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से एक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जिला पंचायत अध्यक्षों के पद भी अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित होते हैं। कुल स्थानों जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थान भी शामिल हैं, में से एक तिहाई स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित होते हैं।

जिला पंचायत के द्वारा अपने दायित्वों का उचित रूप में निर्वहन करने के लिए कार्य समिति, वित्त समिति, शिक्षा एवं जनस्वास्थ्य समिति, कृषि, उद्योग एवं निर्माण समिति तथा समता समिति आदि का गठन किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिला पंचायत के द्वारा समय-समय पर आवश्यकतानुसार अधिनियम के अधीन रहते हुए अन्य समितियां भी नियुक्त कर सकती है।

7.4 जिला पंचायत राज्य सरकार और कर्मचारीगण

73वें संविधान संसोधन के व्यवस्थाओ के अनुरूप जिला पंचायत को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी मानते हुए अधिकारों का प्रत्यायोजन किया गया है। इसके मूल में यह कल्पना रही है कि इससे प्रशासकीय क्षमता बढ़ाने, नागरिकों में स्थानीय समस्याओं के प्रति रूचि पैदा करने तथा जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने में आसानी होगी। इसलिए स्थानीय स्तर (जिले स्तर) की समस्याओं का समाधान उन्हीं के द्वारा किया जाना चाहिए, क्योंकि स्थानीय लोगों को क्षेत्रीय समस्याओं की अधिक जानकारी और अनुभव होता है। लेकिन राज्य सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि जिला पंचायत या उसके किसी समिति के कार्य सम्पादन में कोई चूक पाती है तो वह उसे पूर्ण करने के लिए एक समय-सीमा निर्धारित कर सकती है। यदि उस समय सीमा के भीतर जिला पंचायत उसे पूर्ण नहीं करती है तो राज्य सरकार जिला मजिस्ट्रेट या किसी अन्य प्राधिकारी को उस कार्य के सम्पादन का दायित्व सौंप सकती है। उस कार्य पर होने वाला खर्च जिला पंचायत के द्वारा ही चुकाया जाता है।

राज्य सरकार द्वारा जिला पंचायत के किसी सदस्य को भी उसके पद से हटाया जा सकता है, यदि उसने जिला पंचायत सदस्य के रूप में कहीं चर्चा में भाग लेकर या मत देकर अपना कोई निजी हित अथवा किसी को व्यवसायिक लाभ पहुँचाया है। इसके अतिरिक्त शारिरिक या मानसिक दृष्टि से अक्षम साबित होने या अपने पांच वर्ष के कार्यकाल या पूर्ववर्ती अवधि में उसके किसी ऐसे कृत्य के लिए जिससे जिला पंचायत को क्षति पहुँची हो तो उसके पद से हटा सकती है। लेकिन ऐसा करने से पूर्व वह सदस्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य देती है।

किसी समय राज्य सरकार को यह प्रतीत या विश्वास हो जाय कि जिला पंचायत ने राज्य सरकार के आदेशों या अधिनियम द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन करने में शिथिलता बरती है या चूक की है या अपने अधिकारों का अतिक्रमण या दुरूपयोग किया है तो वह उससे स्पष्टीकरण मांग सकती है। विचारोपरान्त यदि स्पष्ट हो जाय कि जिला पंचायत को विघटित करना आवश्यक है तो राज्य सरकार जिला पंचायत को विघटित कर सकती है। इसके उपरान्त राज्य सरकार किसी एक या एक से अधिक व्यक्तियों को जिला पंचायत के अधिकारों तथा कर्तव्यों के सम्पादन हेतु नियुक्त कर सकती है। परन्तु विघटन के दिंनाक से छः माह के भीतर निर्धारित रीति से निर्वाचन कराना आवश्यक होता है।

जिला पंचायत तथा जिलाधिकारी के मध्य कैसा सम्बन्ध हो, यह पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत एक जटिल प्रश्न है एक जले की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था है तो दूसरा जिले का सर्वोच्च सरकारी प्रतिनिधि या प्रशासनिक अधिकारी। इसलिए प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के समय यह प्रश्न उठा कि जिलाधीश की शक्तियों और प्रभावों को जिला पंचायत में क्या रूप दिया जाय। पंचायत व्यवस्था पर विचार करने के लिए सर्वप्रथम गठित बलवन्त राय मेहता समिति की राय थी कि जिलाधीश जिले के विकास विभागों के अधिकारियों का कप्तान होगा और योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वन के आवश्यक समन्वय का उत्तरदायी होगा। समिति ने जिलाधीश को जिला पंचायत का चेयरमैन बनाये जाने की बात भी कही थी। किन्तु उसकी इस संस्तुति काअधिकांश राज्यों ने अपने-अपने ढंग से प्रयोग किया। उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में जिलाधिकारी को जिला पंचायत तथा उसकी समितियों के बैठकों में सम्मिलित होने का अधिकार है, वह इस बैठकों के विचार-विमर्श में भाग ले सकता है, किन्तु उसे मतदान का अधिकार नहीं है।

जिलाधिकारी राज्य सरकार की और से जिला पंचायत को निर्देश देता है। जिला पंचायत या उसकी किसी समिति द्वारा प्रयुक्त या अध्यासित किसी चल सम्पत्ति अथवा उसके निर्देशाधीन किये जाने वाले किसी कार्य का निरीक्षण कर सकता है या करा सकता है। समय-समय पर समुचित नोटिस के पश्चात जिला पंचायत के नियोजन तथा विवरण विषयक बजट अनुदान से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा करने के लिए बैठक बुला सकता है, जिसमें वह स्वयं अध्यक्ष तथा अधिकारी होगा। वह राज्य सरकार को कार्यों के विवरण की त्रैमासिक प्रगति प्रतिवेदन भेजता है।

जिला पंचायत जिले के मुख्य प्रतिनिधि संस्था होने के कारण जिले के अन्य अधिकारियों से भी जुड़ी होती है। जिला पंचायत के सदस्यों तथा अध्यक्ष का इन अधिकारियों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध हो यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु हैं कि जिला पंचायत को उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए अपर जिला मजिस्ट्रेट (नियोजन) या जिला नियोजन अधिकारी, जिला स्वास्थ्य अधिकारी, विद्यालय उपनिरीक्षक, जिला पंचायत राज अधिकारी, सहायक अभियन्ता (लघु सिचाई) जिला पशुधन अधिकारी, जिला कृषि अधिकारी, जिला सहायक निबन्धक क्रमश: जिला पंचायत के अधीन मुख्य अधिकारी, स्वास्थ्य अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, पंचायत राज अधिकारी, सिंचाई अधिकारी, पशुधन अधिकारी, कृषि अधिकारी और सहकारिता अधिकारी के पद धारण करेंगे। अपर जिला मजिस्ट्रेट (नियोजन) अथवा जिला नियोजन अधिकारी जिला पंचायत का मुख्य अधिकारी होता है। जिला पंचायत के कार्यों में वृद्धि तथा मुख्य अधिकारों के दायित्वों के निर्वहन में सहयोग देने तथा जिला पंचायत

कार्यालय के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों को नियन्त्रित करने के लिए एक अतिरिक्त मुख्य अधिकारी का पद सृजित है। जिला पंचायत का मुख्य अधिकारी जिले का विकास अधिकारी भी होता है, जिससे उसका कार्यभार बढ़ जाता है। जिससे वह जिला पंचायत के कार्यों में पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। इसलिए वर्तमान में जिला पंचायत के मुख्य अधिकारी के प्रत्येक अधिकार का प्रयोग अतिरिक्त मुख्य अधिकारी ही करता है।

7.5 जिला पंचायत की वित्तीय व्यवस्था

जिला पंचायत (जिला बोर्ड) की स्थापना यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही कर दी गयी थी, लेकिन प्रारम्भ से ही इनकी वित्तीय व्यवस्था बहुत सुदृढ़ नहीं रही। जिसके कारण सन् 1935 में सरदार बल्लभ भाई पटेल ने स्थानीय निकायों के अधिवेशन में इन संस्थाओं की शोचनीय दशा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि ''ऐसा कहा जाता है कि मताधिकार व्यापक कर दिया गया है और स्थानीय निकायों को विस्तृत अधिकार दे दिये गये हैं। यह सच है और मैं इसे स्वीकार करता हूँ, पर जब तक स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति का पहले बन्दोबस्त नहीं होगा तब तक इन उपायों से क्या लाभ मिलेगा, मताधिकार की व्यापकता तथा कृत्यों के विस्तार से वही स्थिति होगी, जैसी एक मृत व्यक्ति को परिधान पहनाने से होती है।''

प्रत्येक जिला पंचायत के अधिकारों एवं कार्यों का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए जिला पंचायत निधि की स्थापना की गयी है। जिसमें जिला पंचायत या उसकी ओर से प्राप्त की गयी सभी धनराशियां या राज्य की संचित निधि से प्राप्त अनुदान सहित सभी ऋण जमा किये जाते है। जिला पंचायत नकद अथवा वस्तु के रूप में ऐसा अशंदान स्वीकार कर सकती है जो किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा किसी सार्वजनिक उपयोग के लिए दिया जाय। जिला पंचायत के वित्तीय व्यवस्था के दो तरह के स्रोत देखने को मिलते है- प्रथम राज्य सरकार संचित निधि से दिया जाने वाला अनुदान तथा द्वितीय जिला पंचायत द्वारा लगाया जाने वाला कर। जिला पंचयत आय के प्रमुख स्रोत- विभव एवं सम्पत्ति पर कर, सम्पत्ति से आय, घाटों से प्राप्त आय, कांजी हाउस से प्राप्त आय, मेलों तथा प्रदर्शनियों से आय, पशु बाजार से आय, दुकानों के लाईसेंस, ईंट-भट्ठे के लाइसेंस, आटा, तेल, धान, रूई, दाल, आदि मशीनों का लाइसेंस, पशु वधशाला पर लाइसेंस, हड्डी, चमड़ा खुर, सींग के लाइसेंस पर शुल्क आदि है।

7.6 जिला पंचायत के कार्य(अधिकार) और दायित्व

नये अधिनियिम के तहत जिला पंचायत को प्रभावी एवं सशक्त बनाने के दृष्टिकोण से निम्नलिखित अधिकार एवं कार्य सौपे गये हैं-

7.6.1 जिला पंचायत के कार्य(अधिकार)

1. कृषि उत्पादन बढ़ाने के उपायों की अभिवृद्धि, गोदामों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।
2. सरकार द्वारा सौंपे गये भूमि सुधार, भूमि संरक्षण तथा चकबन्दी कार्यक्रमों की योजनाओं का कार्यान्वयन।
3. लघु सिंचाई और अन्तरखण्ड जल परियोजनाओं का निर्माण और अनुरक्षण, जल वितरण का प्रबन्ध, भूमिगत जल का विकास और जलाच्छादन का विकास करना।
4. पशुपालन और पशु चिकित्सा सेवाओं की स्थापना और अनुरक्षण, नस्लों का सुधार, दुध उद्योग, कुक्कुट पालन तथा सूअर पालन की प्रोन्नति करना।
5. सिंचाई कार्यों में मत्स्य पालन का विकास तथा मछुआरा कल्याण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
6. सामाजिक और फार्मवानिकी, ईंधन, वृक्षारोपण और रेशम उत्पादन की प्रोन्नति तथा बंजर भूमि का विकास करना।
7. लघु वन उत्पाद के कार्यक्रमों की प्रोन्नति और उनका क्रियान्वयन करना।
8. लघु उद्योग और खाद्य प्रसंस्करण इकाई की प्रोन्नति करना।

9. ग्रामीण और कुटीर उद्योग में प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना एवं अनुरक्षण तथा जिला स्तर पर पंचायत उद्योगों की स्थापना करना।
10. ग्रामीण आवास कार्यक्रमों की प्रोन्नति और विकास, अनावासीय क्षेत्र में ग्रामीण आवास का कार्यान्वयन, सामुदायिक केन्द्रों और विश्राम गृहों का निर्माण, ग्राम पंचायतों और क्षेत्र पंचायतों द्वारा किये गये ग्रामीण आवास कार्य का अनुश्रवण करना।
11. सार्वजनिक प्रयोग के लिए पीने के पानी का अनुरक्षण तथा जल प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण करना।
12. ईधन और चारा कार्यक्रमों का अनुश्रवण और विकास, ईधन और चाराक्षेत्र के लिए पौधों का अनुरक्षण और विकास तथा ग्राम पंचायतों एवं क्षेत्र पंचायतों द्वारा विनिर्यमित किये गये कार्यक्रमों का अनुश्रवण करना।
13. जिले की ग्रामीण सड़कों, पुलियों, पुलों और जल मार्गो का विकास और अनुरक्षण, नदी के किनारों का अनुरक्षण सड़क पर दिशाओं और चिन्हों को अंकित करना तथा सड़कों और सार्वजनिक स्थानों पर अतिक्रमण हटाने में मदद करना।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण में ग्राम पंचायतों तथा क्षेत्र पंचायतों की सहायता करना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाश के वितरण में मदद करना।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का विकास तथा ग्राम पंचायतों व क्षेत्र पंचायतों के कार्यक्रमों में सहायता करना।
16. गरीबी उनमुलन कार्यक्रमों की योजना, अनुश्रवण और पर्यवेक्षण करना तथा अन्य विभागों के साथ कार्यक्रमों का समन्वय।
17. प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण, अनुरक्षण और पर्यवेक्षण, जिले में सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध कराना तथा जिले में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का सर्वेक्षण और पर्यवेक्षण करना ।
18. तकनीकी और व्यवसायिक प्रषिक्षण केन्द्रों की स्थापना और उनका अनुश्रवण करना।
19. प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों का नियोजन और कार्यान्वयन।
20. खण्ड स्तर और जिले में पुस्तकालयों और वाचनालयों का निर्माण और अनुरक्षण तथा कार्यक्रमों का कार्यान्वयन।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलापों की प्रोन्नति, क्षेत्रीय सांस्कृतिक और खेलकूद क्रियाकलापों की प्रोन्नति और पर्यवेक्षण तथा विशेष अवसरों पर लोक सांस्कृतिक क्रियाकलापों की व्यवस्था करना।
22. ग्रामीण बाजारों, मेलों(जिसके अन्तर्गत पशु मेले भी है) का पर्यवेक्षण एवं अनुरक्षण तथा ग्राम पंचायतों एवं क्षेत्र पंचायतों द्वारा किये गये बाजारों और मेलों से सम्बन्धित कार्यों का पर्यवेक्षण और अनुश्रवण करना।
23. महामारियों की रोकथाम और नियन्त्रण में क्षेत्र पंचायतों की सहायता करना और उपयुक्त रूप से वित्त पोषण करना, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और औषद्यालयों की स्थापना, अनुश्रवण और प्रबन्ध तथा पेयजल सुविधाएं उपलब्ध कराना।
24. परिवार कल्याण कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण और अनुश्रवण करना।
25. प्रसूति एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन तथा विद्यालय स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों की प्रोन्नति करना।

26. समाज कल्याण कार्यक्रमों, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है में भाग लेना, वृद्धावस्था और विधवा पेंशन योजनाओं के समाज कल्याण कार्यक्रमों की प्रोन्नति करना।

27. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और कमजोर वर्गों के कल्याण की प्रोन्नति, ऐसी जातियों का सामाजिक अन्याय और शोषण से संरक्षण, छात्रावासों की स्थापना और प्रबन्ध तथा सामाजिक न्याय के लिए योजना तैयार करना तथा उनका कार्यान्वयन करना।

28. ग्रामीण वस्तुओं के वितरण का नियोजन और अनुश्रवण।

29. विकास योजनाओं का समन्वय और एकीकरण तथा सामुदायिक आस्तियों का परीक्षण और अनुरक्षण करना।

30. आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करना, क्षेत्र पंचायत की योजनाओं का पुनर्विलोकन, समन्वय और एकीकरण, खण्ड और ग्राम स्तर पर योजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना, सफलताओं और लक्ष्यों की नियतिकालिक समीक्षा और जिले के भीतर के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में समस्त विषयों पर सामग्री संग्रह करना और आकड़ों का अनुरक्षण करना।

31. दुर्भिक्ष निवारणार्थ निर्माण, मरम्मत और अनुरक्षण, सहायता कार्यों और सहायता गृहों की स्थापना और उनका अनुरक्षण और दुर्भिक्ष और दुष्प्राप्यता के समय ऐसी सहायता की व्यवस्था करना जो आवश्यक समझी जाय तथा निर्धन गृहों, शरणालयों, अनाथालयों, बाजारों और विश्राम गृहों की स्थापना, प्रबन्ध अनुरक्षण और निरीक्षण करना।

7.6.2 जिला पंचायत के दायित्व

1. पूर्व निर्मित अथवा अनिर्मित क्षेत्रों में नयी सार्वजनिक सड़कों का विन्यास तथा तदर्थ एवं उक्त सड़कों से लगे हुए भवनों और अहातों के निर्माणार्थ भूमि अर्जित करना।
2. अस्वास्थ्यकर क्षेत्रों का सुधार करना।
3. स्कूलों की स्थापना तथा अनुरक्षण से भिन्न उपायों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाना।
4. जनगणना करना और ऐसी सूचना के लिए पारितोषिक देना जिससे जन्म-मरण के आंकड़ों की ठीक-ठीक प्रविष्टि हो सके।
5. ट्राम-पथों, हवाई राज-पथों तथा यातायात के अन्य साधनों का निर्माण, उन्हें आर्थिक सहायता देना या उनके विषय में प्रत्याभूति देना।
6. कोई क्षोभकर, खतरनाक या घृणित व्यापार, व्यवसाय या कार्य करने के लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त करना अथवा प्राप्त करने में सहायता देना।
7. अपने क्षेत्राधिकार के भीतर नदियों और जल संभरण के अन्य स्रोतों का संरक्षण तथा उन्हें क्षति पहुँचाए जाने या दूषित अथवा कलुषित होने से बचाना।
8. पर्यटन की उन्नति करना।
9. जिले के भीतर अथवा बाहर कोई ऐसा कार्य करना, जिस पर होने वाला व्यय राज्य सरकार द्वारा या राज्य सरकार की स्वीकृति से जिला पंचायत द्वारा जिला निधि पर उपयुक्त रीति से भारित व्यय घोषित किया गया है।

7.7 ग्रामीण विकास में जिला पंचायत की भूमिका

73वें संविधान संसोधन के उपरान्त प्रायः सभी राज्यों ने जिला पंचायत को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी मानते हुए जिले के विकास के लिए सबसे उपयुक्त संस्था माना है। इसलिए वर्तमान मेंउत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड

में जिले के ग्रामीण विकास के लिए स्थापित जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष जिला पंचायत के अध्यक्ष को बनाया गया है। प्रत्येक जिले में जिला नियोजन समिति की स्थापना की गयी है, जिसका प्रमुख जिले का प्रभारी मन्त्री होता है। समिति के द्वारा निर्मित योजनाओं को क्रियान्वित करने में जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की भूमिका प्रमुख होती है। इसका अध्यक्ष जिला पंचायत अध्यक्ष के होने के कारण जिले के समस्त विकास सम्बन्धी विभागों पर भी उसका नियन्त्रण स्थापित हो जाता है।

सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए संचालित सभी योजनाओं का क्षेत्र पंचायत और ग्राम पंचायत स्तर पर समन्वित और संचालित करने में जिला पंचायत की प्रमुख भूमिका होती है। जिला पंचायत के अधिनियम की अनुसूची- 2 के भाग 'क' के अन्तर्गत जिले के 32 विभागों के जिला स्तरीय कार्यों को सम्पादित करने का अधिकार दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिला पंचायत अपने सीमित साधनों से जिले में कच्ची व पक्की सड़कों का निर्माण कराता है। किसी क्षोमकर खतरनाक या घृणित व्यापार या कार्य करने के लिए उपयुक्त स्थान प्राप्त करता है या प्राप्त करने में सहयोग देता है। अपने अधिकार क्षेत्र में नदियों तथा अन्य जल स्रोतों का संरक्षण तथा उन्हें दूषित होने से बचाता है। फैक्ट्रियों, स्कूलों तथा सार्वजनिक समागम के अन्य स्थानों के लिए शौचालयों की व्यवस्था करता है।

इसके अतिरिक्त जिला पंचायत द्वारा क्षेत्र पंचायत तथा ग्राम पंचायत के बीच समन्वय स्थापित करने तथा उनकी योजनाओं को स्वीकृति देने का भी कार्य किया जाता है। इस प्रकार कहा जाता है कि जिला पंचायत जहाँ ग्रामीण विकास सम्बन्धी अनेको कार्यों को स्वयं सम्पन्न करती है तो वही तमाम योजनाओं के सम्बन्ध में वह क्षेत्र पंचायत तथा ग्राम पंचायत में समन्वय बनाये रखते हुए उनके माध्यम से संचालित करवाती है। जिससे ग्रामीण विकास की अवधारणा वर्तमान में तेजी के साथ पल्लवित तथा पुष्पित हो रही है। आवश्यकता है जिला पंचायत को और अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान करने की जिससे वह सचमुच जिले के विकास के प्रतिदर्श के रूप में कार्य कर सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. मनु स्मृति में गांवों का सबसे बड़ा अधिकारी सहस्रपति के अधीन कितने गांव होते थे?
2. स्वायत्त शासन की संस्थाएं स्थापित करने हेतु लार्ड रिपन द्वारा प्रस्ताव किस सन् में पारित किया गया?
3. उत्तर प्रदेश यूनाइटेड प्राविन्शियल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट 1922 कब लागू किया गया था?
4. उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत को कानूनी रूप से व्यवस्थित करने का श्रेय किस अधिनियम को दिया जाता है?
5. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के द्वि-स्तरीय ढ़ाँचे की सिफारिश किस समिति के द्वारा की गयी थी?
6. क्या जिले के सभी क्षेत्र पंचायत प्रमुख भी जिला पंचायत के सदस्य होते हैं?
7. राज्य सरकार की ओर से उसके निर्देश जिला को पंचायत कौन देता है?
8. जिला पंचायत के अधिकारों और दायित्वों का निर्वहन करने के लिए किस निधि की स्थापना की गयी है?

7.9 सारांश

उच्च स्तरीय ग्रामीण संस्थाए भी भारत में प्राचीन काल से देखने को मिलती हैं। किन्तु अपने वर्तमान स्वरूप में जिला पंचायत (जिला परिषद) क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम 1961 के द्वारा अस्तित्व में आयी। इसका अद्यतन स्वरूप उत्तर प्रदेशपंचायत विधि अधिनियम 1994 एवं उत्तराखण्ड संसोधन अधिनियम संख्या 08, सन् 2002 की देन है। यह जिले में प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की धुरी है। इसलिए इसके कुछ सदस्यो को प्रत्यक्ष रूप से जिला पंचायत क्षेत्र की जनता के द्वारा चुने जाने की व्यवस्था की गयी है। इसके अध्यक्ष को जिला

ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष बनाने के पीछे भी उद्देश्य यही है कि जनता के प्रतिनिधियों को ही जिले के विकास का दायित्व सौंपा जाय।

जिला पंचायत को कुछ वित्तीय शक्तियां भी दी गयी हैं, जिससे व सीमित साधनों की व्यवस्था कर आत्मनिर्भर बन सके। ग्रामीण विकास की योजनाओं को नियन्त्रित व समन्वित करने में भी इसकी भूमिका प्रमुख मानी जाती है। जिला पंचायत मनमाने या निरंकुश तरीके से कार्य न कर सके, इसके लिए इस पर राज्य सरकार के द्वारा आयुक्त एवं जिलाधिकारी के माध्यम से नियन्त्रण भी रखा जाता है। ग्रामीण विकास की योजनाओं को समन्वित व संचालित करने में भी जिला पंचायत की प्रमुख भूमिका होती है। यह अपने सीमित साधनों द्वारा गांवों के साफ-सफाई, नाली, खडन्जा, कच्ची-पक्की सड़क, वृक्षारोपण आपदा प्रबन्धन आदि के कार्यों को भी सम्पन्न करती है। इसके अलावा यह ग्राम योजनाओं को स्वीकृत करने उसके प्रधान, उपप्रधान के त्याग पत्र को स्वीकारने आदि से सम्बन्धित कार्यों को भी करती है। ग्रामीण विकास में जिला पंचायत के सहभगिता को नकारने का काम वर्तमान परिदृष्य में कोई भी नहीं कर सकता है।

7.10 शब्दावली

गणतन्त्रात्मक- जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का शासन, प्रजातन्त्र- वह शासन व्यवस्था जिसमें जनता की अधिक से अधिक सहभागिता हो, शिलालेख- पत्थर पर अंकित आलेख, भौतिक- सांसारिक जीवन से सम्बन्धित, ड्रिस्ट्रिक्ट बोर्ड- जिला स्तरीय कार्यकारिणी व्यवस्था, अनुदान- सरकार द्वारा दी जाने वाली वह राशि जिसे वापस नहीं करना पड़ता है। सम्मेलन- जहाँ बहुत से लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए इकट्ठा हों, संसदीय- संसद के अनुरूप, आयोग- एक अधिकार सम्पन्न संस्था, सार्वजनिक- जो समाज के सभी लोगों से सम्बन्धित हो, नियतिकालिक- जिसका समय निश्चित हो

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगभग एक हजार गांव, **2.** 1882 ई0 में, **3.** हाँ, **4.** पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम 1961, **5.** अशोक मेहता समिति, **6.** हाँ, **7.** जिलाधिकारी, **8.** जिला निधि

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अशोक शर्मा भारत में स्थानीय प्रशासन, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, सवाई मान सिंह हाइवे, जयपुर।
2. प्रो0 अवधनारायण दूबे, पंचायती राज का बदलता स्वरूप, मिश्रा ट्रेंडिग कार्पोरेशन, वाराणसी।
3. तिलक रघुकुल, लोकतन्त्र स्वरूप और समस्याएं, लखनऊ।
4. के0के0राय क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत अधिनियम, एलिया लॉ एजेंसी इलाहाबाद।

7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डा0 प्रभुदत्त शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1986
2. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली।
3. अरूण श्रीवास्तव, भारत में पंचायती राज, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।

7.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. जिला पंचायत के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक निबन्ध लिखे।
2. जिला पंचायत के संगठन तथा अधिकार व कृत्यों का उल्लेख करें।
3. जिला पंचायत की वित्तीय स्थिति का उल्लेख करते हुए ग्रामीण विकास में उसकी भूमिका को रेखांकित कीजिये।

इकाई- 8 पंचायती राज और तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 पंचायती राज
8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायती राज
8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज
8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज
8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ
8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति
8.6.2 अशोक मेहता समिति
8.6.3 जी0वी0के0 समिति
8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति
8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति
8.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच
8.8 तिहत्तरवां संविधान अधिनियम
8.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें
8.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताऐं
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.16 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

शासन प्रणालियों के विकास क्रम में मनुष्य ने अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों को अपनाया। शासन प्रणालियों का कोई भी स्वरूप- चाहे वह तानाशाही शासन हो, राजशाही शासन, सैनिक शासन, साम्यवादी शासन या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, ये सभी शासन प्रणालियाँ भौगोलिक परिस्थितियों के परिणाम ना होकर व्यक्ति के विचारों और सिद्धान्तों का परिणाम हैं। शासन प्रणालियों के विकास क्रम में ज्यादातर समय राजशाही व तानाशाही शासन प्रणाली का रहा, किन्तु एक बेहतर जीवन की खोज में व्यक्ति का संघर्ष लगातार जारी रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति ने अपने ऊपर शासन के लिए स्वयं को शासक बनाने का निश्चय किया और लोकतंत्र या प्रजातंत्र शासन प्रणाली का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्र में भी सबसे निचले स्तर तक के व्यक्ति के हाथों में सत्ता की पहुँच हो और वो शासन के कार्यों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके इसके लिए शासन-सत्ता का एक जगह केन्द्रीकरण ना करके इसके विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया। सत्ता विकेन्द्रीकरण की सोच ने स्थानीय स्वशासन को जन्म दिया और सबसे निचले स्तर पर पंचायती और नगरीय शासन का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में ही सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्भव है। आज हम सभी भारत में पंचायती राज और नगरीय शासन से अच्छी तरह परिचित हैं।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पंचायती राज के सम्बन्ध में जान पाओगे।
- स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में पंचायती राज की स्थिति के बारे में जान पायेंगे।
- 73वें संविधान संशोधन के पीछे क्या सोच थी, इस विषय में जान पायेंगे ।
- 73वें संविधान संशोधन और इस संविधान में मौजुद मुख्य बातों(उपबन्धों) के विषय में जान पायेंगे ।

8.2 पंचायती राज

पंचायती राज का इतिहास कोई नया नहीं अपितु यह आदिकाल से हमारी पुरातन धरोहर है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में सामुदायिकता की भावना प्राचीन काल से विद्यमान रही है। इसी सामुदायिकता व परम्परागत संगठन के आधार पर पंचायत व्यवस्था का जन्म हुआ। इसीलिए हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था भी सदियों से चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ पंचायती व्यवस्था का जन्म और विकास हुआ। पंचायत शब्द पंच+आयत से बना है। 'पंच' का अर्थ है, समुदाय या संस्था तथा 'आयत' का अर्थ है विकास या विस्तार। अतः सामूहिक रूप से गाँव का विकास ही पंचायत का वास्तविक अर्थ है। ये संस्थाऐं हमारे समाज की बुनियादी संस्थाऐं हैं और किसी न किसी रूप में ये संस्थाऐं हमारी संस्कृति व शासन-प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, प्रशासन व न्याय की जिम्मेदारी इन्हीं संस्थाओं की थी। राजा, महाराजा भी स्थानीय स्तर पर काम-काज के संचालन हेतु इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर रहते थे। स्थानीय स्तर पर सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में न रह कर सामूहिक रहती थी। इसीलिए इन्हें गणतन्त्र की स्थानीय इकाईयों के रूप में मान-सम्मान दिया जाता था। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबन्ध, शान्ति और सुरक्षा की एकमात्र संस्थाऐं रही हैं। डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि ये समस्त जनता की सामान्य सभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकारों, स्वतंत्रताओं के लिए निर्मित होती हैं, ताकि सब में समानता, स्वतंत्रता तथा बुधुत्व का विचार दृढ़ रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में पंचायती राज का गौरवशाली अतीत रहा है।

प्राचीन काल में पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। यद्यपि इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा नहींप्राप्त था लेकिन गांवों से जुड़े विकास व न्याय सम्बन्धित निर्णयों के लिए ये संस्थाऐं पूर्ण रूप से जिम्मेदार थीं। प्राचीन काल में गाँवों में पंच परमेश्वर की प्रणाली मौजूद थी। गाँव में सर्वसहमति से चुने गये पाँच गणमान्य व बुद्धिमान व्यक्तियों को गाँव में न्याय व्यवस्था बनाये रखने व गाँव के विकास हेतु निर्णय लेने का अधिकार था और उन्हें तो पंच परमेश्वर तक कहा जाता था। पंच परमेश्वर द्वारा न्याय को सरल और सुलभ बनाने की प्रथा काफी मजबूत थी। उस समय ये पंच एक संस्था के रूप में कार्य करते थे। गाँव के झगड़े, गाँव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे मुख्य कार्य पंच-परमेश्वर संस्था किया करती थी। उसके कायदे-कानून लिखित नहीं होते थे फिर भी उनका प्रभाव समाज पर ज्यादा होता था। पंचों के फैसले के खिलाफ जाने की कोई सोच भी नहीं सकता था। पंचों का सम्मान बहुत था व उनके पास समाज का भरोसा और ताकत भी थी। लोग पंचों के प्रति बड़ा विश्वास रखते थे और उनका निर्णय सहज स्वीकार कर लेते थे। पंच परमेश्वर भी बिना किसी पक्षपात के निर्णय किया करती थी। मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी पंच परमेश्वर द्वारा प्राचीन काल में स्थापित इस पंच प्रणाली को काफी सरल तरीके से समझाया है। प्राचीन काल में जातिगत व कबाइली पंचायतों का भी जिक्र भी मिलता है। इन पंचायतों के प्रमुख गाँव के विद्वान व कबीले के मुखिया हुआ करते थे। इन पंचायतों में कोई भी निर्णय लेने हेतु तब तक विचार-विमर्श किया जाता था जब तक कि सर्वसहमति से निर्णय न हो जाये।

8.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायत व्यवस्था

राजा-महाराजा काल में स्थानीय स्वशासन को काफी महत्व दिया गया। उनके द्वारा भी जनता को सत्ता सौंपने की प्रथा को अपनाया गया। भारत जैसे विशाल देश को एक केन्द्र से शासित करना राजाओं व सम्राटों के लिए सम्भव नहीं था। अतः राज्य को सूबों, जनपदों, ग्राम समितियों अथवा ग्राम सभाओं में बांटा गया। वेदों, बौद्ध ग्रन्थों, जातक कथाओं, उपनिषदों आदि में इस व्यवस्था के रूप में पंचायतों के आस्तित्व के पूर्ण साक्ष्य मिलते हैं। मनुस्मृति तथा महाभारत के 'शांति-पर्व' में ग्राम सभाओं का उल्लेख है। रामायण में इसका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत काल में भी इन संस्थानों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वैदिक कालीन तथा उत्तर-वैदिक कालीन इतिहास के अवलोकन में यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गाँवों और छोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिलकर बड़े संघ बन जाते थे संघ, पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा सम्बन्धित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गाँवों के छोटे-छोटे गणराज्यों की बात कही गई है। सर चार्ल्स मेटकाफ ने तो पंचायतों को गाँव के छोटे-छोटे गणतन्त्र कहा था जो स्वयं में आत्मनिर्भर थे। बौद्ध व मौर्य काल के समय पंचायतों के आस्तित्व की बात कही गई है। बौद्ध काल के संघों की कार्य-पद्धति ग्राम राज्य की प्रथा को दर्शाती है। बौद्ध संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम पंचायतों तथा ग्राम संघों से ही ली गई थी। गुप्त काल में भी ग्राम समितियां, पंचायतों के रूप में कार्य करती थीं। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृतान्त से उसके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज के वृतान्त से उस समय के नगर प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायत-प्रणाली से ही होता था और पाटलिपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है। मैगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन भी ग्राम प्रशासन की भाँति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था, जिसमें 30 सदस्य होते थे। सदस्य 06 समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का प्रबन्धन करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे।

प्राचीन काल में राजा लोग महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय इन पंचायतों से पूर्ण विचार-विमर्श करते थे। स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाऐं, स्थानीय स्तर पर अपना शासन खुद चलाती थीं। लोग अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। यह कह सकते हैं कि हमारे गाँव का काम गाँव में और गाँव का राज गाँव में था। पंचायतें हमारे गाँव समाज की ताकत थी।

ग्रामों के इस संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिंता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठन की परम्परा उत्पन्न हुई, पनपी और इसमें दीर्घकाल तक की सफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर बनाया। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्य काल में पंचायतों के विकास पर खास ध्यान नहीं दिया गया। इस दौरान समय-समय पर विदेशियों के आक्रमण भारत में हुए। मुगलों के भारत में आधिपत्य के साथ ही शासन प्रणाली में नकारात्मक बदलाव आये। लोगों की अपनी बनाई हुई व्यवस्थाऐं चरमराकर धराशायी हो गई। समस्त सत्ता व शक्ति बादशाह व उसके खास कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। यद्यापि मुगल बादशाह अकबर द्वारा स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया गया और उस समय ग्राम स्तरीय समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही किया जाता था। लेकिन अन्य शासकों के शासनकाल में पंचायत व्यवस्था का धीरे-धीरे विघटन का दौर शुरू हुआ जो ब्रिटिश काल के दौरान भी अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति के कारण चलता रहा। पंच-परमेश्वर प्रथा की अवहेलना से पंचायतों व स्थानीय स्वशासन को गहरा झटका लगा, जिसके परिणाम स्वरूप जो छोटे-छोटे विवाद पहले गाँव में ही सुलझ जाया करते थे, अब वह

दबाये जाने लगे व सदियों से चली आ रही स्थानीय स्तर पर विवाद निपटाने की प्रथा का स्थान कोर्ट-कचहरी ने लेना शुरू किया। जिन प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा व उपयोग गाँव वाले स्वयं करते थे वे सब अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आ गये और उनका प्रबन्धन भी सरकार के हाथों चला गया। स्थानीय लोगों के अधिकार समाप्त हो गये। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन की परम्परा प्राचीन काल में काफी मजबूत थी। स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं जन-समुदाय की आवाज हुआ करती थी। वर्तमान की पंचायत व्यवस्था का मूल आधार हमारी पुरानी सामुदायिक व्यवस्था ही है। यद्यपि मध्यकाल व ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था लडखड़ा गई थी, लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के लिए पुनः प्रयास शुरू हुए और पंचायती राज व्यवस्था भारत मे पुनः स्थापित की गई। जिसके बारे में आप आगे विस्तार से अध्याय करेंगे।

8.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुधारहेतु विशेष प्रयास नहीं हुए जिस कारण पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं का मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये, परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गये। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोटे-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं कमजोर बना दी गयी या पूरी तरह समाप्त कर दी गयी। धीरे-धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गयी और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्तप्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गयी। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार'' के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई, जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही गई और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक बनाने तक का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थीं। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए

पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का73वां संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

8.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गाँधी जी ने कहा था- ''सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गाँव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।'' गाँधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद 40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गाँववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

8.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

पंचायतों के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयी-

8.6.1 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी-

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाऐं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाऐं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 02 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे-धीरे गाँवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयी। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाऐं निष्क्रीय हो गयी।

8.6.2 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये

1. समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे, जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायतीराज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।
2. जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यो का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।
3. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।
4. पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।
5. कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक हैं।
6. पंचायती राज संस्थाऐंसमिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।
7. राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।
8. देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज चड्डा ने इस विषय पर लिखा कि ''मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।''

8.6.3 जी0वी0के0 समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण(विकास) की प्रक्रिया में सन् 1985 में 'जी0वी0के0 राव समिति' गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण और उसके संचालन करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

8.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति

1986 में डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने 'गाँव पंचायत' (ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही, जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

8.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया, जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिकशक्तियाँ देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व0 राजीव गाँधी की सरकार ने गाँवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गाँधी का विचार था कि जब तक गाँव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गाँव वालों के खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। लोक सभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगरराज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 02 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाऐं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात 73वां संविधान संशोधन अधिनियम24 अप्रैल से लागू हो गया।

8.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है।73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

- निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।
- स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।
- लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।
- स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

8.8 तिहत्तरवा संविधान संशोधन अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहाँ स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात 'नया पंचायती राज अधिनियम' प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गॉधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

8.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि 'देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्राम विकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी।' गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1. 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।
2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिकआबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायत 06 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 06 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. 73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अन्तर्गत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

8.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज सेसम्बन्धित है, जिसमें पंचायतों से सम्बन्धित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं।

1. संविधान में ‘‘ग्राम सभा’’ को पंचायती राज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।
2. पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र-पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3. प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4. 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक-तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
5. अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पांच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 06 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।

6. अधिनियम के द्वारा पंचायतों से सम्बन्धित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तरदायी बनाया गया है।
7. अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो, जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. 73वें संविधान संशोधन का सम्बन्ध किससे है?
2. किस संविधान संशोधन ने पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया?
3. 73वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में कितने प्रतिशत आरक्षण दिया गया है?
4. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया?
5. भारत में किस सन् में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये?
6. बलवंत राय समिति का गठन कब किया गया?
7. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्री-स्तरीय पंचायती राज की बात कही?
8. वह कौन सा पहला राज्य है, जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी?
9. राजस्थान के किस जिले में 02 अक्टूबर 1958 को पंचायती राज की शुरूआत की गयी?
10. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?
11. 0जी0वी0 राव समिति कब गठित की गयी?
12. किस समिति ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

8.11 सारांश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गाँधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी0के0वी0 राव समिति, एल0एम0 सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जाँच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन सेगाँधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गाँधी जी हमेशा से गाँव की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गाँव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है।पंचायतों के माध्यम से हम विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं।

73वां संविधान संशोधन स्थानीय स्वशासन को मजबुती प्रदान करने और आम जन की शासन सत्ता में सीधी भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम स्तर पर लोगों को नीति निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी, जनहित के कार्यों में सक्रिय सहयोग का मौका दिया। 73वां संविधान संशोधन ग्रामस्तर पर लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

8.12 शब्दावली

दशक- दस वर्ष का समय, विकेन्द्रीकृत- किसी चीज का केन्द्र या एक स्थान पर न होना, जन कल्याणकारी योजनाऐं- आम लोगों के हित की योजनाएं, सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया, प्रबलतम- मजबूत, स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता, नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित), हस्तांतरण- एक स्थान से दुसरे स्थान पर, त्रीस्तरीय- तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रामीण विकास और पंचायती राज व्यवस्था, **2.** 73वें संविधान संशोधन द्वारा, **3.** 33 प्रतिशत, **4.** मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार, 5. 1952, **6.** 1960, **7.** बलवंत राय मेहता समिति, **8.** राजस्थान, **9.** नागौर जिला, **10.** अशोक मेहता समिति, **11.** सन् 1985, **12.** सिंघवी समिति

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम
2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर।
3. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
4. भारत में स्थानीय शासन- एस0आर0 माहेश्वरी।

8.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के0के0 शर्मा।
2. भारत में स्थानीय शासन- एस0आर0 माहेश्वरी।
3. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससेसम्बन्धित है, इस अधिनियम में मौजुद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. पंचायती राज से आप क्या समझते हैं? इसके उत्थान के लिए किए गये प्रयासों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई- 9 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन
9.3 कर्मचारी वर्ग के गुण
9.4 कर्मचारी वर्ग की योग्यता
9.5 भर्ती की प्रणाली एवं प्रशिक्षण
9.6 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करने हेतु सुझाव
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

कर्मचारी वर्ग व्यवस्था; प्रशासनिक व्यवस्था का सबसे महत्तवपूर्ण आयाम है। किसी प्रशासकीय संगठन में जिन महत्तवपूर्ण उपकरणों और घटकों की आवश्यकता होती है, कर्मचारी-वर्ग उसमें सबसे आवश्यक साधन है। इसलिए यह माना जाता है कि कर्मचारी वर्ग के कुशल प्रशासन पर प्रबन्ध व्यवस्था की प्रभावशीलता निर्भर करती है। आधुनिक युग में यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि यदि किसी प्रशासकीय संगठन का कार्यभार सक्षम और कुशल कर्मचारियों के हाथों में नहीं है तो वह संगठन न तो अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है और न ही जनता के सम्मान और विश्वास का पात्र बन सकता है। इस प्रशासन की संपूर्ण कार्यकुशलता और नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता कुशल कर्मचारी वर्ग पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में हरमन फाइनर का मानना है कि ‘‘सरकार के राजनीतिक पक्ष में कितनी ही शक्ति हो, उसका राजनीतिक दर्शन कितना ही बुद्धिमतापूर्ण हो और नेतृत्व एवं प्रभुत्व कितने ही ऊँचे हों।ये सब अधिकारियों, विशिष्ट मामलों में सलाह करने वाले विशेषज्ञों और उन स्थाई कर्मचारियों, जिन्हें विशेष रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है, के बिना प्रभावशून्य होंगे।’’

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ग्रामीण स्थानीय शासन में कर्मचारी वर्ग की स्थिति को विभिन्न स्तरों (भर्ती, प्रशिक्षण, उत्तरदायित्व आदि) पर पर समझ पायेंगे।
- कर्मचारी वर्ग की पदसोपानीय व्यवस्था को जान पायेंगे।
- कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को लोक सेवकों के रूप में परिभाषित कर पायेंगे।

9.2 पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन

पंचायती राज व्यवस्था में कार्मिक संगठन मुख्यरूप से दो वर्गों में विभाजित होता है। प्रथम वर्ग में प्रमुख कर्मचारी सम्मिलित होते हैं, जिन्हें राज्य सरकार भर्ती करती है और पंचायती राज संस्थाओं में काम करने के लिए भेज देती

है। पंचायती राज की जिस संस्था में इस वर्ग के व्यक्ति को काम करने के लिए भेजा जाता है, उस संस्था के निर्वाचित प्रमुख का उस पर केवल दिन-प्रतिदिन का नियंत्रण रहता है। दण्ड देने, स्थानान्तरित करने और पदोन्नत करने की शक्ति राज्य सरकार में निहिन होती है।

यद्यपि राज्य सरकार यह व्यवस्था करती है कि इन अधिकारियों का स्थानान्तरण करके प्रशासन की संपूर्ण कार्यकुशलता और नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता कुशल कर्मचारी वर्ग पर निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में हरमन फाइनर का मानना है कि ‘‘सरकार के राजनीतिक प्रक्ष में कितनी ही शक्ति हो, उसका राजनीतिक दर्शन कितना ही बुद्धिमतापूर्ण हो और नेतृत्व एवं प्रभुत्व कितने ही ऊँचे हों ये सब अधिकारियों, विशिष्ट मामलों में सलाह करने वाले विशेषज्ञों और उन स्थाई कर्मचारियों जिन्हें विशेष रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है, के बिना प्रभावशून्य होंगे।’’

सभी राज्यों में राज संस्थाओं के वरिष्ठ कर्मचारी राज्य की नियमित लोक सेवा के सदस्य होते हैं और राज्य सरकार उन्हें इन संस्थाओं में कार्य करने के लिए नियुक्त/प्रतिनियुक्ति करती है। इस प्रकार नियुक्त किए गए लोकसेवक और पदाधिकारी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इन इकाइयों में अपनी सेवा का कुछ समय बिताकर पुनः राज्य सरकार की सेवा में चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे राज्य सेवक प्रतिनियुक्त कर दिये जाते है। इस प्रकार प्रथम और द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की भर्ती, पदोन्नति एवं नियंत्रण राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में होता है।

यद्यपि राज्य सरकार यह व्यवस्था करती है कि इन अधिकारियों का स्थानान्तरण करते समय उन संस्थाओं के राजनीतिक मुखियाओं से सम्मति प्राप्त कर लें, जहाँ वे कार्यरत हैं। वस्तुतः इस तरह इन अधिकारियों एवं कर्मचारियों पर नियंत्रण की अंतिम शक्ति राज्य सरकार में सन्निहित होती है। राज्य सरकार ही उन अधिकारियों को स्थानान्तरित, पदोन्नति या दण्डित करने में सक्षम होती है। ऐसे अधिकारी या कर्मचारी पंचायत राज की जिस संस्था में नियुक्त होते हैंहोते हैं, वह संस्था उन पर केवल दैनिक नियंत्रण ही रख पाती है।

प्रायः अधिकांश राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं में प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के अधिकारी राज्य सरकार के कर्मचारी सेवा वर्ग के सदस्य होते हैं और पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनियुक्त किए जाते हैं। राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेश जैसे कुछ राज्यों में तो तृतीय श्रेणी के कुछ वर्गों के कर्मचारी भी इन संस्थाओं में राज्य की सेवा में प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाते हैं। दूसरी ओर आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और दूसरी श्रेणी की सेवाओं में कर्मचारी वर्गों का एक ऐसा वर्ग बनाया गया है जिनकी भर्ती, पदोन्नति एवं अनुशासनिक नियंत्रण पंचायती राज संस्थाओं के अपने अधिकार क्षेत्र में है और जिला स्तर एवं राज्य स्तर पर जिला प्रतिस्थापन समिति और जिला परिषद आयोग द्वारा होता है।

गुजरात में राज्य पंचायत सेवा की रचना कर ली गई जो राज्य सेवा से भिन्न है और जिसे कुछ राजपत्रित और अराजपत्रित कर्मचारी सौंप दिए गए हैं। महाराष्ट्र में पंचायती राज सेवा में कार्यरत कर्मचारी वर्ग के लिए तीन पृथक संवर्गों की रचना की है- जिला तकनीकी सेवा(वर्ग- 3), जिला सेवा(वर्ग-3) तथा जिला सेवा (वर्ग- 4)। ये सेवाएं प्रत्येक जिले में पृथक स्थापित की गयी हैं। इस प्रकार राज्य सरकार के उन समस्त कर्मचारियों को भी जिला परिषद की सेवा के अंतर्गत ले लिया है जो पूर्व के स्थानीय निकायों के अधीन काम करते थे।

राजस्थान में संपूर्ण राज्य के लिए अलग से पंचायती राज सेवा की स्थापना कीगई है जो राजस्थान पंचायत समिति और जिला परिषद सेवा कहलाती है। इनमें जिला स्तरीय कर्मचारी, खण्ड विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी राज्य सेवा के ही सदस्य होते हैं और उन्हें पंचायती राज निकायों में काम करने के लिए भेज दिया जाता है। मध्य प्रदेश में पंचायत राज अधिनियम में कर्मचारी वर्ग में पंचायत स्तर पर कर्मचारी वर्ग, जनपद पंचायत स्तर पर कर्मचारी वर्ग और जिला स्तर पर कर्मचारी वर्ग की स्थापना की गई है।

9.3 कर्मचारी वर्ग के गुण

समकालीन परिदृश्य में स्थानीय शासन का कार्य जटिल एवं विस्तृत होता जा रहा है। राज्य सरकारों का स्थानीय शासन के कर्मचारी वर्ग की आवश्यकताओं के प्रति व्यवहार हिचकिचाहट पूर्ण रहा है और उन्होंने उनकी पूर्ति के लिए थोड़े बहुत उपाय भी किए हैं। स्थानीय शासन भारत जैसे विकासशील देश के लिए आधारशिला हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि राज्य सरकार इस विषय में गंभीरता से कार्य करे, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक स्थानीय सेवा की स्थापना की जाए जिससे कर्मचारी वर्ग अपना अधिक से अधिक कार्य कुशलता के माध्यम से अपना योगदान दे सकें। समुचित रूप से वे सतही स्तर पर समस्याओं का निराकरण कर सके। अतः ग्रामीण स्थानीय शासन की सेवा के लिए जिन व्यक्तियों को चुना जाए उनमें निम्न गुणों का उल्लेख करते हुए एस0आर0 माहेश्वरी ने लिखा है-

1. जिन लोगों के लिए उन्हें काम करना है उनकी संस्कृति का बोध और सराहना।
2. ग्रामीण मनोवृत्ति।
3. ग्रामीण जनता के साथ प्रभावोत्पादक ढंग से कार्य करने की योग्यता।
4. काम में रूचि तथा उसके प्रति उत्साह।
5. शारीरिक शक्ति तथा जीवन।
6. जिन कार्यक्रमों पर आजकल बल दिया जा रहा है उनके प्रति विशिष्ट सम्मान।
7. बाह्य परिवेश का सूक्ष्म बोध तथा कार्यनीति एवं कार्य-प्रणाली को इस प्रकार मोडने की क्षमता किवह उस परिवेश के अनुकूल सिद्ध हो सके किंतु साथ ही साथ पूर्व-निर्धारित लक्ष्य को साक्षात्कृत करने में भी सहायक हो सके।

9.4 कर्मचारी वर्ग की योग्यता

ग्राम पंचायत के कार्य संचालन में नियुक्त किए जाने वाले कर्मी के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है-

1. 10+2 प्रणाली के तहत दसवीं परीक्षा उत्तीर्ण।
2. न्यूनतम आयु 18 वर्ष।
3. सम्बन्धित पंचायत द्वारा उक्त वर्णित योग्यता के अलावा अन्य स्थानीय योग्यता।
4. अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग तथा महिला उम्मीदवार को प्राथमिकता तथा
5. यथासम्भव प्रत्याशी स्थानीय हो।

प्रत्याशी को पंचायतकर्मी के लिए दर्शित योग्यताओं से सम्बन्धित प्रमाण-पत्र आवेदन के साथ प्रस्तुत करना आवश्यक है। पंचायत कर्मी की नियुक्ति पंचायत द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तों पर आधारित होती है। जिसका पालन करना पंचायतों का कर्तव्य है।

9.5 भर्ती की प्रणाली एवं प्रशिक्षण

पंचायती राज संस्थाओं में कर्मचारियों की भर्ती के लिए निम्नलिखित रीतियों का प्रयोग किया जाता है-

1. सीधी भर्ती द्वारा, लिखित परीक्षा या साक्षात्कार द्वारा या दोनों द्वारा।
2. पंचायत सेवा में नियोजित व्यक्ति की पदोन्नति द्वारा।
3. किसी स्थानीय प्राधिकारी या राज्य सरकार के कार्यकलापों के सम्बन्ध में सेवारत व्यक्ति की प्रतिनियुक्ति या स्थानान्तरण द्वारा।
4. ऐसे व्यक्तियों के स्थानान्तरण द्वारा जो इस निमित्त विनिर्दिष्ट ऐसी सेवाओं में ऐसे मूल रूप से धारण करते हों।

यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह है कि जो कर्मचारी राज्य संवर्गों के होते हैं और जिन्हें पंचायती राज संस्थाओं में काम करने के लिए भेज दिया जाता है, उनकी भर्ती यथारीति लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है और राज्य सरकार उन्हें पंचायती राज संस्थाओं को सेवार्थ दे देती है। निम्न वर्गों के कर्मचारियों की भर्ती के सम्बन्ध में राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रणाली अपनाई गई है।
राजस्थान में राज्य स्तर पर एक चयन आयोग का और प्रत्येक जिले में एक चयन समिति का जो जिला संस्थापन समिति कहलाती है, निर्माण किया गया है। ये दोनों ही सांविधिक(संवैधानिक) निकाय हैं। राज्य स्तरीय चयन आयोग का पूरा नाम राजस्थान पंचायत समिति एवं जिलापरिषद चयन आयोग है। अन्य किसी राज्य ने राजस्थान की तरह राज्य स्तर पर कर्मचारियों के चयन के लिए किसी अभिकरण की रचना नहीं की है। महाराष्ट्र में जिला तथा मण्डल पर चयन परिषदों की स्थापना की है।
आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारों के सभी स्तरों के समक्ष लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरने की गंभीर चुनौती विद्यमान है। सभी के समक्ष उपस्थित इस चुनौती के कारण शासन और प्रशासन के लिए निरंतर यह चिंता और चिंतन का विषय है कि लोगों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का प्रभावी और कुशल संपादन कैसे किया जाए। वस्तुतः इस गंभीर चुनौती का हल प्रशासन तंत्र की क्षमता में प्रशिक्षण के माध्यम से वृद्धि द्वारा किया जा सकता है। पंचायती राज संस्थाएं ग्राम विकास के गतिशील क्षेत्र में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं और सरकार द्वारा प्रायः हर वर्ष की जाने वाली नई योजनाओं की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
आज स्थानीय प्रशासन अनेक जटिल समस्याओं का सामना कर रहा है। इसलिए उन समस्याओं के समुचित समाधान के लिए प्रशिक्षित और निपुण कर्मचारी वर्गों की आवश्यकता अधिक तेजी से अनुभव की जा रही है। इस कारण कर्मचारी से सेवा प्रवेश पूर्ण प्राप्त प्रशिक्षण और ज्ञान को पर्याप्त नहीं माना जाता और इस बात की आवश्यकता गंभीरता से अनुभव की जा रही है कि कर्मचारियों के सेवा में प्रवेश के बाद उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए स्वतंत्र प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। इसके पीछे मूल कारण है कि प्रशिक्षण संस्थाएं स्थानीय संस्थाओं में काम करने वाले कर्मचारियों में नेतृत्व, आचरण, विश्वास और निर्णय क्षमता का विकास कर सकें।
ऐसी प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नियोजन निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए-

- कालेज और विश्वविद्यालयों के उन क्षेत्रों में, जहाँ स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में रूचि हो, की स्थानीय शासन की सेवाओं के प्रति आकृष्ट करना।
- स्थानीय प्रकृति की प्रशासनिक समस्याओं के प्रति जनता में चेतना उत्पन्न करना और उन समस्याओं के समाधान के लिए उपर्युक्त कार्यक्रमों की योजना बनाना।
- स्थानीय प्रशासन के संचालन में उन्नत प्रशासनिक तकनीक को अपनाने की प्रक्रिया को तेज करना।
- स्थानीय स्तर पर व्यवस्थित आयोजना और शासकीय गतिविधियों के मूल्यांकन के लिए उचित मानकों का विकास करना।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम का विकास और उनका संचालन करना।

नवगठित पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को भी समय-समय पर राज्य प्रशासन द्वारा प्रसारित निर्देशों के परिवेश से अवगत कराने हेतु उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनाने हेतु शासन द्वारा उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है।

यद्यपि ग्राम पंचायतों के प्रतिनिधि मूलरूप से विकास एवं कल्याण के लिए उत्तरदायी हैं किंतु ग्राम पंचायत की प्रभावशीलता पंचायती कर्मी पर ही निर्भर करती है। पंचायती कर्मी एक ओर ग्राम पंचायत का अधिकारी हैं और दूसरी ओर शासन के नियमों का पालन करने वाला भी है। अतः उसे पंचायत के नियम-कानूनों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। नवनियुक्त पंचायत कर्मी को प्रशिक्षण दिए जाने का प्रमुख उद्देश्य उसे कार्यप्रणाली का ज्ञान करना है, ताकि पंचायत का कार्य नियमानुसार किया जा सके। पंचायत कर्मी के प्रशिक्षण के निम्न उद्देश्य हैं -

- ग्राम पंचायत के लिए बताये कार्यों की जानकारी होना।
- अपने अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी होना।
- कार्यालय के रिकार्ड, लेखा रखने का ज्ञान और कार्यालय को चलाने की जानकारी होना।
- ग्राम पंचायत से सम्बन्धित नियमों का सामान्य ज्ञान होना।
- पंचायत कर्मी की योग्यता को विकसित करना।
- ग्राम पंचायत पदाधिकारी की नियमतः सहयोग हेतु तत्पर होना।

9.6 कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करने हेतु सुझाव

किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुशल कर्मचारियों की नितांत आवश्यकता होती है। यदि अयोग्य कर्मचारी किसी संगठन में कार्य करेंगें तो कार्य में रूकावट और भ्रष्टाचार की जड़ें मजबूत हो जाएंगी। इस दृष्टि से न तो संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेगा और न ही जनता के सम्मान और विश्वास का पात्र बन सकेगा। सादिक अली समिति(1964) द्वारा यह स्वीकार किया गया कि पंचायत राज संस्थाओं की सेवाओं में भर्ती, नियुक्ति और सेवाओं का अनुशासनिक नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण है और उनका नियमन कतिपय स्वतंत्र सिद्धान्तों द्वारा किया जाना चाहिए। समिति की राय में ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. सेवाओं की नियुक्ति की पद्धति में शीघ्रता, निष्पक्षता और सही चयन की संभावना निहित होनी चाहिए।
2. भर्ती, पदोन्नति और अनुशासनिक नियंत्रण के लिए व्यवस्था करते समय जो सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए; वह है, सेवाओं को राजनीतिक और स्थानीय प्रशासन से कैसे अलग और सुरक्षित रखा जाए।
3. सेवाओं का आनुशासनिक नियंत्रण त्वरित एवं प्रभावशाली होना चाहिए। नियंत्रण की दशा और प्रक्रिया में किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए।

इस दृष्टि से कर्मचारी वर्ग व्यवस्था को सुदृढ करना आवश्यक है, जिसके लिए अनेक कदम उठाए जा सकते हैं-

1. कर्मचारियों की भर्ती के लिए अधिक से अधिक पारदर्शिता का होना आवश्यक है, जिससे योग्य कर्मचारी चुनकर आ सकेंगें और वे जनता के लिए अधिक से अधिक कार्य कर सकेंगे।
2. कर्मचारी एवं अधिकारियों पर चाहे वे पंचायती राज सेवा के सदस्य हों या विभागों से प्रतिनियुक्ति पर आये हों, प्रशासनिक नियंत्रण सम्बन्धित संस्था का होना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाओं के लिए कर्मचारियों के चयन हेतु पंचायती राज सेवा चयन आयोग का गठन किया जाना चाहिए।
4. कर्मचारियों के प्रशिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण केन्द्रों पर प्रशिक्षण देने के लिए ऐसे प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाए, जिन्हें इस विद्या में व्यक्तिगत रूचि हो और वे प्रशिक्षण के प्रति लगन और सत्यनिष्ठा से कार्य करें।
5. प्रशिक्षकों को सेवा सम्बन्धी आकर्षक सुविधाएं उपलब्ध की जानी चाहिए, जिससे वे प्रशिक्षण के प्रति अपनी योग्यतानुसार प्रशिक्षण दे सकें; ताकि कर्मचारी वर्ग भी अपने कार्य में कुशल हो सकें।

6. कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम को रूचिकर बनाया जाना चाहिए। प्रशिक्षण पाठयक्रम पूर्णतः व्याख्यानों तथा पुस्तकों पर आधारित न होकर क्षेत्रीय समस्याओं पर आधारित होनी चाहिए।
7. प्रशिक्षण के माध्यम से ग्रामीणों के दृष्टिकोण में परिवर्तन और ज्ञान वृद्धि दोनों उद्देश्यों पर सम्मिलित रूप से ध्यान देने की जरूरत है।
8. कर्मचारियों को प्रशिक्षण के दौरान जो पाठ्य पुस्तकें दी जाती हैं, उसे सरल और बोधगम्य भाषा में प्रकाशित कर वितरण की जानी चाहिए।
9. प्रशिक्षण के प्रचार माध्यम प्रेस, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। दूरदर्शन पर चौपाल कार्यक्रम के अलावा रेडियो पर चौपाल जैसे पंचायती राज कार्यक्रम से नियमित रूप से पंचायती राज पर प्रसारण समय-समय पर होना चाहिए। इससे कर्मचारी वर्ग और जनता के बीच की कड़ी मजबूत होगी।
10. कर्मचारियों के कार्यों के दबाव को देखते हुए उन्हें नियमित रूप से वेतन आवास, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएं दी जानी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. पंचायती राज संस्थाओं में कार्मिक संगठन मुख्य रूप से कितने वर्गों में विभाजित होता है?
2. क्या पंचायती राज संस्थाओं में कार्यरत सरकारी सेवकों को निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों द्वारा दण्ड देने, स्थानान्तरण करने और पदोन्नत करने का अधिकार होता है?
3. ग्राम पंचायत के कार्य संचालन के लिए नियुक्त कर्मी की न्यूनतम योग्यता क्या होती है?
4. पंचायती राज संस्थाओं में कर्मचारियों की भर्ती किन रितियों से होती है?

9.7 सारांश

किसी भी संगठन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मानव संसाधन होना आवश्यक है। मानव संसाधनों की योग्यता, कार्यकुशलता एवं निष्ठा उस संगठन को प्रभावी बनाने में महत्तवपूर्ण भूमिका निभाती है। पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की धुरी है। अतः उनमें कार्यरत अधिकारी एवं कर्मचारी जितने अधिक योग्य होंगें उतनी ही अधिक प्रभावशाली पंचायती राज संस्थाएं होंगी। अतः आवश्यकता इस बात की होनी चाहिए कि उनकी नियुक्ति की पद्धति में निष्पक्षता और सही चयन की संभावना निहित होने चाहिए। साथ ही साथ स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकार के कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं जिनकी सफलता कर्मचारियों के प्रशिक्षण के बिना सम्भव नहीं है। अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि एक सफल कर्मचारी वर्ग ही स्वस्थ एवं सशक्त संगठन का निर्माणकर सकता है, जो जनभावना के अनुकूल कल्याण एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा।

9.8 शब्दावली

स्थानांतरण- एक स्थान से दूसरे स्थान पर, पदोन्निति- निम्न पद से उच्च पद की और बढना, रिति- विधि, प्रतिनियुक्ति- एक विभाग से दूसरे विभाग में नियुक्ति

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दो वर्गों में, **2.** नहीं, **3.** 10+2 प्रणाली के तहत 10वीं, **4.** सीधी भर्ती, पदोन्नित और प्रतिनियुक्ति द्वारा

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012
2. अमरेश्वर अवस्थी, श्री राम माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2011

3. महीपाल, पंचायती राजः चुनौतियां एवं सम्भावनाएं’, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2005
4. पी0डी0 शर्मा और एच0सी0 शर्मा, लोक प्रशासन’, कालेज बुक डिपो, जयपुर, 1995

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन’, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2012
2. महीपाल, पंचायती राजः चुनौतियां एवं संभावनाएं नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2005
3. पी0डी0 शर्मा और एच0सी0 शर्मा, लोक प्रशासन’, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1995

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत कार्मिक संगठन और कर्मचारी वर्ग की योग्यताएं और गुणों का उल्लेख करें।
2. पंचायती राज व्यवस्था के कर्मचारियों की स्थिति सुदृढ करने के लिए अपने विचार प्रकट करें।

इकाई- 10 पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था: एक परिचय
10.3 पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत
10.3.1 ग्राम पंचायत के आय के स्रोत
10.3.2 पंचायत समिति के आय के स्रोत
10.3.3 जिला पंचायत के आय के स्रोत
10.4 पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया
10.4.1 बजट के घटक या अवयव
10.4.2 बजट के प्रकार
10.5 राज्य वित्त आयोग की भूमिका
10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण
10.7 बजट निर्माण में पंचायत के समक्ष चुनौतियां
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.13 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

भारत भौगोलिक दृष्टि से विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज व्यवस्था वह माध्यम है जो शासन को सामान्यजन के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ रूप में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है । यह लोकतंत्र एवं विकास में ग्रामों की सहभागिता एवं सक्रियता की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। पंचायती राज संस्थाओं को भारत जैसे देश में प्रजातंत्र की प्रयोगशालाओं के रूप में स्थापित किया गया है।

वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है जिसके बिना प्रशासनिक निर्णयों को क्रियान्वित करना असम्भव है। पंचायती राज व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। प्रस्तुत इकाई में पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था के बारे में जान सकेंगे।
- आप पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत के बारे में भी जान सकेंगे।
- पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया के बारे में भी आपको ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- राज्य वित्त आयोग, पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण एवं आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण भी आप कर पाएंगे।

10.2 पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था: एक परिचय

ग्रामीण स्थानीय संस्थाएं भारतीय लोक प्रशासन का अभिन्न अंग रही हैं। इस व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में जन सहभागिता बढ़ने तथा नियोजन आवश्यकता के अनुरूप करने एवं लक्ष्यों को प्रभावी रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया गया। आजादी के बाद संवैधानिक रूप से पंचायती राज व्यवस्था राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की इच्छा के कारण लागू हुई। उनका मानना था कि ''आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। सच्चे प्रजातंत्र में नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को समान अवसर मिलने चाहिए। इसलिए सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए दस-बीस आदमी नहीं चला सकते, वह तो नीचे से हरेक गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए।'' गांधीजी की इसी अवधारणा को फलीभूत करने के उद्देश्य से आजादी के बाद संविधान में पंचायती राज की व्यवस्था करते हुए अनुच्छेद- 40 में राज्यों को यह निर्देश दिया गया कि वे अपने यहाँ पंचायती राज का गठन करें। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमश ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। वास्तव में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन कियागया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारंभ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से सम्बन्धित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है । भारतीय संविधान के भाग- 9 में अनुच्छेद 243 -243(16) तक पंचायती राज के विषय में उल्लेख किया गया है।

73वें संशोधन के पूर्व पंचायती राज संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की 11वीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। पंचायत के तीनों स्तरों पर इन कार्यों से सम्बन्धित गतिविधियाँ, कार्मिक एवं वित्त के हस्तांतरण की व्यवस्था की गयी है। जब तक पंचायतों के पास वित्त की व्यवस्था नहीं होगी तब तक पंचायतें ग्रामीण विकास की योजनाओं को न तो उचित रूप से निर्माण कर पाएंगी और न ही क्रियान्वयन। पंचायतों का 'सुदृढ़ वित्तीय आधार' संविधान के अनुच्छेद- 243-I द्वारा राज्यों पर लागू की गयी संवैधानिक बाध्यता है। इस संवैधानिक बाध्यता के अनुपालन में राज्यों एवं केन्द्र को संघीय राजकोष की भावना का अनुरूप निर्वाचित स्थानीय निकाय की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए मिलकर कार्य करने पर बल दिया गया है । किसी भी स्थानीय संस्था की सफलता के लिए इसके वित्तीय स्रोतों की मजबूती को सामान्य रूप से स्वीकार किया गया है। सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल

एक सिमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है । अतः यह जरुरी हो जाता है कि ये संस्थाएं स्वयं के साधनों का विकास कर आत्मनिर्भर बनें।

स्थानीय निकायों के वित्तीय क्रियाकलाप विविध सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं। अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त अपने सीमित साधनों के बाद भी लोगों के अधिकतम सुख-सुविधाएँ प्रदान करने पर बल देता है, वहीं लाभ का सिद्धान्त कर राशि एवं प्राप्त लाभों के मध्य सम्बन्ध को आधार बनाता है। योग्यता का सिद्धान्त प्रसिद्द अर्थशास्त्री कैनन द्वारा प्रतिपादित है जो कर के योग्यतानुसार होने पर बल देता है। लाभ के अनुपात में अंशदान का सिद्धान्त, वित्तीय स्रोतों से सामंजस्य का सिद्धान्त एवं उपयोगी एवं कष्टकारक सेवाओं का सिद्धान्त अन्य ऐसे सिद्धान्त हैं जो स्थानीय निकाय के वित्तीय क्रियाकलाप के पहलुओं का विश्लेषण करते हैं ।

10.3 पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत

73वें संविधान संशोधन के अनुसार त्रिस्तरीय पंचायत राज में प्रारंभिक स्तर की संस्था ग्राम पंचायत एक महत्वपूर्ण संस्था है। लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यर्थाथ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है।

समय-समय पर विविध समितियों ने पंचायती राज व्यवस्था के वित्त के बारे में विश्लेषण किया है। 1951 में नियुक्त स्थानीय वित्त जाँच समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्थानीय संस्थाओं के लिए आरक्षित रखे जाने वाले विभिन्न विषयों पर सुझाव दिए थे। इस समिति का मत था कि गृह कर, आबाद भूमि कर और चूल्हा कर तथा सामान्य स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी उप कर आदि को अनिवार्य घोषित किया जाए। कर जांच आयोग (1953-54) ने आरक्षित रखे जाने वाले करों के बारे में सुझाव दिया कि भूमि एवं भवनों पर कर, सड़कों पर चलने वाले वाहनों पर कर, पशुओं एवं नौकाओं पर कर, संपत्ति के हस्तांतरण पर कर, आदि को स्थानीय सरकार का आय का साधन बनाया जाए। इस आयोग के बाद बलवंत राय मेहता समिति (1958) ने भी व्यापक सुझाव दिए। समिति का मत था कि पंचायती राज के तीनों अवयवों की आय के भिन्न-भिन्न स्रोत होने चाहिए। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के आय उसकी स्थिति एवं कार्य क्षेत्र के अनुसार निर्धारित किये गए।

10.3.1 ग्राम पंचायत के आय के स्रोत

अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए पंचायतों को राजस्व के कुछ साधन दिए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं- इमारतों पर कर, प्रकाश कर, व्यवसाय कर, निजी शौचालयों पर कर, पशुओं और वाहनों पर कर तथा पंचायत क्षेत्र में बेचे गए पशुओं के पंजीकरण पर शुल्क आदि। ये कर अनिवार्य हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत जिला परिषद् की पूर्व स्वीकृति से कुछ अन्य कर भी लगा सकती है। बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र में पंचायतों को भू-राजस्व वसूल करने का अधिकार दे दिया गया है। जम्मू-काश्मीर, तमिलनाडु, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में सरकार की ओर से पंचायत को भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत भाग अनुदान के रूप में दिया जाता है। ग्राम पंचायत के आय के स्रोत में सम्मिलित हैं: भू-राजस्व की धनराशि के अनुसार 25 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक पंचायत कर, प्रान्तीय सरकार अथवा स्थानीय अधिकारियों द्वारा अनुदान, मनोरंजन कर, गाँव के मेले, बाजारों आदि पर कर, पशुओं तथा वाहनों आदि पर कर, मछली तालाब से प्राप्त आय, नालियों, सड़कों की सफाई तथा रोशनी के लिए कर, कूड़ा-करकट तथा मृत पशुओं की बिक्री से आय, चूल्हा कर, व्यापार तथा रोजगार कर, सम्पत्ति के क्रय-विक्रय पर कर, पशुओं का रजिस्ट्रेशन फीस, दुध उत्पादन कर आदि।

प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक ग्राम कोष होता है, जिसे ग्राम पंचायत निधिकोष कहा जाता है। ग्राम पंचायत के वार्षिक आय-व्यय का लेखा-जोखा एवं अनुमान की सीमा के अन्दर ग्राम सभा या ग्राम पंचायत या उसके किसी समिति के कर्तव्यों का पालन करने के लिए धन खर्च किया जाता है। सम्बन्धित खातों का संचालन ग्राम प्रधान व ग्राम पंचायत विकास अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर से किया जाता है। मोटे तौर पर ग्राम पंचायत की आय के निम्नलिखित साधन हैं-

1. भारत सरकार से प्राप्त अंशदान, अनुदान या ऋण अथवा अन्य प्रकार की निधियाँ।
2. राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त चल एवं अचल सपंत्ति से प्राप्त आय।
3. भू-राजस्व एवं सेस से प्राप्त राशियाँ।
4. राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त अंशदान, अनुदान या ऋण सबंधी अन्य आय।
5. राज्य सरकार की अनुमति से किसी निगम, निकाय, कम्पनी या व्यक्ति से प्राप्त अनुदान या ऋण।
6. दान के रूप में प्राप्त राशियाँ या अंशदान।
7. सरकार द्वारा निर्धारित अन्य स्रोत।

10.3.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत

पंचायत समिति की आय के निम्नलिखित साधन हैं-

1. जिला परिषद् से प्राप्त स्थानीय सेस, भूराजस्व का अंश और अन्य रकम।
2. कर, चुंगी, अधिभार और फीस से प्राप्त आय।
3. सार्वजनिक घाटों, मेलों, हाटों तथा ऐसे ही अन्य स्रोतों से आने वाली आय।
4. वैसे अंशदान या दान, जो जिला परिषदों, ग्राम पंचायतों, अधिसूचित क्षेत्र समितियों, नगरपालिकाओं या न्यासों एवं संस्थाओं से प्राप्त हो।
5. भारत सरकार और राज्य सरकार से प्राप्त अंशदान या अनुदान या ऋण सहित अन्य प्रकार की निधियाँ।
6. अन्य संस्थाओं से प्राप्त ऋण आदि।

यद्यपि पंचायत समिति जिन करों को लगा सकती है, उनकी संख्या अपेक्षाकृत बड़ी है, किन्तु उससे आय कम होती है।ये आय के ऐसे साधन हैं जिनमे सामान्यतः वृद्धि नहीं होती। अधिक लाभकारी कर केन्द्र और राज्य सरकारों के हाथ में होते हैं। यही नहीं, पंचायत समितियां स्थानीय समाज के विरोध की आशंका के कारण भी कर लगाने से बचती रही हैं।

सामान्य तौर पर पंचायत समिति को सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने तथा निपटारा करने और संविदा करने की शक्ति होती है, परन्तु अचल संपति के निपटान के सभी मामले में पंचायत समिति सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करेगी। निर्मित समस्त सड़के भवन अथवा अन्य निर्माण कार्य जो पंचायत समिति द्वारा उसके निधियों से किया गया हो उसमें निहित होंगें। पंचायत समिति की अधिकारिता में अवस्थित किसी भी सार्वजनिक संपत्ति को सरकार उसे आवंटित कर सकेगी और तत्पश्चात ऐसी सम्पति पंचायत समिति में निहित हो जायगी और उसके नियंत्रण में आ जायगी। जहाँ तक पंचायत समिति को इस अधिनियम के किसी प्रयोजन को पूरा करने के लिये किसी भूमि की आवश्यकता है, वहाँ उक्त भूमि में हित रखने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों से बातचीत कर सकता है और किसी समझौता पर पहुँचने में असफल होता है तो वह भूमि के अर्जन के लिए जिलाधिकारी के पास आवेदन कर सकता है और अगर जिलाधिकारी को सामाधान हो जाय कि भूमि का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये आवश्यक है तो वह भू-अर्जन अधिनियम, 1894 (अधिनियम 1, 1894) के प्रावधानों के अधीन भूमि के अर्जन के लिये कार्रवाई करेगा और ऐसी भूमि अधिग्रहण के वाद पंचायत समिति में निहीत हो जायगी।

प्रत्येक पंचायत समिति में पंचायत समिति के नाम से एक पंचायत समिति निधि का गठन किया जाएगा और जमा खाते में निम्नलिखित प्रकार की राशि जमा की जायगी-

- केन्द्र एवं राज्य सरकार, जिला परिषद एवं स्थानीय प्राधिकरण द्वारा दिये गये अंशदान या अनुदान।
- केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत ऋण यदि कोई हो अथवा पंचायत समिति द्वारा अपनी सम्पति से उगाही राशि।
- अपने द्वारा उगाहे गये पथ कर, उपशुल्क और शुल्क आदि।
- पंचायत समिति में निहित या उसके द्वारा निर्मित या इसके नियंत्रण और प्रबन्ध न के अधीन किसी विद्यालय अस्पताल,औषधालय, भवन, संस्थान अथवा किसी निर्माण की बावत हुई सभी प्राप्तियाँ।
- उपहार या अंशदान के रूप में प्राप्त सभी रकम और पंचायत समिति के पक्ष में किसी भी न्यास धर्मदाय से प्राप्त सभी आय।
- जुर्माना तथा अर्थदण्ड से वसूले गये राशि।
- पंचायत समिति द्वारा प्राप्त अन्य सभी राशियाँ।

प्रत्येक पंचायत समिति कुछ ऐसी रकम को अलग रखेगी और उसे प्रति वर्ष अपने प्रशासनिक कार्यों पर खर्च करने के साथ साथ अपने पदाधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भता, भविष्य निधि तथा उपादान को भुगतान के लिये अपेक्षित खर्च को पूरा करने में करेगी। प्रत्येक पंचायत समिति को यह शक्ति होगी कि वह अधिनियम के प्रयोजनो को कार्यान्यवित करने हेतु यथोचित रकम खर्च करेगी। पंचायत समिति का निधि पंचायत समिति में निहित होगा और कोष के खाता में जमा राशि ऐसी अभिरक्षा में रखी जायगी या उनका निवेश इस प्रकार किया जायगा जैसा कि राज्य सरकार समय समय पर निदेश दें। पंचायत समिति की निधि से भुगतान के लिये सभी आदेशों और चेको पर कार्यपालक पदाधिकारी का हस्ताक्षर होगा।

पंचायत समिति वाहनों के रजिस्ट्रेशन पर (जो किसी अन्य अधिनियम के अधीन निबंधित न हो), तीर्थ स्थलों, हाटों, मेलों में सफाई व्यवस्था के लिए शुल्क, जल शुल्क, विद्युत शुल्क तथा संपत्ति कर (उक्त सभी प्रकार की आवासीय एवं वाणिज्यिक संपत्तियों पर कर) आदि वसूल कर सकेगी। सरकार द्वारा नियमावली के गठन के बाद एवं अधिसूचित शुल्क/फीस के आधार पर शुल्क वसूल कर सकेगी। पंचायत समिति विशिष्ट योजनाओं के निष्पादन हेतु राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण ले सकेगी।

प्रत्येक पंचायत समिति प्रत्येक वर्ष ऐसे समय और उस रीति से जैसे कि विहित की जाय, अगले वित्तीय वर्ष के लिये अपनी प्राप्तियों एवं वितरणों का बजट तैयार करेगी तथा बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पारित करायगी और वैसी बैठक के लिए कुल सदस्यों के 50 प्रतिशत से कम में कोरम नहीं होगी।

सामान्य तौर पर पंचायत समिति के आय के स्रोत निम्नलिखित हैं- स्थानीय कर, मण्डियों से प्राप्त फीसें, राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान एवं ऋण, दान तथा चन्दे, जिला परिषद अथवा उसके द्वारा उपलब्ध तदर्थ अनुदान, क्षेत्र पंचायत द्वारा लगाए गए करों व शुल्कों को प्राप्त आय, घाटों, मेलों आदि के पट्टों से प्राप्त आय, सरकारी अनुदान और सरकार द्वारा क्षेत्र पंचायतों को जो परियोजनाएँ संचालित करने के लिए देती हैं, उसकी धनराशि।

10.3.3 जिला पंचायत के आय के स्रोत

जिला परिषद् को उपलब्ध होनेवाले वित्तीय साधनों के सम्बन्ध में राज्यों के बीच सबसे अन्तर देखने को मिलता है। सामान्य तौर पर आय के स्रोत निम्न हैं-

1. केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा अनुदान,
2. अखिल भारतीय संस्थाओं से प्राप्त अनुदान,
3. राजस्व का निश्चित हिस्सा,
4. जिला पंचायत द्वारा क्षेत्र पंचायतों से की गई वसूलियाँ,

5. जिला पंचायत द्वारा प्रशासनिक ट्रस्टों से आय,
6. जिला पंचायत द्वारा तथा लोगों द्वारा दिया गया अनुदान,
7. जिला पंचायत सरकारी ऋण तथा सरकार की पूर्व अनुमति से गैर-सरकारी ऋण भी ले सकती है।

जिला परिषद् जिला निधि के माध्यम से अपने प्राप्त धनराशि का उपयोग करता है। राज्य और केन्द्र सरकार तथा दूसरे स्रोतों से प्राप्त धनराशि जिला निधि में जमा की जाती है, जिसका संचालन अध्यक्ष एवं मुख्य विकास अधिकारी के संयुक्त हस्ताक्षर से होता है। जिला परिषद् नकद या वास्तु के रूप में ऐसे अंशदान भी ले सकती है जो कोई व्यक्ति किसी सार्वजानिक कार्य के लिए जिला परिषद् को दे।

10.4 पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

वर्तमान में विकास और जन कल्याण से सम्बन्धित अनेक केन्द्र एवं राज्य प्रायोजित योजनाएं एवं कार्यक्रम ग्राम पंचायत में क्रियान्वित हो रही है। जिसके लिए व्यय का प्रावधान केन्द्र एवं राज्य सरकार अपने बजट में करती है। केन्द्र एवं राज्य सरकार की तरह ही पंचायती संस्थाओं को भी अपना बजट बनाने का प्रावधान है।

बजट एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा अगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटाने-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है। इस प्रकार बजट वह अस्त्र है, जिसके द्वारा सरकार या संस्थाओं के कार्य पर नियंत्रण रखा जा सकता है। पंचायतों के लिए बजट उसके एक वित्तीय वर्ष के कार्यक्रम का दस्तावेज होता है। पंचायत का कोई भी व्यय बिना बजट के अनुमोदन के नहीं हो सकता है। इस प्रकार बजट पंचायतों के लिए एक ऐसा प्रस्ताव होता है जिसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय तथा वित्त उपलब्ध कराने वाले साधनों की विवरणी होती है। अतएव पंचायत के सभी कार्यों एवं प्राप्तियों का आकलन बजट में किया जाता है।

प्रत्येक पंचायत को प्रभावशाली रूप में काम करने तथा अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधन की जरूरत होती है। पंचायत को उन आवश्यक संसाधन को एकत्र करने के लिए एक प्रक्रिया के माध्यम से इजाजत लेती है और वह प्रक्रिया बजट होता है। इस प्रकार संसाधन को जुटाने एवं अपने व्ययों को पूरा करने के लिए पंचायत को बजट तैयार करना आवश्यक होता है। बजट से पंचायत को निम्नवत लाभ होता है-

- पंचायतों को आर्थिक नीतियों को पालन करने में सहूलियत होती है।
- पंचायत में संभावित आर्थिक विकास का अनुमान भी बजट से लगाया जासकता है।
- विगत वर्ष में प्राप्त आय एवं किए गए व्यय का वास्तविक स्थिति का पता चलता है।
- आगामी वर्ष में प्राप्त होने वाले आय एवं होने वाले व्यय का अनुमान लग जाता है।
- पंचायत में कार्यान्वित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रगति मालूम होता है।
- कर लगाने में सहूलियत होती है।
- पंचायत को अपना कार्य करने में सहयोग मिलता है।
- पंचायतों को अपना राजस्व जुटाने में आसानी हो जाता है।
- आय-व्यय घटाने एवं बढ़ाने में सहयोग मिलता है तथा
- उनकी आर्थिक स्थिति आसानी से मालूम हो जाती है।

इस प्रकार बजट से पंचायत को आर्थिक विकास की प्रगति को आसानी से देखा जा सकता है।

10.4.1 बजट के घटक या अवयव

सामान्यत: किसी भी बजट के दो मुख्य घटक होते है, पहला प्राप्तियां और दूसरा व्यय। पंचायत द्वारा तैयार किए जाने वाले बजट के ये भी मुख्य घटक होते हैं-

1. **प्राप्तियां-** यह बजट का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले आय को रखा जाता है। उल्लेखनीय है कि पंचायतों को वर्तमान में अपना कोई आय का स्रोत नहीं है, उन्हें केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा फंड प्राप्त हो रहे है। वर्तमान में पंचायत को चार स्रोतों से वित्तीय सहायता प्राप्त हो रहे हैं- पिछड़ा क्षेत्र अनुदान फंड(बीआरजीएफ), वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग तथा मनरेगा। बजट के प्राप्तियां पक्ष को दो भागों में विभाजित किया जाता है: एक राजस्व प्राप्तियां एवं दूसरा पूँजीगत प्राप्तियां।
   - **राजस्व प्राप्तियां-** इसमें वैसे आय के स्रोत को शामिल किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में कोई भुगतान नहीं करना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि राजस्व प्राप्तियों से पंचायत के देयताओं में न तो वृद्धि होती है न ही परिसंपत्तियों में कमी आती है। इसी कारण राजस्व प्राप्तियों को आर्थिक क्रियाओं का प्रतिफल माना जाता है। इसके भी दो भाग होते है। पहला कर आय तथा दूसरा गैर कर आय। कर आय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से प्राप्त आय का प्रदर्शित किया जाता है, जबकि गैर कर आय में सेवाओं के बदले में लगाए गए कर एवं शुल्क को सम्मिलित किया जाता है। 73वें संविधान संशोधन के तहत ग्राम पंचायत को कर लगाने की शक्तियां दी गई है। पंचायत को होल्डिंग कर, संपत्ति कर (सभी आवासीय एवं वाणिज्यिक संपत्तियों पर), व्यावसायों एवं व्यापारों पर कर, जल कर, प्रकाश शुल्क, स्वच्छता शुल्क आदि लगाने एवं वसूलने की शक्तियां दी गयी है, लेकिन यह भी अधिनियमित किया गया है कि कर का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में पंचायत को टैक्स लगाने का अधिकार नहीं मिल पाया है। इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा नियमावली नहीं बनाई गई है, जिस कारण कर लगाने का अधिकार व्यावहारिक रूप धारण नहीं कर सका है।
   - **पूँजीगत प्राप्तियां-** इसमें वैसे प्राप्तियों को शामिल किया जाता है, जिससे पंचायत की देयताओं में बढ़ोतरी होती है तथा परिसंपत्तियों में कमी आती है, जैसे ऋण की वापसी, निवेश से प्राप्त आय आदि। उल्लेखनीय है कि ग्राम पंचायत हाट, बाजार, मेला आदि से राजस्व की उगाही कर सकते हैं, लेकिन अभी यह प्रावधान व्यावहारिक रूप में नहीं है।
2. **व्यय-** बजट का दूसरा प्रमुख पक्ष व्यय होता है। इसमें वैसे सभी व्ययों को शामिल किया जाता है, जो पंचायत द्वारा एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं सेवाओं पर व्यय किया जाता है। इसे लोक व्यय भी कहा जाता है। बजट के व्यय पक्ष को दो भागों में बांटा जाता है। पहला राजस्व व्यय एवं दूसरा पूँजीगत व्यय।

संविधान के अनुच्छेद- 40 में भी पंचायतों के शक्तियां एवं अधिकार का उल्लेख है तथा इसके लिए राज्य को निर्देशित किया गया है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाएंगे। 73वें संविधान संशोधन(24 अप्रैल 1993) द्वारा पंचायतों को अधिकाधिक सशक्त बनाने के लिए संविधान में प्रावधान किया गया है। इस संशोधन के तहत पंचायतों को 29 कार्य सौपें गए हैं तथा उसे संविधान के अनुच्छेद- 243(छ) में अंकित किया गया है। उल्लेखनीय है कि उन सभी कार्यों को संविधान के 11वीं अनुसूची में रखा गया है। पंचायतों को सौपें गए 29 कार्यों में से वार्षिक बजट बनाना एक मुख्य कार्य है। ग्राम पंचायत द्वारा बनाए जाने वाले वार्षिक बजट पर विचार-विमर्श कर

सिफारिश करना ग्राम सभा का कार्य निर्धारित किया गया है। ग्राम सभा में वार्षिक लेखा-जोखा, वार्षिक बजट एवं गत वर्ष का विभिन्न कार्यक्रमों पर किए गए व्यय पर चर्चा ग्राम सभा में करने का प्रावधान है।

10.4.2 बजट के प्रकार

बजट निम्नवत प्रकार के हो सकते हैं-

1. **पारंपरिक बजट-** बजट के प्रारंभिक स्वरूप को पारंपरिक बजट कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी व्ययों पर नियंत्रण करना होता है। विकास का स्वरूप क्या हो इसका उल्लेख नहीं रहता है। इस कारण वर्तमान इस प्रकार के बजट प्रचलन में नहीं है। पंचायतों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे पंचायत को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव पंचायतों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।
2. **निष्पादन बजट-** जब कार्य या परिणाम या लक्ष्यों को प्राप्ति के आधार पर बजट बनाया जाता है, तो उसे निष्पादन बजट कहा जाता है। इसमें आय-व्यय के लेखा-जोखा होने के साथ कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है। उल्लेखनीय है कि प्रथम हूपर आयोग ने सर्वप्रथम 1949 में इस प्रकार के बजट की अनुशंसा की थी।
3. **पूंजी बजट-** इस प्रकार के बजट में केवल पूँजीगत प्राप्तियों एवं व्ययों को ही शामिल किया जाता है।
4. **परिणाम बजट-** इस प्रकार के बजट में भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण गुणवत्ता को ध्यान में रख कर किया जाता है। कार्य निष्पादन हेतु निर्धारित राशि को सही समय, सही गुणवत्ता तथा सही मात्रा में उपलब्ध कराने की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है, उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट सबसे पहले 2005 में बना था।
5. **शून्य आधारित बजट-** ऐसे बजट में प्रस्तावित व्ययों के प्रत्येक मदों को एक नई मद मानकर प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात प्रत्येक मद को शून्य मान कर उसे मूल्यांकित किया जाता है तथा सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन या समीक्षा गहनता से की जाती है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार केबजट की शुरुआत सर्वप्रथम 1986-87 के बजट से किया गया था।
6. **जेंडर बजट-** जब बजट को लिंग विशेष के आधार पर तैयार किया जाता है, तो उसे जेंडर बजट कहा जाता है। सामान्यत: इस प्रकार के बजट में महिलाओं के लिए अलग से रणनीति तैयार किया जाता है। उनके विकास, कल्याण और सशक्तीकरण से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए एक निश्चित धन राशि की व्यवस्था की जाती है।

   पंचायतों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे पंचायत को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव पंचायतों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।

बजट का दृष्टिकोण स्पष्ट कर देना चाहिए त्रकर लगाने और वसूली के लिए नीति निर्धारित होनी चाहिए। हालांकि अभी कर का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाता है। पंचायत द्वारा निर्मित किए जाने वाले बजट का प्रभाव निश्चित रूप से पंचायत के आर्थिक विकास एवं उनके आर्थिक क्रियाओं पर पड़ता है। विकासात्मक कार्यों पर किए गए व्यय आम जनता को प्रभावित करती है। पंचायत के बजट से सरकार को अपनी आर्थिक नीतियों को बनाने में मदद मिलेगी। सरकार पंचायत बजट के आधार पर अर्थव्यवस्था की दिशा और दशा सुनिश्चित कर सकती है।

पंचायतों में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने तथा त्वरित गति से विकास को भी बजट प्रभावित करता है। इससे पंचायतों में सामाजिक-आर्थिक स्थायित्व आएगा।

पंचायत समिति या क्षेत्र पंचायत का बजट प्रस्ताव उसकी समितियों द्वारा आपस में विचार-विमर्श करके तैयार किया जाता है। इस बजट को एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत जिला को भेजा जाता है, जिस पर जिला नियोजन समिति अंतिम फैसला लेती है। दूसरी ओर जिला परिषद् या जिला पंचायत वित्त समिति के परामर्श से बजट बनाती है। अध्यक्ष के माध्यम से प्रस्तुत इस बजट पर पूरी परिषद् व्यापक विचार-विमर्श के बाद अंतिम निर्णय लेती है।

10.5 राज्य वित्त आयोग की भूमिका

पंचायती राज संस्थाओं के पक्ष में वित्तीय स्रोतों के निष्पक्ष वितरण एवं राज्य विधानमंडल अथवा सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में किसी स्वेच्छागत कार्यवाही को रोकने के लिए 73वां संशोधन राज्य स्तर पर एक वित्त आयोग की स्थापना की व्यवस्था करता है। राज्य वित्त आयोग देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद- 243 (आई) के दिशा निर्देशों के अनुसार स्थापित किए गए हैं। राज्य में वित्त आयोग में आमतौर पर अध्यक्ष,सदस्य सचिव तथा अन्य सदस्य शामिल हैं। राज्य का राज्यपाल 73वें संशोधन प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक 05 वर्ष के अवसान पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा। वित्त आयोग निम्नलिखित विषय में राज्यपाल की अपनी सिफारिश करेगा-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों की प्रदान की जा सकें,
2. राज्य की संचित निधि में पंचायतों के लिए सहायता अनुदान,
3. पंचायतों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।

राज्य वित्त आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित वित्त आयोग से अनुदान प्राप्त होता है। राज्य वित्त आयोग पंचायतीराज और स्थानीय निकाय संस्थाओं के लिये वित्तीय प्रबन्ध एवं आवंटित राशि के बंटवारे के लिये सिफारिश देता है। आयोग पंचायतीराज एवं नगर निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा कर इसमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देता है । साथ ही पंचायत व नगर निकाय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कर, ड्यूटी, राजस्व आदि के संग्रहण के लिये भी सिफारिशें देता है। यह वित्तीय मुद्दों के सम्बन्ध में राज्य और केंद्रीय सरकारों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।

10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण

ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत पंचायती राज संस्थाओं को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है । इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि पंचायतों के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। पंचायतों को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पंचायतों कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त है तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार क्योंकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को

करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पूरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलम्बी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 73वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

10.7 बजट निर्माण में पंचायत के समक्ष चुनौतियां

बजट निर्माण के समय पंचायत के सामने अनेक चुनौतियां आती हैं, जैसे-

1. ग्राम पंचायत को अपना बजट बनाने, उस पर चर्चा करने तथा उसे अनुमोदित करने के लिए प्रावधान है। वे अपना आय-व्यय का वाक आकलन कर सकती है। लेकिन पंचायत को बजट निर्माण के समक्ष कई चुनौतियां है, जिसके कारण यह व्यावहारिक रूप में अमल में नहीं है।
2. पंचायतों को कोई अपना आय का स्रोत नहीं है।
3. टैक्स लगाने एवं वसूलने केसम्बन्ध में नियमावली नहीं बनने से उन्हें इस सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त नहीं हो पाये हैं।
4. पंचायतों में राजस्व उगाही का साधन यथा हाट, बाजार, मेला वाहन स्टैंड आदि सीमित है, जिसके कारण आय को वे नहीं बढ़ा सकते हैं।

पंचायतों के पास वैसे कर्मियों की कमी है, जिनसे बजट का निर्माण कराया जा सके। हालांकि सरकार इस दिशा में प्रयासरत है। बजट की तैयारी ऐसे करें वर्तमान में पंचायतों द्वारा वार्षिक कार्य योजना तैयार किया जाता है तथा उसे ग्राम सभा से अनुमोदित कराया जाता है। अनुमोदित वार्षिक कार्य योजना के अनुरूप ही पंचायतों द्वारा कार्यों को क्रियान्वित किया जाता है। पंचायतों द्वारा बनाया जाए, यह व्यवहार में नहीं है। फिर भी सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में नियमावलियां बनाई जाती है, तो पंचायतों को वार्षिक बजट बनाते समय निम्नवत को ध्यान में रखना चाहिए। बजट का निर्माण निर्धारित तिथि को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि बजट प्रत्येक वर्ष 15 फरवरी तक ग्राम सभा से अनुमोदित हो जानी चाहिए। गत वर्ष की प्राप्तियों (राजस्व एवं पूंजीगत) एवं व्ययों (राजस्व एवं पूंजीगत) का वास्तविक आंकड़े को संकलित कर लेना चाहिए। चूंकि बजट में आय और व्यय बजट वर्ष के लिए अनुमानित होते हैं। अतएव बजट तैयार करने से पूर्व ही वर्षवार आय-व्यय को तैयार कर लेना चाहिए। इसके लिए विगत वर्षों के आंकड़ों को ध्यान में रखना चाहिए। गत वर्ष के अंकेक्षण प्रतिवेदनों में अंकित आंकड़ों को दृष्टिगत रखना चाहिए, क्योंकि अंकेक्षण प्रतिवेदन पंचायत के वित्तीय स्थिति को प्रकट करता है। वर्षवार सभी लेन-देन की विवरणी बना लेनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. पंचायतों का 'सुदृढ़ वित्तीय आधार' संविधान के किस अनुच्छेद द्वारा राज्यों पर लागू की गयी संवैधानिक बाध्यता है?
2. स्थानीय वित्त जाँच समिति की स्थापना किस वर्ष हुई?
3. प्रत्येक ग्राम पंचायत के लिए एक ग्राम कोष होता है, जिसे कहा जाता है?
4. सामान्यत: किसी भी बजट के कितने मुख्य घटक होते हैं?
5. राज्य वित्त आयोग का गठन कौन करता है?

10.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि पंचायती राज व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत पंचायती राज संस्थाओं को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए।

10.9 शब्दावली

बजट- एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा आगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है।

प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण- ऐसी शासन व्यवस्था जिसमे जनता को शासन कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने के अवसर हो, शक्ति का हस्तांतरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो तथा स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयां अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

सामाजिक नीति- सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन कीदिशा में एक स्थायी एवं सुसंगत दृष्टिकोण।

10. 10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद 243- I द्वारा, **2.** 1951 में, **3.** ग्राम पंचायत निधिकोष, **4.** दो मुख्य घटक, **5.** राज्यपाल

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. अमरेन्द्र कुमार तिवारी, 2003, फाइनेंसियल मैनेजमेंट ऑफ पंचायती राज, मोहित पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005 भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
5. डी0डी0 पंत, 2000, भारत में ग्रामीण विकास कालेज बुक डिपो, जयपुर।
6. बामेश्वर सिंह, 2000 ,भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।

10.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नयी दिल्ली।
2. के0के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।
2. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के आय के स्रोत क्या हैं?
3. पंचायती राज संस्थाओं की बजट प्रक्रिया का मूल्यांकन कीजिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण का वर्णन कीजिए।
5. पंचायती राज संस्थाओं के आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण कीजिए।
6. राज्य वित्त आयोग की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 11 ग्रामीण स्थानीय शासन का प्रशासनिक ढ़ाँचा

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसका ढ़ाँचा- एक परिचय
    11.2.1 ग्राम पंचायत
    11.2.2 पंचायत समिति
    11.2.3 जिला परिषद
    11.2.4 प्रशासनिक ढ़ाँचा
11.3 ग्राम पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा
11.4 पंचायत समिति का प्रशासनिक ढ़ाँचा
11.5 जिला परिषद् का प्रशासनिक ढ़ाँचा
11.6 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध
11.7 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में लोगों की राजनीतिक सहभागिता एवं स्थानीय विकास हेतु प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्तर पर शासन के लिये स्थानीय लोगों का संगठन या निकाय बनाया जाता है और स्थानीय स्तर की विकास योजनायें तथा अन्य समस्याओं तथा जन मांगों को इसी स्थानीय शासन निकाय द्वारा पूरा किया जाता है। भारत में तीन स्तर का शासन अपनाया गया है- केन्द्रीय स्तर, राज्य स्तर तथा स्थानीय स्तर। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्रकी रीढ़ हैं। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। यदि स्थानीय संस्थाएं लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं तो स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना तथा समझ का विकास देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वरूप को मजबूत बनाता है। लोकतंत्र का सैद्धांतिक अर्थ प्रायः जनता के शासन से लगाया जाता है लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए।

प्रत्येक समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कोई न कोई निकाय या संस्था होती है, चाहे उसे नगर-राज्य कहें अथवा राष्ट्र-राज्य। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों नहों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की

आवश्यकता होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन समस्त समाहित शक्तियों का उपयोग कर लोक नीतियों को क्रियान्वित करता है।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद का प्रशासनिक ढ़ाँचा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध तथा ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान पर भी चर्चा से पाठकों को लाभ होगा।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे के बारे में जान सकेंगे।
- साथ ही आप स्थानीय स्तर पर पंचायती राज की प्रशासनिक संरचना के बारे में जान सकेंगे।
- आपको विविध स्तर पर सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियों एवं समाधान से भी आप अवगत होंगे।

11.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसका ढ़ाँचा- एक परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह सदैव समाज में रहता है। प्रत्येक समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिये कोई न कोई निकाय या संस्था होती है, चाहे उसे नगर-राज्य कहें अथवा राष्ट्र-राज्य। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों नहों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। इसलिये प्रशासन आवश्यक हो जाता है। डब्ल्यू0 बी0 डॉनहम ने विश्वास पूर्वक बताया कि "यदि हमारी सभ्यता असफल होगी तो यह मुख्यतः प्रशासन की असफलता के कारण होगा।"

ज्यों-ज्यों राज्य के स्वरूप और गतिविधियों का विस्तार होता गया है, त्यों-त्यों प्रशासन का महत्त्व बढ़ता गया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि हम प्रशासन की गोद में पैदा होते हैं, पलते है, बड़े होते हैं, मित्रता करते एवं टकराते हैं और मर जाते हैं। आज की बढ़ती हुई जटिलताओं का सामना करने में व्यक्ति एवं समुदाय, अपनी सीमित क्षमताओं और साधनों के कारण स्वयं को असमर्थ पाते हैं। स्थिति यह है कि प्रशासन के अभाव में हमारा अपना जीवन, मृत्यु के समान भयावह और टूटे तारे के समान असहाय लगता है। हम उसे अपने वर्तमान का ही सहारा नहीं समझते, वरन् एक नयी सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विश्व के निर्माण का आधार मानते हैं। प्रशासन की आवश्यकता सभी निजी और सार्वजनिक संगठनों को होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। उसे प्रत्येक जनसमुदाय की सामान्य इच्छाओं की पूर्ति में सलग्न व्यवस्था माना जा सकता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की आवश्यकता होती है, चाहे वह लोकतंत्रात्मक हो अथवा समाजवादी या तानाशाही।

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है। लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यर्थाथ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में

भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है।

वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस आधारभूत अवधारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन सम्बन्धी कार्यों में हाथ बटाऐं तथा स्वयं पर राज्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। देश के राजनीतिक भविष्य एवं भावी राजनीतिक चाल का निर्धारण संघीय व्यवस्था में बैठे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ की अपेक्षा, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान पंचायती राज संस्थाएं ही करती हैं। पंचायती राज की शुरूआत से भारतीय राजनीति का व्याकरण बदलने लगा है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। भारत की विविधता और कार्य की व्यापकता के चलते, लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण एक स्वागत योग्य कदम है। इसने देश में एक मूल क्रांति का सूत्रपात किया है। संविधान के73वें और 74वें संशोधनों से इसे संवैधानिक दर्जा मिला और ऐतिहासिक रूप से समाज के वंचित और शासन प्रणाली से अलग-थलग पड़े वर्गों को शामिल करने का ढ़ाँचा उपलब्ध हुआ। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पंचायतों के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसे संसद के दोनों सदनों से पारित होने के बाद 20 अप्रैल 1993 को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और 24 अप्रैल 1993 से यह सम्पूर्ण देश में प्रभावी हुआ। पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में नया भाग- 09 शामिल किया गया और और ग्यारहवीं अनुसूची में उनके अधिकारों का उल्लेख किया गया।

भारतीय संघवाद अपने आप में विशिष्ट इस मामले में है कि यहाँ शक्तियों का संवैधानिक बंटवारा तीन स्तरों तक किया गया है- केन्द्र, राज्य और पंचायत। ग्रामीण पंचायतों का स्वप्न गांधीजी के सर्वोदय के आदर्श का व्यावहारिक रूप है, क्योंकि पंचायतों के अभाव में न तो लोगों का विकास हो सकता है और ना ही ग्रामीण विकास सम्भव है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत में पंचायतों को शासन की धुरी मानते थेऔर ग्रामीण विकास के लिए पंचायतों की भूमिका को अपरिहार्य मानते थे। अतः संविधान निर्माण के समय राष्ट्रपिता की भावनाओं और विचारों का आदर करते हुए, संविधान के भाग चार में नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में पंचायती राज संस्थाओं को स्थान दिया गया। संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए संवैधानिक प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में बहु-स्तरीय संघवाद का विकास हुआ।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमश ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। वास्तव में त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौंपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारम्भ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से सम्बन्धित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है। संविधान के भाग-09 के अंतर्गत अनुच्छेद 243(ख) के द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर एवं जिला स्तर पर (क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद) पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जाएगा; किंतु, 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

11.2.1 ग्राम पंचायत

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होती है, जिसका चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाता है। ग्राम सभा में एक गांव अथवा छोटे-छोटे कई गांवों के समस्त वयस्क नागरिक(18 वर्ष से ऊपर के) सम्मिलित होते हैं, जो एकत्र होकर अथवा ग्राम सभा का क्षेत्र अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों में विभक्त होने की स्थिति में अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित तिथि को मतदान करते हैं। पंचायत के सभी सदस्यों एवं सरपंच या ग्राम प्रधान जैसी स्थिति हो, का चुनाव ग्राम सभा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

11.2.2 पंचायत समिति

पंचायती राज व्यवस्था में मध्य के अर्थात् प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति या क्षेत्र पंचायत होती है। पंचायत समिति का संगठन सभी राज्यों में एक समान नहीं है। इसके सदस्यों में सम्मिलित हैं- विधानसभा के सदस्य; लोकसभा के सदस्य; प्रखण्डों के समस्त प्रधानों, सहकारी समितियों एवं छोटी नगरपालिकाओं तथा अधुसुचित क्षेत्रों के प्रतिनिधि; प्रखण्ड से निर्वाचित अथवा प्रखण्ड में निवास करने वाले विधानपरिषद एवं राज्यसभा के सदस्य; प्रखण्ड से निर्वाचित जिला परिषद के समस्त सदस्य; विकास एवं आयोजन में रुचि रखने वाले दो सहयोजित सदस्य तथा महिलाओं एवं अनुसूचित जातियों के कुछ सहयोजित प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। विकास अधिकारी इसका सचिव होता है। इसका अध्यक्ष निर्वाचित होता है तथा इसकी सहायतार्थ उप-प्रधान भी चुने जाते हैं।

इस सम्पूर्ण योजना में पंचायत समिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। प्रखंड की समस्त ग्राम पंचायतों के मध्य सामंजस्य रखना एवं समस्त विकास कार्यों को चलाना इसीका कार्य है। ऊपर से प्राप्त होने वाले अनुदान का ग्राम पंचायतों के मध्य विभाजन पंचायत समिति द्वारा ही किया जाता है।

11.2.3 जिला परिषद

पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में जिला परिषद शीर्षस्थ संस्था है। इसका संगठन भी पंचायत समिति के नमूने पर ही किया गया है। इसके सदस्यों का निर्वाचन भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिले के समस्त विधायक, संसद सदस्य, राज्य विधानपरिषद के सदस्य एवं कुछ महिलाएं तथा अनुसूचित जातियों के सहयोजित सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होते हैं। प्रत्येक जिला परिषद में एक निर्वाचित अध्यक्ष होता है, जिसे जिला प्रमुख कहा जाता है। इसके अतिरिक्त एक उपाध्यक्ष भी होता है, जिसे उप-जिला प्रमुख कहते हैं।

विभिन्न राज्यों में स्थानीय एवं आवश्यकता के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के संगठन एवं कार्यों मेंअन्तर होते हुए भी निम्नलिखित पांच सिद्धान्त समान रूप से स्वीकृत किए गए हैं-

1. ग्राम से जिले तक पंचायती राज का संगठन त्रिस्तरीय रहना तथा उसकी समस्त संस्थाओं के मध्य औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।
2. अधिकारों एवं दायित्वों का हस्तांतरण वास्तविक रूप में होना चाहिए।
3. नई संस्थाओं द्वारा अपने दायित्व भली-भाँति वहन कर सकने हेतु अपने पास पर्याप्त मात्रा में साधन उपलब्ध होने चाहिए।
4. प्रत्येक स्तर का विकास कार्यक्रम उसी प्रकार की संस्था द्वारा कार्यान्वित होना चाहिए।
5. सम्पूर्ण अवस्था ऐसी होनी चाहिए की इन संस्थाओं को भविष्य में और अधिक दायित्व एवं अधिकार सहज ही सौंपे जा सकेंगे।

नियामकीय कार्यों (राजस्व एवं कानून व्यवस्था सम्बन्धी) तथा विकास कार्यों को अलग-अलग करने का प्रयास किया गया है। जहाँ एक और जिले में नियामकीय कार्यों का दायित्व जिलाधीश तथा उससे सम्बन्धित तंत्र को

सौंपा गया है। वहीं जिले में विकास कार्यों (पानी, सड़क, विद्युत, स्वच्छता इत्यादि) का दायित्व स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को सौंपे जाने का प्रयास किया गया है। सामुदायिक विकास योजना की असफलता का मूल कारण जन-सहभागिता का अभाव माना गया था। इसलिए पंचायती राज का प्रयोग किया गया तथा 73वें संविधान संशोधन से पंचायतों के प्रत्येक स्तर पर जन प्रतिनिधियों को प्राथमिकता दी गई। ग्राम पंचायत स्तर पर, ग्राम प्रधान को विकास का दायित्व सौंपा गया, जबकि ग्राम विकास अधिकारी और लेखपाल, ग्राम प्रधान की सहायता करेंगे। खंड स्तर पंचायती राज के कार्यक्रमों को लागू करने का मुख्य स्तर है। प्रत्येक जनपद कई खंडों में विभक्त होता है। 73वें संविधान संशोधन के बाद सभी स्तरों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रावधान किया गया, परंतु खंड स्तर के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होता है। इसका चुनाव खण्ड स्तर के निर्वाचित सदस्य करते हैं। खंड स्तर पर स्थानीय सांसद और विधायक भी पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में 'जिला ग्रामीण विकास एजेंसी' की भूमिका केंद्रीय है, जिसका अध्यक्ष समान्यतः जिलाधिकारी या मुख्य विकास अधिकारी होता था। परंतु पंचायती राज सम्बन्धी 73वें संविधान संशोधन के पश्चात जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के स्थान पर जिला नियोजन समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया, जिसका चेयरमैन जिला परिषद का अध्यक्ष होगा। अतः अब जनपद के विकास का मूल दायित्व जन-प्रतिनिधियों को सौंपा गया है। पंचायती राज्य व्यवस्था के तीनो स्तर पर संरचना निम्नवत होती है-

संस्था का नाम	राजनीतिक प्रतिनिधि	प्रशासनिक अधिकारी
जिला परिषद	जिला परिषद् या पंचायत प्रमुख, उप-जिला प्रमुख, जिला परिषद सदस्य	मुख्य कार्यकारी अधिकारी
पचायत समिति	प्रमुख /प्रधान, उप प्रधान एवं पचायत समिति सदस्य	खंड विकास अधिकारी
ग्राम पंचायत	ग्राम प्रधान / सरपच, उपसरपच एव वार्ड सदस्य /पंच	ग्रामसेवक/ग्राम विकास अधिकारी

11.2.4 प्रशासकीय ढ़ाँचा

भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। राज्यों में पंचायत राज विभाग से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वयन के लिये राज्य स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव , पंचायती राज इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं।

पदसोपन में यह व्यवस्था सामान्यतः निम्नवत होती है-

मंत्री, पंचायती राज
↓
प्रमुख सचिव, पंचायती राज
↓
सचिव, पंचायती राज
↓
विशेष सचिव
↓
संयुक्त सचिव
↓
उप सचिव
↓
अनु सचिव

सामान्यतः निदेशालय स्तर पर निदेशक, पंचायती राज के अधीन अपर निदेशक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, संयुक्त निदेशक, जिला पंचायत राज अधिकारी(मुख्यालय), जिला पंचायत राज अधिकारी (प्राविधिक), प्रशासनिक अधिकारी तथा प्रकाशन अधिकारी आदि के पद स्वीकृत होते हैं और यह समस्त अधिकारी निदेशक, पंचायती राज के सामान्य नियंत्रण में विभागीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। निदेशालय स्तर पर निदेशक, पंचायती राज विभागाध्यक्ष का कार्य देखते हैं और यह व्यवस्था निम्नवत होती है-

निदेशक, पंचायती राज (विभागाध्यक्ष)

↓

अपर निदेशक

↓

संयुक्त निदेशक

↓

मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी

↓

जिला पंचायत राज अधिकारी

↓

प्रशासनिक अधिकारी

↓

प्रकाशन अधिकारी

मण्डलीय उपनिदेशक(पंचायत) आवंटित मण्डल के कार्यों पर नियंत्रण एवं निरीक्षण आदि का कार्य कर रहे हैं जबकि जिला स्तर पर एक जिला पंचायत राज अधिकारी एवं प्रदेश के विकास खण्डों में एक-एक सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) कार्यरत होते हैं। उत्तर प्रदेश में जिला पंचायत राज अधिकारी के अधीन पंचायत उद्योगों के तकनीकी मार्गदर्शन एवं नियंत्रण एवं निरीक्षण के लिए सहायक जिला पंचायत राज अधिकारी (प्राविधिक) के पद स्वीकृत हैं। ग्राम पंचायतों के सचिव के रूप में तथा विकास योजनाओं का कार्य करने के लिए ग्राम पंचायत में ग्राम पंचायत विकास अधिकारी के पद नाम से कार्यरत होते हैं।

11.3 ग्राम पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

ग्राम पंचायतें पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता एवं उसकी प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन पंचायतों की सुदृढ़ता एवं शक्ति पर ही निर्भर करती है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकृति प्रदान की गई है। ग्राम पंचायतों द्वारा विविध एवं बहुमुखी कार्यों को सम्पन्न किया जाता है,

ग्राम पंचायत के कर्मचारी-

- पंचायत सचिव- पंचायत के सहायतार्थ नियुक्त किया जाता है।
- ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी- विकास के लिए पंचायतों का परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक।
- पटवारी- ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी।

यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। ग्राम पंचायत का गठन सामान्यतया निम्नवत होता है-

1. **ग्राम प्रधान या मुखिया-** ग्राम पंचायत के अंतर्गत ग्राम प्रधान या मुखिया का स्थान महत्वपूर्ण है। उसकी योग्यता तथा कार्यकुशलता पर ही ग्राम पंचायत की सफलता निर्भर करती है। ग्राम प्रधान या मुखिया ग्राम पंचायत की कार्यकारिणी समिति के चार सदस्यों को मनोनीत करता है। ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल 05 वर्ष है, परन्तु ग्राम पंचायत अविश्वास प्रस्ताव पास कर उसे पदच्युत कर सकती है। पंचायत के सभी कार्यों की देखभाल वही करता है। ग्राम प्रधान या मुखिया अपनी कार्यकारिणी समिति की सलाह से ग्राम पंचायत के अन्य कार्य भी कर सकता है। उसे ग्राम-कल्याण कार्य के लिए बड़े-बड़े सरकारी पदाधिकारियों के समक्ष पंचायत का प्रतिनिधित्व करने भी अधिकार है तथा वह ग्रामीण अफसरों के आचरण के विरुद्ध शिकायत भी कर सकता है।
2. **सरपंच-** कुछ राज्यों में एक अन्य महत्वपूर्ण पद सरपंच का होता है। ग्राम पंचायत की न्यायपालिका को ग्राम कचहरी कहते हैं जिसका प्रधान सरपंच होता है। सरपंच का निर्वाचन मुखिया या ग्राम प्रधान की तरह ही प्रत्यक्ष ढंग से होता है, सरपंच का कार्यकाल 05 वर्ष है। उसे कदाचार, अक्षमता या कर्तव्यहीनता के कारण सरकार द्वारा हटाया भी जा सकता है। अगर 2/3 पंच, सरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दें तो सरकार सरपंच को हटा सकती है। सरपंच का प्रमुख कार्य ग्राम कचहरी का सभापतित्व करना है। कचहरी के प्रत्येक तरह के मुकदमे की सुनवाई में सरपंच अवश्य रहता है। सरपंच ही मुकदमे को स्वीकार करता है तथा मुक़दमे के दोनों पक्षों और गवाहों को उपस्थित करने का प्रबन्ध करता है।
3. **पंचायत सचिव-** प्रत्येक ग्राम पंचायत का एक कार्यालय होता है, जो एक पंचायत सचिव के अधीन होता है। पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा होती है तथा उसे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित वेतन भी मिलता है। ग्राम पंचायत की सफलता पंचायतसचिव पर ही निर्भर करती है। वह ग्राम पंचायत के सचिव के रूप में कार्य करता है और इस नाते उसे ग्राम पंचायत के सभी कार्यों के निरीक्षण का अधिकार है। वह प्रधान या मुखिया, सरपंच तथा ग्राम पंचायत को कार्य-संचालन में सहायता देता है। ग्राम पंचायत के सभी ज्ञात-अज्ञात प्रमाण पंचायत सचिव के पास सुरक्षित रहते हैं। अतः वह ग्राम पंचायत के कागजात से पूरी तरह परिचित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पेश करता है। संक्षेप में, ग्राम पंचायत के सभी कार्यों के सम्पादन में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।
4. **पटवारी-** ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी होता है। विकास सम्बन्धी नीतियों को क्रियान्वित करने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। सिंचित एवं असिंचित भूमि के निर्धारण, कारों के आकलन एवं वसूली, भूमि के अतिक्रमण आदि मामलों में पटवारी का कार्य एक कड़ी के रूप में ग्राम पंचायत में आवश्यक हो जाता है।
5. **ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी-** विकास के लिए पंचायतों का परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक ग्राम विकास अधिकारी होता है। वास्तव में ग्राम स्तर पर वह एक बहुउद्देश्यीय कर्मचारी है जो जनता एवं प्रशासन के मध्य एक कड़ी का कार्य करता है। कृषि एवं अन्य सम्बन्धित कार्यों के कारण उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

11.4 पंचायत समिति का प्रशासनिक ढ़ाँचा

पंचायती राज की वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत पंचायत समिति वह धुरी है जिसके चारों ओर पंचायती राज की समस्त प्रवृत्तियां केन्द्रित हैं। जिला परिषद् केवल एक परामर्शदात्री एवं पर्यवेक्षी संस्था है। कार्यपालिका के समस्त वास्तविक अधिकार एवं कर्तव्य पंचायत समितियों में ही निहित हैं। पंचायत समितियों के उल्लिखित कार्यों पर गौर करने पर पता चलता है कि विकास सम्बन्धी कार्यों एवं योजनाओं की प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व पंचायत समितियों का ही होता है। अपने कार्यों को अच्छे ढंग से चलाने हेतु पंचायत समितियों द्वारा

अनेक स्थायी समितियों की स्थापना की जाती है, जिन्हें पंचायत समितियां अपने अधिकार उनके कार्यों के अनुसार सौंप देती हैं। अतः स्थायी समितियों के निर्णय पंचायत समिति के निर्णय माने जाते हैं, किन्तु अंतिम अधिकार एवं उत्तरदायित्व पंचायत समितियों के ही होते हैं।

'बलवंत राय मेहता समिति' की अनुशंसा के अनुसार पंचायती राज के लिए विकास खंड या प्रखंड स्तर पर भी ग्राम स्वशासन की व्यवस्था की गई है। विकास खंड या प्रखंड स्तर पर गठित निकाय पंचायत समिति कहलाता है। राज्य सरकार को पंचायत समिति के क्षेत्र को घटाने-बढ़ाने का अधिकार होता है। पंचायत समिति के कार्यों का सम्पादन स्थाई समितियों द्वारा होता है। राज्य सरकार और जिला परिषद् की अनुमति से पंचायत समिति अन्य स्थाई समितियों का निर्माण कर सकती है। प्रत्येक स्थाई समिति में सदयों की संख्या राज्यों में अलग-अलग है, सामान्यतः 05 से 07 तक सदस्य हो सकते हैं। सदस्यों का निर्वाचन पंचायत समिति अपने सदस्यों में से ही करती है।

प्रत्येक पंचायत समिति में एक प्रमुख और एक उपप्रमुख होगा, जिनका निर्वाचन पंचायत समिति के सदस्य करेंगे, लेकिन कोई सह-सदस्य इन पदों के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता। प्रमुख पंचायत समिति का अध्यक्ष होता है। उसका कार्यकाल पाँच वर्ष है। पंचायत समिति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके प्रमुख और उपप्रमुख को पदच्युत कर सकती है। जिला परिषद का अध्यक्ष या व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होने पर प्रमुख को अपना पद छोड़ना होगा। प्रमुख को अनेक अधिकार दिए गए हैं। पंचायत समिति की सभा बुलाना, उसके अध्यक्ष का आसन ग्रहण करना प्रमुख का काम है। वह पंचायत समिति के कार्यों का सञ्चालन करता है, उनका निरीक्षण करता है और उसके कार्यकलाप की रिपोर्ट समिति को देता है। वह खंड विकास पदाधिकारी के कार्यों की भी निगरानी करता है और पंचायत समिति के कार्यों की रिपोर्ट राज्य सरकार को देता है। संकटकाल में वह खंड पदाधिकारी के परामर्श से आवश्यक कार्यवाही कर सकता है। प्रमुख की अनुपस्थिति में उसके सारे कार्यों का सम्पादन उप-प्रमुख द्वारा होता है।

खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का पदेन सचिव होता है और उसका काम पंचायत समिति के प्रस्तावों को कार्यान्वित करना होता है। सामान्यतः खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. क्षेत्र निधि को दी जानेवाली या दी गयी राशि प्राप्त करने, वसूल करने एवं जमा करने काअधिकार।
2. पंचायत समिति से सम्बन्धित कोई विवरण, लेखा, प्रतिवेदन या प्रस्तावों को जिलाधिकारी या राज्य सरकार को प्रस्तुत करना।
3. मानकों के अनुसार योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तथा
4. सेवा सम्बन्धी मामलों का निस्तारण, आदि।

प्रमुख की अनुमति से वह पंचायत समिति की बैठक बुलाएगा और उसकी कार्यवाही का रिकॉर्ड रखेगा। पंचायत समिति की बैठक में उसे भाग लेने का अधिकार है, किन्तु मतदान करने का उसे अधिकार नहीं है। वह पंचायत समिति के वित्त का प्रबन्ध करेगा। उसे आपातकालीन शक्तियाँ भी दी गई हैं। प्रमुख और उपप्रमुख की अनुपस्थिति में यदि कोई संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो, तो वह आवश्यक कार्यवाही कर सकेगा और उसकी सूचना जिलाधीश को देगा। कार्यपालक पदाधिकारी के रूप में वह पंचायत समिति की प्रत्येक बैठक में शामिल होगा और उसे किसी समिति में शामिल होने तथा विचार-विमर्श में भाग लेने का अधिकार होगा। किन्तु उसे कोई प्रस्ताव रखने या मतदान करने का अधिकार नहीं होगा। यदि पंचायत समिति के समक्ष रखे गये किसी प्रस्ताव से इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन होता हो या उसके असंगत हो तो उसका यह कर्तव्य होगा कि वह इसकी ओर पंचायत समिति का ध्यान आकृष्ट करेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार पंचायत समिति के अधीन काम करने के लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करति है जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त

राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई पंचायत समिति अपने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

11.5 जिला परिषद का प्रशासनिक ढ़ाँचा

पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में जिला परिषद् या जिला पंचायत शीर्षस्थ संस्था है। इसका संगठन भी पंचायत समिति के समान ही किया गया है। ग्रामीण स्वायत्त शासन की सर्वोच्च इकाई होने के कारण जिला परिषद् या जिला पंचायत का मुख्य कार्य समन्वयकर्ता एवं परामर्शदाता निकाय का है। साथ ही उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह राज्य सरकार अथवा निम्नस्तरीय पंचायतों के मध्य की कड़ी भूमिका का निर्वहन करेगी। जिला परिषद का कार्यकाल उसकी प्रथम बैठक की निर्धारित तिथि से अगले पांच वर्षों तक का निश्चित किया गया है। इसके सदस्यों का निर्वाचन भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त जिले के समस्त विधायक, संसद सदस्य, राज्य विधानपरिषद के सदस्य एवं कुछ महिलाएं तथा अनुसूचित जातियों के सहयोजित सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होते हैं। प्रत्येक जिला परिषद में एक निर्वाचित अध्यक्ष होता है, जिसे जिला परिषद प्रमुख कहा जाता है।

अध्यक्ष के आरक्षित पदों की संख्या का अनुपात यथासम्भव वही होता है जो राज्य की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्ग की जनसंख्या का अनुपात होता है जिला परिषद की बैठक बुलाने, उसकी अध्यक्षता करने एवं उसका संचालन करने का अधिकार अध्यक्ष का ही है। इसके अतिरिक्त जिला परिषद् के सभी पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखना, जिला परिषद की कार्यपालिका एवं प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रखना, जिले में प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों को राहत दिलाना इत्यादि उसके मुख्य कार्य हैं।

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष ही जिला परिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अथवा एक महीने से अधिक की अवधि के लिए अवकाश पर रहने की स्थिति में अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का निर्वहण वही करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में जिला परिषद् की संरचना अलग-अलग है। सामान्यतः जिला परिषद् में कुछ स्थाई समितियाँ होती हैं, जैसे सामान्य समिति, वित्त अंकेक्षण एवं एवं योजना समिति, सामजिक न्याय समिति, शिक्षण एवं स्वास्थ्य समिति, कृषि एवं उद्योग समिति। सदस्यों का चुनाव जिला परिषद् के निर्वाचित सदस्यों में से किया जाता है। जिला परिषद् का अध्यक्ष सामान्य स्थाई समिति तथा वित्त अंकेक्षण एवं योजना समिति का पदेन सदस्य और इसका अध्यक्ष भी होता है। अन्य स्थाई समितियाँ अपने अध्यक्ष का चुनाव अपने बीच के सदस्यों में से करती है। विभिन्न समितियाँ विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करती हैं।

सामान्यतया जिलाधिकारी की श्रेणी का पदाधिकारी जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी जिला परिषद् की नीतियों और निर्देशों को कार्यान्वित करता है और जिला परिषद् के सभी कार्यों और विकास योजनाओं के शीघ्र निष्पादन हेतु आवश्यक कदम उठाता है। अध्यक्ष के सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण तथा अन्य पदाधिकारियों और कर्मचारी पर नियंत्रण रखेगा, जिला परिषद् से सम्बन्धित सभी कागजात एवं दस्तावेजों को सुरक्षित रखता है तथा अन्य सौंपे गए कार्यों को पूरा करता है। उसे जिला परिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार है। वह बैठक में विचार-विमर्श कर सकता है तथा कोई प्रस्ताव रख सकता है, परन्तु मतदान में भाग नहीं ले सकता है। अधिकांश राज्यों में मुख्य विकास अधिकारी जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त, जिला पूर्ति अधिकारी, उपक्षेत्रीय विपणन अधिकारी, जिला वन अधिकारी, जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धक, विद्युत एवं लोक निर्माण विभागों के अधिशासी अभियंता आदि जिला परिषद् के सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं। साथ ही, जिन

कार्यों को पंचायतों से संदर्भित किया है, उन विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी जिला परिषद् के साथ कार्य करते हैं।

11.6 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संसथान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है, यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतर्मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेन्द्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से ही सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए। इस आधार पर जब तक स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के लिए कोई स्वायत्त जगह निर्मित नहीं की जाती तब तक स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कोई खास सुधार कर पाना सम्भव नहीं होगा। जबकि स्थानीय स्तर पर जिला प्रशासन के साथ-साथ राज्य सरकार की कुछ संस्थापनाओं के प्रतिधारण के औचित्य पर कुछ सवाल उठ सकते हैं उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्व उन क्षेत्रों में आ सकते हैं जोकि स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों। जहाँ तक इन्हें सोंपे गए कार्यों का प्रश्न है, स्थानीय शासन संस्थाओं को स्वायत्तता होनी चाहिए और इन्हें राज्य सरकार की नौकरशाही के नियंत्रण से पूरी तरह से मुक्त होना चाहिए।

लेकिन स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक-दूसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पायी है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वहीं प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के बाजिब सलाहों को भी नजर अंदाज करते हैं, जिसके कारण विकास की संभावना प्रभावित होती है। महात्मा गांधी के अनुसार, स्वतंत्रता और

स्वायत्तता का मूल्य केवल राजनैतिक विकेन्द्रीकरण से ही प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि आर्थिक मोर्चे पर भी विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। तद्अनुसार, राजनैतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उन्होंने सदैव सृजनात्मक कार्यों के माध्यम से लोकतंत्र की नींव तैयार करने की अपील की। राजनैतिक तथा अन्य कारणों से पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिस्थापन पर प्रतिबंध हेतु कड़े नियम बनाने होंगे। यदि राजनीतिक दल पंचायती राज व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य में स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है। परन्तु पंचायती राज की कार्य प्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन ग्रामीण तक नहीं पहुँच पाता जो वास्तव में जरूरतमंद हो। जार्ज मेथ्यू ने भी कहा है कि देश में पंचायती राज के प्रभावकारी ढंग से लागू होने के मार्ग में एक शत्रु नौकरशाह हैं जो पंचायती राज के अधीन काम करना अपनी तौहीन समझते हैं, और नेताओं के साथ इनकी मिलीभगत हैं। वही पीटर रोनाल्ड डिसूजा जो 73वें संविधान को लोकतंत्र की दूसरी हवा कहते हैं, उनके अनुसार पंचायती राज की मुख्य असंगतियां, ग्रामीण विकास की मुख्य समस्या नौकरशाहों की क्षमता व संख्या में कमी भी है।

11.7 ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान

ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है, यथा वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण, स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। पंचायतों के जिम्मे कृषि, लघु सिंचाई, पेयजल, निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा स्वास्थ्य और सफाई जैसे काम हैं, लेकिन कार्यकारिणी और वित्त व्यवस्था सौंपे बिना पंचायतें भला कैसे प्रभावी हो सकती हैं? हम देखते हैं कि प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है लेकिन पंचायती राज की कार्यप्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों कें कारण इन योजनाओं का लाभ उन ग्रामीणों तक नहीं पहुँच पाता है, जो वास्तव में जरूरतमंद है, इस चुनौतियों के पीछे प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित तंत्रों के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं के समय में विशेषज्ञ या प्रशासक प्रशासन में आए परन्तु जो स्थान उन्हें मिलना चाहिए, वह उन्हें नहीं मिल पाया अतः वह अपने आप को निराश, हताश अनुभव करते हैं, साथ-साथ उनके कार्य करने का मनोबल निरंतर गिरता जाता है। यदि सहयोग से कोई दक्ष प्रशासक या विशेषज्ञ अपनी ईमानदारी लगन परिश्रम के साथ विकासात्मक कार्यों को करने का प्रयास भी करता है तो उसमें राजनीतिक व हाईकमान के दबावों में आकर वह विकासात्मक कार्य चाह कर भी नहीं कर सकता जिससे दिन-प्रतिदिन प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों का अभाव बढ़ता जा रहा है।

बिना तथ्यों एवं आकड़े के न कोई योजना बन सकती और न ही कोई वास्तविक कल्पना की जा सकती, क्योंकि प्रशासन के पास आकड़ों का निराभाव है। आकड़े तो सभी विषयों में मिल जाते हैं परन्तु वे सही व विश्वसनीय नहीं प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ- विधवा पेंशन योजना अथवा ग्रामीण आवास योजना। जब तक प्रशासन को सही व विश्वास नीय तथ्यों के आकड़े नहीं प्राप्त होंगे तब तक ग्रामीण विकास के विकासात्मक कार्यों की योजना बनाना एवं उनके क्रियान्वयन व वास्तविक परिणामों की कल्पना करना व्यर्थ होगा। पंचायती राज की मुख्य चुनौती

विकास के लिए मिल रही राशि का उचित वितरण है। पंचायती राज एवम् जिला नियोजन परिषदों से अधिकांश राशि योजनाकारों की जेब से चली जाती है और बची हुई राशि को विकास कार्यों में लगाया जाता है, जो लगभग 15 प्रतिशत ही होती है। इस प्रकार विकास कार्य आधे में ही समाप्त हो जाते हैं। स्थानीय विकास की मुख्य समस्या यह भी है कि किसी भी स्थानीय योजना का निर्माण एवम् उसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत हितों, स्वार्थों को मद्देनजर रखकर किया जाता है, इसके साथ ही संसाधनों का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, इत्यादि गंभीर समस्याएं हैं जो विकास कार्य में बांधा डालती है।

नीति निर्माण तथा समन्वय के स्तर पर भी हीलाहवाली से विकास कार्य शिथिल पड़ जाते हैं। विकास की योजनाओं के निर्माण का कार्य एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयां आती हैं एवं विकास यथोचित नहीं हो पाता है। वास्तव में यह प्रत्यक्ष अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि सम्बन्धों के अभाव के कारण विभागीय तनाव, मनमुटाव, ईर्ष्या की भावना का विकास होता है। जिससे आपसी सहयोग व समन्वयन का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। साथ ही लालफीताशाही में वृद्धि के कारण विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में अनावश्यक विलम्ब होता है और कभी-कभी विकासात्मक योजनाओं की फाइलें लंबित रह जाती है। उदाहरण के लिए भवन निर्माण, रोड निर्माण आदि हेतु प्रस्तुत पत्र यदि जिला परिषद् या महानगरपालिका में भेजा जाता है तो महीनों तक परिलंबित पड़ी रह जाती है इस प्रकार की प्रवृति घुसखोरी, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। अधिकारियों व पदाधिकारियों के बीच सम्बन्धों में तनाव, मनमुटाव या ईर्ष्या जैसी भावनाओं के कारण ग्रामीण विकास असफल रहता है। इस प्रकार के सम्बन्धों से विकास की योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

पंचायती राज प्रणाली द्वारा कार्यान्वित होने वाली प्रत्येक योजनाओं के लिए जन संयोग अति आवश्यक होता है, लेकिन इन योजनाओं के क्रियान्वयन में जन-संयोग के अभाव के कारण योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जनसंवाद की कमी के कारण व प्रशासनिक मशीनरी में जनतंत्रीकरण के अभाव के कारण भी योजनाएं सफलता तक नहीं पहुँच पाती। ग्रामीण जनता को योजनाओं का पता भी नहीं चल पाता और योजनाएं बनकर क्रियान्वित कर दी जाती है। इस प्रकार जानकारी के अभाव के कारण गरीब अशिक्षित, ग्रामीण जनता योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाती है। ग्रामीण विकास की मुख्य चुनौती आर्थिक संसाधनों का अभाव है। ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद्, उनके पास धन की समस्या शुरू से रही है। इन संस्थाओं के पास स्वतंत्र आर्थिक स्रोत नहीं है, और यदि है भी तो वास्तव में अर्थ शून्य है। इन्हें शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। जनसंवाद के कारण ग्रामीण विकास की योजनाओं को शासन ग्रामीण जनता तक पहुँचाने में असफल रही है, जिससे ग्रामीण जनता को योजनाओं का सही ढंग से पता ही नहीं लगता और वे योजनाएं बनकर क्रियान्वित कर दी जाती हैं तथा ग्रामीण गरीब, अशिक्षित व असहाय जनता योजना के आने के इन्तजार में अपना सारा समय व्यर्थ में बर्वाद कर देती है एवं वे योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि “स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है, जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।” जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता, केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति, विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। अब यह कहना आवश्यक हो गया है कि शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबावदारियों के सक्रियता से निभाने का प्रयास करें। अधिकारियों एवं आम जनता को योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में सहयोग देना चाहिए, ताकि ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन को सहयोग मिल सके। विकासात्मक कार्यों को करने के लिए प्रशासकों एवं विशेषज्ञों को स्वतंत्रता होने से वे अपने अनुभवों एवं कार्यकुशलता के आधार पर कार्य कर सकेगें। प्रशासन को सम्बन्धित समस्या के वास्तविक आकड़े व तथ्य प्रशासन को प्राप्त कराने

में सम्बन्धित व्यक्ति को सहयोग प्रदान करना चाहिए। साथ ही, विकास कार्यों का नियोजन, क्रियान्वयन एवं उसका मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए, जिससें पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा। इसके अतिरिक्त नागरिक घोषणा-पत्र के अनुसार कार्यों का निष्पादन आवश्यक है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रस्तावित फाइलों की यथोचित कार्यवाही के साथ एक निश्चित अवधि के अन्दर पूर्ण करना चाहिए।

आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन-आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्य स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था में राजनीतिक नेतृत्व किसका होता है?
2. पंचायती राज व्यवस्था में निदेशालय स्तर पर विभागाध्यक्ष का कार्य कौन देखते हैं?
3. ग्राम पंचायत की सफलता किस पर ही निर्भर करती है?
4. पंचायती राज व्यवस्था के पदसोपान क्रम में शीर्षस्थ संस्था कौन है?
5. पंचायत समिति का पदेन सचिव कौन होता है?

11.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरुप पंचायती राज व्यवस्था में परिलक्षित होता है।यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन समस्त समाहित शक्तियों का उपयोग कर लोक नीतियों को क्रियान्वित करता है। प्रशासनिक अधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। राज्यों में पंचायत राज विभाग से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वयन के लिये राज्य स्तर से लेकर ग्राम स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व पंचायती राज विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव, पंचायती राज इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

11.9 शब्दावली

शासन- संचालन की गतिविधि को शासन कहते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, राज करने या राज चलाने को शासन कहा जाता है।

प्रशासन- किसी क्षेत्र में विशिष्ट शासन या किन्ही मानव प्रबन्ध न गतिविधियों को प्रशासन कहा जा सकता है, जिनका प्रयोजन सार्वजनिक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।

प्रबन्धन- व्यवसाय एवं संगठन के सन्दर्भ में उपलब्ध संसाधनों का दक्षतापूर्वक तथा प्रभावपूर्ण तरीके से उपयोग करते हुए लोगों के कार्यों में समन्वय करना ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग

इकाई- किसी संगठन का निम्नतम प्रशासनिक अभिकरण।

मानदंड- नियम, आधार।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पंचायती राज विभाग के मंत्री का, **2.** निदेशक, पंचायती राज, **3.** पंचायत सचिव, **4.** जिला परिषद् या जिला पंचायत, **5.** खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन जयपुर।
5. आशा नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र आजकल, नयी दिल्ली।
6. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
7. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, भारत में पंचायती राज,लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नयी दिल्ली।
2. के0के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे पर प्रकाश डालिए।
2. पंचायत समिति और जिला परिषद् के प्रशासनिक ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
3. ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं समाधान काविश्लेषण कीजिए।

इकाई- 12 पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति
12.3 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता
12.4 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ
12.4.1 संस्थागत नियंत्रण
12.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण
12.4.3 तकनीकी नियंत्रण
12.4.4 वित्तीय नियंत्रण
12.5 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं
12.6 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल नागरिकों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है अपितु उन्हें शासन का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। इन्हीं कारणों से स्थानीय स्वशासन को आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का अविभाज्य अंग माना गया है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में लोगों की राजनीतिक सहभागिता एवं स्थानीय विकास हेतु प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्तर पर शासन के लिये स्थानीय लोगों का संगठन या निकाय बनाया जाता है और स्थानीय स्तर की विकास योजनायें तथा अन्य समस्याओं तथा जन मांगों को इसी स्थानीय शासन निकाय द्वारा पूरा किया जाता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी व्यवस्था है कि यहाँ पंचायती राज व्यवस्था को अपना का प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को साकार रूप दिया गया है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत नियंत्रण का अर्थ ,औचित्य एवं भारत में पंचायती राजसंस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ, नियंत्रण की सीमाएं एवं नियंत्रण कामूल्यांकन पर भी चर्चा की जाएगी।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नियंत्रण का अर्थ एवं औचित्य के बारे में जान सकेंगे।
- आप भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियों को भी समझ पाएंगे।
- संस्थागत, प्रशासनिक, तकनीकी एवं वित्तीय नियंत्रण के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे तथा
- भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का भी ज्ञानप्राप्त कर पायेंगे।

12.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

नियन्त्रण प्रबन्धन की एक विधा है। नियंत्रण के अलावा प्रबन्धन के अन्य कार्य हैं- नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, निर्देशन आदि। प्रबन्धन में नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि यह गलतियाँ सुधारने तथा सुधारात्मक कदम उठाने में मदद करता है। आधुनिक संकल्पना यह है कि नियंत्रण, भविष्य को देखने जैसा कार्य है, जबकि पहले नियंत्रण को गलती को सुधारने वाला कार्य समझा जाता था। प्रबन्धन में नियन्त्रण का अर्थ है- मानक घोषित करना, वास्तविक कार्यक्षमता को मापना तथा सुधारात्मक कार्यवाही करना। नियंत्रण संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन कार्य के निष्पादन को निर्देशित करता है। नियंत्रण कार्य में निष्पादन के स्तर निर्धारित किए जाते हैं, वर्तमान निष्पादन को मापा जाता है। इसका पूर्वनिर्धारित स्तरों से मिलान किया जाता है और विचलन की स्थिति में सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिएनियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। नियंत्रण का क्षेत्र उस क्षमता या परिधि को प्रदर्शित करता है, जो किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी में होती है अर्थात एक अधिकारी एक समय में कितने अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। इसे प्राय: 'नियंत्रण विस्तृति', 'प्रबन्ध का क्षेत्र', 'पर्यवेक्षण का क्षेत्र' या 'सत्ता का क्षेत्र' भी कहा जाता है। नियन्त्रण का क्षेत्र, संगठन की संरचना, उद्देश्य, कार्य प्रकृति, पर्यवेक्षक की क्षमता तथा अधीनस्थों के सहयोग इत्यादि पर निर्भर करता है।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य, जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा, स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मंडलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है।

भारत जैसे देश में जहाँ अधिसंख्य जनसंख्या गांवों में बसती है वहाँ पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्व स्वतः सिद्ध है। हमारा जनतंत्र इस बुनियादी धारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन कार्यों में हाथ बटाये और अपने पर शासन करने का उत्तरदायित्व स्वयं प्राप्त करे। प्रजातंत्र की सार्थकता विकेन्द्रीकरण में है। यदि शक्तियां विकेन्द्रीकृत हो तो जनता की सहभागिता में

वृद्धि होगी और स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर हो जावेगा। स्थानीय लोगों को अपने आसपास की समस्याओं का ज्ञान तो होता ही है, उसका समाधान भी वे अच्छी तरह से कर सकेंगे। भारतीय संविधान मे किया गया 73वां संशोधन इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है। पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेहतर सम्भव है।

12.3 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय शासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल नागरिकों को प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, अपितु उन्हें शासन करने का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य, जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा, स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मंडलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमश: ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद का गठन किया गया है। त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौंपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज की संरचना में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिलापरिषदों का गठन किया गया है, जिसे पंचायती राज के नाम से संबोधित किया गया है। ग्राम पंचायतें पंचायती राज व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। पंचायती राज व्यवस्था की सफलता एवं उसकी प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन पंचायतों की सुदृढ़ता एवं शक्ति पर ही निर्भर करती है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकृति प्रदान की गई है। ग्राम पंचायतों द्वारा विविध एवं बहुमुखी कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। पंचायतें स्थानीय क्षेत्रों की प्रतिनिधि सरकारें हैं। इन संस्थानों के निर्वाचित प्रतिनिधि, जिस प्रकार अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हैं, उन सभी के लिए वे स्वयं जवाबदेह भी हैं। इनकी जवाबदेही दो स्तरों पर होती है। पंचायतों को राज्य सरकार से निधियाँ मिलती हैं। अत: वह अपनी राज्य सरकार के प्रति जवाबदेह होती है। पंचायतें लोकतांत्रिक संस्थान हैं। अत इनकी मुख्य जिम्मेदारी उन लोगों के प्रति है, जिन्होंनें इन्हें चुना है। इन दोनों स्तरों पर इनकी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को अपनी गतिविधियों के सम्बन्ध में बेहद सजग रहना है। पंचायतों को अपने वित्तीय क्रियाकलाप में पारदर्शी बनाया गया है। सूचना अधिकार अधिनियम के अनुसार, कोई भी नागरिक पंचायत के किसी भी वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित सूचना की माँग कर सकता है। जब कभी ऐसी सूचना की माँग की जाए, तो पंचायतों को बिना विलम्ब किए तत्काल समस्त सूचना प्रदान करनी है।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके आभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। पंचायतों का बहुआयामी कार्य, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

12.4 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ

राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में एक पंचायत निदेशक होता है, वहीं पंजाब में मार्गदर्शन और परिवीक्षण का एक निदेशालय कार्यरत है। सामान्यतः पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण नगरीय निकायों की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है। ग्राम्य स्तर भी आज भी अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता होती है, साथ ही महिला सशक्तिकरण के बाद भी महिलाएं पूर्णतः जागरूक हो पाई हैं। भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

12.4.1 संस्थागत नियंत्रण

पंचायती राज व्यवस्था पर विविध संस्थाएं भिन्न-भिन्न माध्यमों से नियंत्रण रखती है। इनमें व्यस्थापिका की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। स्थापना से लेकर भंग करने तक का अधिकार विधायिका को प्राप्त है। संस्थागत नियंत्रण के माध्यम निम्न हैं-

1. **व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण-** सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय सरकारों की विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधानमंडलों में निहित है। इस प्रकार अंतिम सत्ता व्यवस्थापिका में ही निहित है।
2. **आकार, संरचना एवं चयन सम्बन्धी नियंत्रण-** स्थानीय शासन की संरचना उसके आकार एवं चयन तथा शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। पंचायती राज्य के किसी भी स्तर पर संरचनाओं का आकार जिला पंचायती राज अधिकारी और अन्य सम्बन्धित अधिकारी करते हैं, जो राज्य सरकार के दिशा निर्देशों के अनुरूप होता है।
3. **कार्य सूची पर नियंत्रण-** पंचायती राज्य के विविध स्तरों पर कार्य सूची का निर्धारण राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही समितियों का संचालन भी होता है।
4. **कर्मचारियों पर नियंत्रण,चयन, भर्ती, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्ते-** पंचायती राज संस्थाओं के विविध स्तरीय कर्मचारियों का चयन, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्तों का निर्धारण राज्य सरकार करती है। उदाहरण के लिए ग्राम पंचायत का पंचायत सचिव पंचायत के सहायतार्थ नियुक्त किया जाता है। पंचायत सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा होती है तथा उसे राज्य सरकार द्वारा

निर्धारित वेतन भी मिलता है। ग्राम सेवक या ग्राम विकास अधिकारी भी विकास के लिए पंचायतों का परामर्शदाता तथा नीतियों को लागू करने में सहायक होता है। पटवारी ग्राम पंचायत स्तर पर राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्मचारी है तथा विकास सम्बन्धी नीतियों को क्रियान्वित करने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पंचायत समिति स्तर पर खंड या प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का पदेन सचिव होता है और उसका काम पंचायत समिति के प्रस्तावों को कार्यान्वित करना होता है। जिला परिषद् का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। जिला परिषद् के सभी पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखना, जिला परिषद् की कार्यपालिका एवं प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रखना, जिले में प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित लोगों को राहत दिलाना इत्यादि उसके मुख्य कार्य हैं। इसके अतिरिक्त जिला पूर्ति अधिकारी, उपक्षेत्रीय विपणन अधिकारी, जिला वन अधिकारी, जिला उद्योग केन्द्र के प्रबन्धक, विद्युत एवं लोक निर्माण विभागों के अधिशासी अभियंता आदि जिला परिषद् के सलाहकार के रूप में कार्य करते हैं। साथ ही जिन कार्यों को पंचायतों से संदर्भित किया है, उन विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी जिला परिषद् के साथ कार्य करते हैं।

5. **कागज, अभिलेखों एवं संपत्ति पर नियंत्रण-** पंचायती राज संस्थाओं के समस्त अभिलेखों एवं संपत्ति पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है। राज्य सरकार कभी भी अभिलेख मांग सकता सकता है और इसकी जांच भी कर सकता है।

12.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण संरचना

प्रशासनिक नियंत्रण का उद्देश्य ऐसी नीति और निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोकना है, जो सम्बन्धित संस्था के प्राथमिक लक्ष्य और उद्देश्य के विरुद्ध हो। प्रशासनिक नियंत्रण मुख्यतः गैर-सरकारी सदस्यों के विरुद्ध होता है। यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। यह नियंत्रण विविध माध्यमों द्वारा होता है, जो निम्नलिखित हैं-

1. **निलंबन एवं भंग करने का अधिकार** शक्ति और संस्था के दुरुपयोग होने पर राज्य सरकार संस्था के विविध इकाईयों को निलंबित कर सकती है अथवा भंग भी कर सकती है। प्रत्येक इकाई का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।
2. **प्रस्तावों का निलंबन एवं निरस्तीकरण-** पंचायती राज संस्थाओं के प्रस्तावों पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार राज्य सरकार को है । वह प्रस्तावों को निलंबित अथवा निरस्त भी कर सकती है। पंचायती राज्य के विविध स्तरों पर प्रस्तावों के सम्बन्ध में फैसला राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही अग्रेतर कार्यवाही होती है।
3. **सदस्यों एवं पदाधिकारियों को पदमुक्त करना-** यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। उदाहरण के लिये, ग्राम प्रधान/उप-प्रधान जिला पंचायत राज पदाधिकारी को स्वयं लिखकर अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। अधिनियम के प्रावधान के नुसार सरकार के विचार में यदि कोई ग्राम प्रधान/उप-प्रधान बिना समुचित कारण के तीन लगातार बैठकों में अनुपस्थित रहने या जानबुझकर इस अधिनियम के अधीन अपने कार्यों एवं कर्तव्यों को करने से इंकार या उपेक्षा करने, शक्तियों का दुरूपयोग करने, कर्तव्यों के निर्वहन में दुराचार का दोषी पाए जाने या शारीरिक और मानसिक रूप से अक्षम होने, किसी अपराधिक मामले का अभियुक्त होने के कारण छ: माह से अधिक फरार हो जाने का दोषी हो तो ऐसे ग्राम प्रधान/उप-प्रधान को स्पष्टीकरण हेतु समुचित अवसर प्रदान करने के उपरान्त सरकार हटा सकती है।

4. **अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन-** अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन भी राज्य सरकार द्वारा ही होता है। ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल पांच वर्ष है, परन्तु ग्राम पंचायत अविश्वास प्रस्ताव पास कर उसे पदच्युत कर सकती है। कुछ राज्यों में एक अन्य महत्वपूर्ण पद सरपंच का होता है उसे कदाचार, अक्षमता या कर्तव्यहीनता के कारण सरकार द्वारा हटाया भी जा सकता है। अगर दो तिहाई पंच, सरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दें तो सरकार सरपंच को हटा सकती है। वहीं दूसरी ओर पंचायत समिति अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके प्रमुख और उपप्रमुख को पदच्युत कर सकती है। जिला परिषद् का अध्यक्ष या व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होने पर प्रमुख को अपना पद छोड़ना होगा।
5. **सामान्य निर्देशों का प्रसारण-** अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन से सम्बन्धित सामान्य निर्देश राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में राज्य सरकार कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है।
6. **निरीक्षण एवं जांच-** निरीक्षण, दौरे एवं व्यक्तिगत भ्रमण या परियोजना की गतिविधियों का नियमित रूप से देखरेख करना ही 'निरीक्षण' है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पंचायती राज के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी एकत्रित किया जाता है। निरीक्षण के द्वारा प्राप्त जानकारी का सही विवरण करने से, यह जानकारी परियोजना के उपलब्धियों को सुधारने के लिए आगे निर्णय लेने में काम आती है। एक परियोजना के आयोजन और कार्यान्वयन के लिए निरीक्षण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

12.4.3 तकनीकी नियंत्रण

स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार विविध तकनीकी नियंत्रण के माध्यमों का भी उपयोग करती है, जो निम्न है-

1. **योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन-** स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। राज्य सरकार विविध योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन द्वारा भी इन पर नियंत्रण रखती है।
2. **सामयिक कर्मचारी बैठक-** सामयिक कर्मचारी बैठक द्वारा भी राज्य सरकार इन पर नियंत्रण रखती है। बैठकों का कार्य वृत्त, उनकी कार्यवाही आदि राज्य सरकार द्वारा अंतिम तौर पर अनुमोदित होती है। समय- समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है।
3. **प्रतिवेदन की मांग-** प्रतिवेदन की मांग राज्य सरकार द्वारा की जा सकती है। सरकार इस सम्बन्ध में उचित निर्देश देने का अधिकार रखती है।
4. **पंचायती राज एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति-** समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। पंचायती राज एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति राज्य सरकार द्वारा इन पर नियंत्रण का परिचायक है।
5. **तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन से सम्बन्ध रखना-** नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों

के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन का भी पूरा ख्याल रखती है।

12.4.4 वित्तीय नियंत्रण

लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार पंचायती राज संस्थाओं पर विविध माध्यमों से वित्तीय नियंत्रण रखती है, इनमें प्रमुख हैं-

1. **आय की व्यवस्था-** ग्राम पंचायत हो या जिला परिषद, उनके पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है।
2. **बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख-** स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। इसलिए राज्य सरकार इन्हें वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है तथा मानकों के अनुसार इनसे कार्य की अपेक्षा भी करती है। राज्य सरकार इसलिए बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख भी करती हैं।
3. **बजट के सिद्धान्तों का उल्लेख-** पंचायती राज व्यवस्था में बजट की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। बजट एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय का विवरण है। बजट उपलब्ध संसाधनों के आकलन करने की प्रक्रिया है तथा पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर संगठन के विभिन्न गतिविधियों के लिए आवंटित करने की प्रक्रिया भी है। यह संसाधनों के आवंटन में प्रतिस्पर्धा की प्राथमिकताओं, निष्पक्षता तथा सामाजिक न्याय के मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। अपनी वित्तीय भूमिकाओं को छोड़कर बजट द्वारा और कार्य किए जाते हैं। बजट नियंत्रण के रूप में कार्य करता है तथा यह विभिन्न विभागों में कार्यों के मूल्यांकन का माध्यम है। यदि कोई विभाग लक्ष्य से दूर है तो इसे बजटीय प्रस्तावों में सूचित किया जा सकता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। बजटीय योजना तथा कार्यान्वयन विभिन्न विभागों को एक साथ लाने में मदद करते है तथा उनमे समन्वय स्थापित करते है। यह धन का सार्वजनिक उत्तरदायित्व तय करता है। यह सरकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक योजनाबद्ध दृष्टिकोण है जो वृहद् संसाधनों को संगठित करने की मांग करता है
4. **लेखा-** लेखा परीक्षा का उद्देश्य यह होता है कि लेखा परीक्षा के बाद व्यक्ति/संस्था/तन्त्र/प्रक्रिया के बार में एक राय या विचार व्यक्त किया जाय। लेखांकन का उद्देश्य तभी सफल होता हैं जबकि वे विश्वसनीय हो। लेखांकन विवरणों की विश्वसनीयता को अंकेक्षण सुनिश्चित करता हैं। आज के आर्थिक परिवेश में, सूचना व जवाबदेही की भूमिका पहले से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। लेखा परीक्षा यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि दी गयी सूचना वैध एवं विश्वसनीय है। इससे उस तन्त्र के आन्तरिक नियन्त्रण का भी मूल्यांकन प्राप्त होता है।
5. **अंकेक्षण-** किसी भी संस्था के वितीय विवरणों/वित्तीय सूचनाओं की स्वतंत्र जाँच करके उस पर राय व्यक्त करना अंकेक्षण कहलाता है। किसी भी व्यवसाय के जीवित रहने के लिए उसकी कार्यक्षमता बढ़ाने तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए लेखांकन अनिवार्य है। अंकेक्षण का सबसे व्यापक अर्थ किसी व्यक्ति, संस्था, तन्त्र, प्रक्रिया, परियोजना या उत्पाद का मूल्यांकन करना है। अंकेक्षण प्रक्रिया में वे सभी कार्य आते है जो अंकेक्षण सिद्धान्तों के अन्तर्गत किसी जाँच के दौरान अपनाये जाते हैं। अंकेक्षण मानदण्डों के अनुसार क्रियाएं निश्चित की जाती हैं। अंकेक्षण प्रविधि में उन उपायों को सम्मिलित करते हैं, जिन्हें लेखा परीक्षण के लिए आवश्यक साक्ष्य के रूप में एकत्रित करके लेखा पुस्तकों में लिखे व्यवहारों

की शुद्धता जाँच के लिए अपनाते हैं। इसमें भौतिक परीक्षण, पुष्टिकरण, पुर्नगणना, मूल प्रपत्रों की जाँच, रिकार्ड से मिलान, सहायक रिकार्ड की जाँच, पूछताछ करना, क्रमानुसार जाँच करना, सम्बन्धित सूचना से किसी मद का सह-सम्बन्ध बैठाना, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण , आदि शामिल हैं।

12.5 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

ग्रामीण स्थानीय निकायों पर नियंत्रण के विविध माध्यमों की सूची काफी लम्बी और प्रभावोत्पादक है, तथापि व्यवस्था में नियंत्रण के ये साधन कार्यकुशलता एवं प्रभाव वांछितस्तर तक नहीं छोड़ पाए है। सादिक अली समिति और अन्य ने भी इस ओर इशारा किया है। पंचायती राज संस्थाओं पर न की सीमाऐं निम्नवत हैं-

1. नियंत्रण और पर्यवेक्षण की शक्तियां राज्य स्तर पर केंद्रीकृत हो गयी हैं। अतः तुरंत कार्यवाही करना सम्भव नहीं हो पाता।
2. निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ भी राज्य सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है। लेकिन समयाभाव एवं अनिच्छा के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता।
3. अंकेक्षण की प्रक्रिया भी काफी धीमी और अनुपयोगी सिद्ध हुई है।
4. कई बार सरकारें अपने वैधानिक अधिकारों का उपयोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करती हैं, जिससे पक्षपात प्रदर्शित होता है।
5. दोषी अधिकारियों के खिलाफ कारवाई करने का अधिकार निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिया गया है। अक्सर इसमे त्रुटि एवं गलत धारणाएं विकसित हो जाती हैं।
6. नियंत्रण के साधन रचनात्मक एवं सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। अक्सर यह उत्साह ठंडा प्रतीत होता है।
7. राज्य सरकार के स्तर पर ऐसी संस्था का पूर्णतः अभाव है जोपंचायती राज संस्थाओं की समस्याओं पर विचार कर उचित सलाह दे सके।
8. इसके अतिरिक्त ढेर सारे ऐसे कारण हैं जो पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की सीमाएं दर्शाती हैं।

12.6 भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी हैं। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है, यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतःमन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च्व स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से ही सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं

उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। यह सत्य है कि राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना किसके द्वारा की जाती है?
2. स्थानीय निकायों से सम्बन्धित कानूनों में शासन का कौन अंग कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है?
3. स्थानीय निकायों को निलंबन एवं भंग करने का अधिकार किसे है?
4. एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय के विवरण को क्या कहा जाता है?
5. ग्राम प्रधान या मुखिया का कार्यकाल कितने वर्षों का होता है?

12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरुप पंचायती राज व्यवस्था में परिलक्षित होता है। यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी व्यवस्था है कि यहाँ पंचायती राज व्यवस्था को अपना का प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को साकार रूप दिया गया है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिएनियंत्रणकी आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। सामान्यतः पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण नगरीय निकायोंकी अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है। ग्राम्य स्तर भी आज भी अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता होती है साथ ही महिला सशक्तिकरण के बाद भी महिलाएं पूर्णतः जागरूक हो पाई हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनप सकती है।

12.8 शब्दावली

प्रक्रिया- कार्यविधि, संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, संविधान संशोधन- संविधान के उपबंधों में आंशिक या पूर्ण परिवर्तन, ढ़ाँचा- संरचना, अधिनियम- कानून, निकाय- संगठन या व्यवस्था, शासन- संचालन की गतिविधि या राज करने या राज चलाने की कला

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राज्य सरकार द्वारा, **2.** व्यवस्थापिका, **3.** राज्य सरकार, **4.** बजट, **5.** 5 वर्ष

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।
3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।
4. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
5. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, भारत में पंचायती राज, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
6. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

12.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. के0 के0 शर्मा, 2005 भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रग की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
3. भारत में पंचायती राज संस्थाओंपर नियंत्रण की विधियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओंका मूल्यांकन कीजिए

इकाई- 13 नगरीय शासन का विकास

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व
13.3 नगरीय शासन का विकास
13.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन
13.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन
13.3.3 आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन
13.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल
13.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल
13.3.3.3 सन् 1927 से 1937 का काल
13.3.3.4 सन् 1937 से 1947 का काल
13.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास
13.4.1 केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियां और आयोग
13.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र का तात्पर्य यह है कि इस शासन व्यवस्था में लोगों स्वयं अपने स्वामी होते हैं अर्थात वे स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं पर शासन करते हैं। लोककल्याणकारी राज्य की संकल्पना के विकास के साथ ही साथ लोकतंत्र में लोगों की केन्द्रीयता और भी बढ़ गई। राज्य के कार्यक्षेत्र में विस्तार ने इस बात पर विशेष बल दिया कि लोग स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करें, क्योंकि केवल केन्द्र सरकार या राज्य सरकार से हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि उनके माध्यम से सभी समस्याओं का ससमय और सठीक समाधान किया जा सके। स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय लोगों के अलावा किसी और के द्वारा सठीक तरीके से कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि हम स्थानीय स्वशासन के माध्यम से न केवल स्थानीय समस्याओं का स्थानीय समाधान निकाले बल्कि इसके माध्यम से लोकतंत्र के जड़ों को और भी अधिक मजबूत बनाए।

स्थानीय स्वशासन की संकल्पना लोकतंत्र के विस्तार के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसे लोकतंत्र का आधार व आधारशिला भी कहा जाता है, क्योंकि यही वह माध्यम है जिसके द्वारा नागरिकों को अपने ही मामले में प्रबन्धन करने का अवसर प्राप्त होता है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कोई नई नहीं हैं बल्कि प्राचीनकाल से भारत में स्थानीय स्वशासन किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। भारत में, ब्रिटिशकाल में स्थानीय स्वशासन शुरूआत सन् 1687 से मानी जाती है जब मद्रास कॉरपोरेशन की स्थापना हुई। स्वतंत्र भारत में

स्थानीय स्वशासन की संरचना बहुत हद तक ब्रिटिश ढ़ाँचे से मिलती जुलती है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है- ग्रामीण और शहरी। ग्रामीण क्षेत्रों में त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था अपनाई गई है- जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत जिसे पंचायती राज कहते हैं तथा नगरों में नगर निगम (बड़े नगरों में) और नगरपालिका (छोटे नगरों में) के रूप में स्थापित किया गया है। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास बड़ी ही तीव्र गति से हुआ है। भारत में स्थानीय शासन को संघीय व्यवस्था के अंतर्गत केन्द्र व राज्य में शक्तियों के बंटवारे में राज्य सूची के अधीन रखा गया है तथा 1993 में दो संविधान संशोधनों- 73वाँ और 74वाँ, के माध्यम से संवैधानिक दर्जा भी प्रदान कर दिया गया है।

लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर बल देती है और शक्ति के विकेन्द्रीकरण की जब बात होती है तो स्थानीय स्वशासन की संकल्पना महत्वपूपर्ण हो जाती है, जिसके बिना विकेन्द्रीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को बृहद रूप से दो वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है- ग्रामीण स्वशासन तथा शहरी अथवा नगरीय स्वशासन। इस इकाई में हम स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत भारत में नगरीय स्वशासन के विकास का अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय स्वशासन के महत्व को जान सकेंगे।
- भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन के विकास को समझ सकेंगे।
- भारत के वर्तमान नगरीय स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

13.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व

भारत में नगरीय शासन का इतिहास बहुत ही पुराना रहा है जिसके सन्दर्भ में पिछली इकाई में चर्चा की जा चुकी है। नगरीय शासन में समय-समय पर कई परिवर्तन भी किए गए, इसलिए नगरीय शासन का इतिहास कई उतार-चढ़ाव से गुजरा है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना का आधार कहे जाने वाले स्वशासन की इकाइयों में नगरीय शासन अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। विकास के दौर में भारत भी विश्व के अन्य देशों के समकक्ष आगे बढ़ रहा है और समय के साथ-साथ भारत में भी शहरों का निरंतर विकास और प्रसार हो रहा है, जिसके कारण नगरीय शासन के अंतर्गत नवीन चुनौतियाँ भी आ रहीं हैं। वर्तमान में भारत में लगभग सौ से भी अधिक नगर निगम, 14 सौ से अधिक नगरपालिकाएं तथा 02 हजार से भी अधिक नगर पंचायत हैं। प्रत्येक पांच वर्ष में32 लाख से भी अधिक सदस्यों का चुनाव इन निकायों में होता है, जिनमें से लगभग 10 लाख महिला प्रतिनिधि भी हैं। यदि भारत में कुल विधान सभाओं और संसद को मिला लिया जाए तब भी कुल जन प्रतिनिधियों की संख्या मात्र 05 हजार है। अतः नगरीय स्वशासन के निकायों ने बड़े पैमाने पर जन प्रतिनिधित्व को बढ़ावा दिया है। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान में लगभग 30 महिला मेयर हैं, नगरपालिकाओं में 05 सौ से भी अधिक महिला अध्यक्ष है तथा नगर पंचायतों में भी लगभग 650 नगर पंचायत महिलाओं के नेतृत्व में हैं। भारत में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या क्रमशः 16.2 तथा 8.2 प्रतिशत है और आरक्षण की व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान में लगभग 6.6 लाख प्रतिनिधि नगरीय स्वशासन की इकाइयों में निर्वाचित हैं। इन नगरीय स्वशासन की इकाइयों ने न केवल लोकतंत्र का प्रसार किया है, बल्कि इनके माध्यम से महिलाओं तथा समाज के वंचित वर्गों का सशक्तिकरण भी सम्भव हो सका है। ऐसे में नगरीय शासन के वर्तमान स्वरूप को समझना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जिसके लिए सर्वप्रथम नगरीय स्वशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा इसके विकास को

समझना अत्यंत आवश्यक है। इस इकाई में हम नगरीय स्वशासन के विकास को चरणबद्ध तरीके से समझने का प्रयास करेंगे।

13.3 भारत में नगरीय शासन का विकास

भारत में नगरीय शासन के विकास को समझने के लिए इसे मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है- प्रथम, प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन; द्वितीय, मध्यकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन; तृतीय, आधुनिक भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम तथा द्वितीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को दर्शाना कठिन हो जाता है जबकि तृतीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि प्रथम दो चरणों में भारत मुख्यतः गाँवों का देश ही था। यद्यपि शहरों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता परन्तु प्राचीन तथा मध्यकाल में कुछ गिने-चुने नगर ही थे जो अत्यंत ही समृद्ध थे। शहरों का विकास स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत ही हो सका जब ब्रिटिश शासन के द्वारा शहरों के विकास पर बल दिया गया। अतः इकाई के इस भाग में हम प्राचीन भारत तथा मध्य भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास को दर्शाने के क्रम में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को समझने का प्रयास करेंगे तथा आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को चरणबद्ध प्रकार से समझने का प्रयास करेंगे।

13.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन

रामायण के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में भारत में स्थानीय स्वशासन कितना महत्वपूर्ण और समृद्ध था। उस काल में प्रशासन दो भागों में विभाजित हुआ करता था- 'पुर' और 'जनपद'। ग्रामों की गणना जनपद में की जाती थी तथा वहाँ के निवासी 'जानपदा' कहलाते थे। इसके साथ ही 'ग्राम', 'महाग्राम' तथा 'घोष' का भी उल्लेख रामायण में मिलता है। ग्राम के निकट स्थित नगरों को 'पट्टन' कहा जाता था, जो कि उस समय जनपदों के लिए मंडी का काम करते थे। रामायण में 'श्रेणी' तथा 'नैंगम' जैसी संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु उनके संगठन पर विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। महाभारत के शांतिपर्व में उल्लिखित है कि शासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' होगी, जिसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, शत तथा सहस्त्र ग्राम-समूहों की इकाइयाँ होंगी। ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में कुछ छोटे व बड़े नगर भी थे। इन नगरों के शासन का अधिकारी अथवा प्रमुख 'चिन्तक' कहलाता था। उसका कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करना था। चिन्तक यह सुनिश्चित करता था कि उसके अधीनस्थों के द्वारा प्रजा के प्रति अन्याय न हो तथा उसका यह भी दायित्व था कि वह प्रजा की रक्षा भी करे। शांतिपर्व में सचिव का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी प्रादेशिक अधिकारियों के कार्यों का निर्देशन करता था। ग्राम तथा ग्रामों के प्रधान के साथ ही साथ निगमों व उनके प्रधानों का भी उल्लेख मिलता है।
मनुस्मृति में मनु ने भी स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया था तथा शासन की शक्तियों एवं कार्यों के विकेन्द्रीकरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए इस बात पर बल दिया कि प्रजा में स्वशासन के गुणों का विकास भी होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने राजा को एक पृथक उत्तरदायी मंत्री के पद सृजन का भी परामर्श दिया था। कौटिल्य ने अपनी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में नगर के लिए 'पुर' शब्द का प्रयोग किया था तथा पुर के प्रधान अधीक्षक को नागरिक कहा है। नागरिक को नगर की संपूर्ण कानून व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायी माना है। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त कर नगर के प्रत्येक एक चौथाई भाग को जिस अधिकारी के अधीन रखा उसे 'स्थानिक' नाम दिया गया तथा प्रत्येक दस, बीस, चालीस परिवारों पर एक 'गोप' की नियुक्ति की व्यवस्था बताया, जिसका कार्य न केवल इन परिवारों के स्त्री व पुरूषों की जाति, गोत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखना था, अपितु उनकी आय एवं व्यय की जानकारी रखना भी था। ये स्थानीय संस्थायें सम्राट के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त हुआ करती थीं।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भी शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया। मेगस्थनीज के उस समय के पाटलिपुत्र नगर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि नगर का कार्यभार पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में विभक्त था, जिनका कार्य उचित बाट एवं माप, व्यापार व वाणिज्य का निरीक्षण, जन्म-मृत्यु के अभिलेखों को रखना, विदेशियों का स्वागत-सत्कार, बिक्रीकर की वसूली आदि था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में सातवाहन शासनकाल में नगरों व ग्रामों में स्थानीय राजनीतिक संस्थायें हुआ करती थीं। पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण व अवन्ति के महाक्षत्रपों तथा गुप्त साम्राज्य के बीच में भद्रगण से लेकर खरपारिक गण तक छोटे-छोटे गणराज्य हुआ करते थे। गुप्तकाल में भी राजतंत्र में अनेक गणतंत्र थे, जो अपने आंतरिक मामलों में काफी हद तक स्वतंत्र हुआ करते थे।

13.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन

मध्यकालीन भारत में भी स्थानीय स्वशासन प्रचलित था। मध्यकाल का प्रारम्भ जो कि सल्तनत काल कहलाता है, इसमें दिल्ली के सुल्तान को इस बात का ज्ञात था कि इतने बड़े साम्राज्य को एक केन्द्र से संचालित कर पाना सम्भव नहीं है और न ही पूरे साम्राज्य पर सीधा नियंत्रण रख पाना सम्भव है। अतः उस काल में उन्होंने भी अपने साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया था। प्रान्त के प्रमुख को 'अमीर' अथवा 'वाली' कहा जाता था। उनका दर्जा अर्ध स्वतंत्र शासक के समकक्ष होता था। अर्थात उनके कार्यों में सम्राठ द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। इन प्रान्तों को भी छोटी इकाईयों 'शिक' में विभक्त किया गया था और 'शिक' के प्रमुख को 'शिकदार' कहा जाता था। शिक के उपरान्त छोटी इकाई के रूप में 'परगना' हुआ करती थी और परगने के बाद की इकाई 'मोंगा' अथवा 'गाँव' थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में भी प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया था और स्थानीय निकायों को स्वायत्ता भी प्राप्त थी। हालांकि नगरीय शासन और ग्रामीण शासन में विभेद कर पाना कठिन था।

13.3.3 आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन

ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ 1687 से मानी जाती है जब मद्रास में एक नगर निगम की स्थापना की गई। 1687 से उसका इतिहास कई उतार-चढ़ाव से प्रभावित रहा है। हर काल की अपनी एक विष्टिता रही है तथा कुछ निश्चित उद्देश्य रहे हैं।

13.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल

भारत में नगरीय शासन की प्रारम्भ सन् 1687 से माना जाता है, जब इस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा सन् 1687 में मद्रास में नगर निगम की स्थापना की गई। इसे करों के संग्रह के अलावा दीवानी व फौजदारी मामलों का अभिलेख न्यायालय भी बनाया गया था। सन् 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में भी नगरपालिका निकायों की स्थापना की गई। सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अंतर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों में 'जस्टिश ऑफ पीस' की नियुक्ति की गई, जिनका कार्य अपने नगरों की सफाई व्यवस्था और स्वास्थ की व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण करना था। सन् 1793 के अधिकार-पत्र अधिनियम द्वारा इन प्रेसीडेन्सी नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना का उत्तरदायित्व गवर्नर जेनरल को सौंपा गया। उसे इस हेतु मद्रास, बम्बई व कलकत्ता में शांति दण्डाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार भी दिया गया। सन् 1863 में कलकत्ता में भी नगर निगम की स्थापना की गई। वर्ष 1870 स्थानीय शासन के विकास की दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण रहा। सन् 1970 के रॉयल चार्टर के माध्यम से भारत के तीनों प्रेसीडेन्सी नगरों मद्रास, बाम्बे तथा कलकत्ता में मेयर कोर्ट की स्थापना की गई। ये कोर्ट प्रशासनिक कम और न्यायिक अधिक थे। सन् 1842 में बंगाल अधिनियम पारित हुआ, जिसके माध्यम से नगर समिति का गठन किया गया। इसका उद्देश्य नगर की सफाई व्यवस्था की देख-रेख करना था, परन्तु यह सफल न हो सका। सन् 1850 में सम्पूर्ण भारत के लिए एक अधिनियम पारित किया गया, जिसका उद्देश्य नागरिकों के आवेदन के आधार पर स्थानीय समितियों का गठन

करना था, जो कि स्वास्थ्य तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करें। परन्तु यह समिति भी ऐच्छिक ही थी, जो कि स्थानीय लोगों की मांगों के आधार पर बनाई जानी थी।

सन् 1863 में रॉयल आर्मी सेनिटेशन आयोग के द्वारा सरकार का ध्यान शहरों में फैलती गंदगी की ओर आकृष्ट किया गया, जिसके उपरान्त सरकार ने विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों को यह अधिकार सौंप दिया कि वे अपने प्रांत के अधीन आने वाले नगरों में निगमों की स्थापना कर सकते हैं। वे इन निगमों के सदस्य के रूप में न्यूनतम पांच तथा उससे भी अधिक सदस्यों की नियुक्ति कर सकते हैं।

सन् 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव को प्रकाशित किया गया, जिसमें यह कहा गया कि शासन का विकेन्द्रीकरण करने के लिए प्रान्तों को अधिक शक्तियाँ दी जाये तथा भारतीयों का प्रतिनिधित्व भी बढ़ाया जाए। इस प्रस्ताव के अंतर्गत स्थानीस निकायों में चुनाव कराए जाने के सिद्धान्त को भी लागू करने पर बल दिया गया। इस सिद्धान्त के लागू होने पर न केवल नगरीय स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा मिला, बल्कि स्थानीय वित्त की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। परन्तु व्यवहार में चुनाव के सिद्धान्त को कहीं आंशिक तो कहीं-कहीं पूर्ण रूप से अपनाया गया और अधिकतम मामलों में सदस्य मनोनीत ही किए जाते रहे। यह स्थानीय शासन की व्यवस्था तो कहीं से भी नहीं बन पायी, परन्तु इतना अवश्य सम्भव हो गया कि कुछ स्थानीय प्रबुद्ध वर्गों को सरकार द्वारा मनोनीत कर लिया गया, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जा सके। परन्तु सरकार पूर्ण रूप से इन निगमों पर अपना नियंत्रण स्थापित किए हुए थी।

लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण तथा भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर बल देते हुए इस हेतु नगर प्रशासन को सर्वाधिक उपयुक्त मानकर म्युनिसपल संस्थाओं को सशक्त बनाने का सुझाव दिया गया। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस काल में स्थानीय शासन को केन्द्र तथा प्रान्तों के वित्तीय बोझ को हल्का करने का साधन माना जाता रहा और इसी रूप में उसका प्रयोग किया जाता रहा। इस काल में निगमों के विकास को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की मंशा कहीं से भी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करना नहीं थी, बल्कि इनका प्रयोग केवल सरकार के हितों में ही किया गया, जिससे सरकार पर पड़ रहे अतिरिक्त वित्तीय बोझ को हल्का किया जा सके। इन इकाइयों में ब्रिटिश लोगों का प्रतिनिधित्व अधिकतम था और भारतीयों को केवल नाममात्र प्रतिनिधित्व दिया गया।

13.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल

1880 में लार्ड रिपन भारत के वाइसराय बनें। भारत में नगरीय शासन के विकास का अगला चरण लॉर्ड रिपन के प्रसिद्ध प्रस्ताव से होती है जो 18 मई 1882 में दिया गया। इनके शासनकाल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 1882 का स्थानीय स्वशासन का प्रस्ताव था। इस प्रस्ताव को स्थनी स्वशासन के विकास में एक मील का पत्थर माना जाता है। यह भारत में स्थानीय शासन का आधार बना और इसी लिए लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय शासन का जनक भी माना जाता है। रिपन देश के नगरपालिकाओं को विकसित करना चाहते थे। उसके अनुसार इन्हीं संस्थाओं से देश की राजनीतिक शिक्षा का आरम्भ हो सकता है। इस प्रस्ताव में यह सुझाव दिया गया कि संपूर्ण भारत में स्थानीय निकायों की जाल बिछा दी जाए; सरकारी प्रतिनिधियों की संख्या कुल प्रतिनिधियों की तिहाई कर दी जाए; वित्तीय विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए; तथा चुनाव को स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के गठन का आधार बना दिया जाए। इनका मुख्य उद्देश्य देश के प्रशासन को ही उत्तम बनाना नहीं था, बल्कि राजनीतिक और लोगों की शिक्षा का साधन बनाना भी था। ग्रामीण प्रदेशों में स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिला उपविभाग, तालुका अथवा तहसील बोर्ड बनाने की स्वीकृति मिली। इन स्थानीय निकायों को निश्चित कार्य दिए गए और आय के साधन भी चिन्हित कर दिए गए। इन संस्थाओं में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखे जाने पर बल दिया गया। सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के उद्देश्य से आशा की गई कि सरकार इन्हें आदेश न दें बल्कि इनका मार्गदर्शन करे। बोर्ड के अध्यक्ष इन्हीं निकायों के सदस्यों द्वारा चुने जाए। प्रस्ताव को प्रत्येक प्रांत को

अपनी परिस्थितियों के अनुसार लागू करने का सुझाव दिया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1883-85 के बीच अनेक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किए गए। प्रारम्भ में लॉर्ड रिपन के इन सुझावों ने नगरीय शासन में बड़े पैमाने पर सुधार लाया। बड़े पैमाने पर चुने हुए प्रतिनिधि व अध्यक्ष अस्तित्व में आए। परन्तु समय के साथ-साथ इन सुधारों पर प्रशासन की रूढ़ीवादिता हावी हो गई। नौकरशाही भारतीयों को स्वशासन के योग्य नहीं समझती थी। लॉर्ड कर्जन ने इन सभी उदारवादी नीतियों का विरोध किया तथा स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ा दिया। लॉर्ड कर्जन की दृष्टि में यह सुधार बहुत अधिक क्रांतिकारी थे, जिनसे प्रशासनिक कुशलता प्रभावित हो रही थी इसलिए उन्होंने राजीनतिक शिक्षा के स्थान पर प्रशासनिक कुशलता को अधिक महत्व दिया। उपायुक्त इन संस्थाओं पर हावी होने लगे जिनके पास इन संस्थाओं पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण का अधिकार था। चुनाव भी सफल न हो सके, क्यों कि यह व्यस्क मताधिकार नहीं था। चुनाव में नगर की कुल दो प्रतिशत जनसंख्या ही हिस्सा ले सकती थी। इस प्रकार लॉर्ड रिपन द्वारा किए गए सुधार आंशिक रूप से ही सफल हो सके। लॉर्ड रिपन के शिक्षित करने का सिद्धान्त अधुरा रह गया और पूरा ध्यान प्रशासनिक कार्यकुशलता पर केन्द्रित कर दिया गया। उपायुक्त ही पूरे जिले में प्रभावशाली रह गया। लोगों में इतनी नागरिक चेतना का अभाव दिखा कि वे इन स्वशासन की इकाइयों को भली-भाँति संचालित कर सके। परन्तु लॉर्ड रिपन का योगदान खाली नहीं गया। उनके द्वारा किए गए सुधारों को वर्तमान में भी स्वशासन का आधार माना जाता है।

सन् 1907 में स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया जब 'विकेन्द्रीकरण पर रॉयल आयोग' की स्थापना की गई, जिसका कार्य केन्द्र, प्रान्त तथा इसके अधिनस्थ इकाइयों के मध्य वित्तीय व प्रशासनिक सम्बन्धों का अध्ययन करना था। आयोग ने स्थानीय स्वशासन के विषय का गहन अध्ययन किया तथा इनकी विफलता के लिए निम्न निष्कर्ष निकाले- अत्यधिक सरकारी नियंत्रण; मताधिकार का अधिकार का संकुचित होना; अत्यल्प संसाधन; शिक्षा और प्रशीक्षण का अभाव; योग्य और समर्पित लोगों की कमी; सेवाओं पर स्थानीय निकायों का अपर्याप्त नियंत्रण। रॉयल कमीशन ने रिपोर्ट में लिखा कि धन का अभाव ही स्थानीय संस्थाओं के प्रभावशाली ढ़ंग से काम न करने में प्रमुख बांधा बनी हुई है। आयोग ने स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूत बनाने हेतु अनेक सुझाव दिए।

अतः शक्ति के विकेन्द्रीकरण और क्रमिक लोकतांत्रिकरण के लिए आयोग ने निम्न सिफारिशें की- अध्यक्ष गैर-सरकरी जन प्रतिनिधि हो; अधिकतम सदस्य गैर-सरकारी जन प्रतिनिधि हों; स्वशासन की इकाइयों को अधिक वित्तीय स्वायत्ता तथा बजट पर नियंत्रण प्रदान किया जाए; बड़े नगरपालिकाओं को और भी अधिक शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे अधिशासी अधिकारियों के साथ ही साथ शिक्षित स्वास्थ्य अधिकारियों को नियुक्त कर सकें।

1915 में भारतीय सरकार के प्रस्ताव में इन सिफारिशों पर प्रतिक्रिया दी गई। प्रस्ताव में नए करों का सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया और आयोग के सुझाव केवल कागज़ी कार्यवाही ही बने रहे। 28 अप्रैल 1915 के प्रस्ताव में भारत सरकार ने इन सुझावों के क्रमिक कार्यन्वयन का सुझाव दिया। पंजाब वह पहला प्रांत था जिसने सर्वप्रथम रॉयल आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1911 में नगरपालिका अधिनियम पारित किया। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों ने भी अधिनियम पारित किए। इस अधिनियम के तहत नगरपालिकाओं पर सरकारी नियंत्रण को कम करने, चुनाव की प्रक्रिया को अपनाने तथा चुनाव के माध्यम से अध्यक्ष को चुनने की व्यवस्था की गई थी। परन्तु व्यवहार में नगरीय शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया क्यों कि यह भी प्रयास किया गया था कि इसके पूर्व के अधिनियमों के प्रावधानों को पूर्ण रूप से न खारिज किया जाए। 1908 से लेकर 1918 तक चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो दूर की बात थी, बल्कि इसमें कमी आने लगी थी। भारत शासन अधिनियम 1909 में विधान परिषदों में साम्प्रदायिक मतदान की व्यवस्था की गई थी। 1910 में मुस्लिम लीग ने स्थानीय चुनावों में भी साम्प्रदायिक आधार पर मतदान करवाने की मांग की। कई मामलों में साम्प्रदायिक मतदान को स्वीकार भी कर लिया गया परन्तु इसने स्थानीय शासन की व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिससे इसका

विकास अवरूद्ध हो गया। मई 1918 में मॉन्टफोर्ड सुझाव में कहा गया कि स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बना दिया जाए। उन पर नियंत्रण कम हो और उन्हें गलतियों से सीखने दिया जाए। रॉयल कमीशन के सुझावों को उन्होंने पृष्ठांकित किया तथा नगरपालिकाओं को कर लगाने के अधिक अधिकार दे दिये गये।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस चरण में नगरीय शासन के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसके कारण लोकतंत्र का प्रसार हुआ और स्थानीय निकायों को वित्तीय दायित्व भी सौंपे गये।

13.3.3.3 सन् 1927 से 1937 तक का काल

इस काल में भारत तथा ब्रिटेन में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का दबाव बढ़ता जा रहा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता के समर्थन की आवश्यकता थी इसलिए ब्रिटिश सरकार ने 20 अगस्त 1917 की ऐतिहासिक घोषणा की जिसके द्वारा भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भागीदारी का अवसर प्रदान करने की बात की गई तथा स्थानीय शासन के माध्यम से भारत में उत्तरदायी सरकार के निर्माण पर बल दिया गया। सन् 1918 के मॉन्टेग-चेम्सफॉर्ड प्रतिवेदन में स्वशासन को पूर्णतः प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनाए जाने की सिफारिश की गई। इसी आधार पर 16 मई 1918 के भारत सरकार के प्रस्ताव में प्रान्तों को यह सुझाव दिया गया कि नगरपालिका बोर्डों में अधिकतम सदस्य निर्वाचित हों, मतदान के अधिकार को और भी नीचले स्तर तक ले जाया जाए जिससे अधिकतम लोगों को यह अधिकार प्राप्त हो सके और साथ ही साथ इन निकायों का अध्यक्ष भी गैर-सरकारी तथा निर्वाचित हो। क्योंकि अब तक केवल नगरों के छः प्रतिशत लोगों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था तथा दो तिहाई अध्यक्ष सरकारी अधिकारी ही थे। बोर्डों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे संवैधानिक दायरे में रहते हुए स्थानीय करारोपण कर सकते हैं परन्तु व्यय बजट द्वारा तय सीमा तक ही की जा सकेगी। उन्हें यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे किस मद में कितने राजस्व का व्यय करेंगे उसका निर्धारण वे स्वयं करें। बाहरी नियंत्रण को भी सीमित कर दिया गया। सरकार केवल उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करेगी जब उसे ऐसा प्रतीत होगा कि कोई बोर्ड अपने कार्यों का संचालन करने में अयोग्य हो गई है। अल्पसंख्यकों को पृथक मताधिकार न प्रादन कर उन्हें मनोनीत करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। हालांकि पंजाब प्रान्तमें इसे अपनाने का प्रयास किया गया परन्तु इस कार्य में असफल होने के बाद पुनः पृथक मताधिकार प्रदान करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। इसके पश्चात कई नगरों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अपनाई गई।

भारत शासन अधिनियम 1919 ने द्वैध-शासन व्यवस्था को स्थापित किया। स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी लोकप्रिय मंत्री के अधीन रख दिया गया। इस अधिनियम के तहत करों की एक सूची तैयार की गई जिसे केवल स्थानीय निकाय ही आरोपित कर सकते थे तथा वे कर केवल स्थानीय निकायों के लिए ही लगाए जा सकते थे। इससे स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई। कई प्रान्तों में नगरपालिका अधिनियमों में संशोधन भी किया गया जिसके द्वारा इन स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई, निकायों को और भी अधिक प्रतिनिधिक बनाया गया और गैर-सरकारी अध्यक्षों की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। इन प्रयासों ने निःसंदेह स्थानीय स्वशासन को और भी अधिक लोकतांत्रिक बनाया परन्तु प्रशासनिक कार्यकुशला पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा। कई नगरपालिकाओं पर भ्रष्टाचार के मामले चलने लगे। यह महसूस किया गया कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भ्रष्टाचार और कार्यकुशला में गिरावट का मुख्य कारण यह था कि जब इन निकायों को सलाह, मार्गदर्शन और नियंत्रण की आवश्यकता सबसे अधिक थी, तब इन्हें सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। अतः प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ाने और भ्रष्टाचार पर आवश्यक अंकुश लगाने हेतु प्रांतीय सरकारों को नगरपालिका कार्यकारी अधिकारी का पद सृजित करने के लिए कहा गया। 1920 में 1919 के भारत सरकार अधिनियम लागू होने पर स्थानीय शासन हस्तांतरित विषय बन गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय शक्तियों के अधीन हो गया। केन्द्रीय सरकार ने प्रांतीय सरकारों को इस विषय में निर्देश देने बंद कर दिए और प्रत्येक प्रांत को अपनी-अपनी आवश्यकता अनुसार स्वयत्त संस्थाओं का विकास करने की

अनुमति मिल गई। स्थानीय करों व प्रांतीय कारों की सूची को अलग कर दिया गया। परन्तु वित्त अभी भी आरक्षित विषय था, अतः भारतीय मंत्री इस विषय में कुछ नहीं कर सके। स्वशासन की इस क्रियान्विति का मूल्यांकन1930 में साइमन आयोग ने किया और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि उत्तर प्रदेश, बंगाल व मद्रास के अतिरिक्त तथा ग्राम पंचायतों के क्षेत्र में इन संस्थाओं में कोई उन्नति देखने को नहीं मिली। स्वायत्त संस्थाओं की दशा 1919 के बाद बिगड़ गई है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन स्वायत्त संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण बढ़ा देना चाहिए। इस काल में प्रान्तों द्वारा जो विभिन्न अधिनियम बनाये उनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएं थीं- स्थानीय संस्थाओं का गठन प्रायः पूर्णरूप से निर्वाचन के आधार पर रखते हुए निर्वाचक मण्डल का भी विस्तार किया गया; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर-सरकारी व्यक्ति की नियुक्ति को स्वीकृति दी गई; स्थानीय संस्थाओं को अधिक प्रशासनिक श्क्तियाँ प्रदान की गई; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को वित्तीय क्षेत्र में पहले से अधिक शक्तियाँ दी गई थीं।

अतः यह देखा जा सकता है कि इस काल में नगरीय स्वशासन के निकायों को लोकतांत्रिक आधार पर संचालित करने के प्रयास किये गये जिससे स्थानीय प्रशासनिक कार्यकुशलता में कमी आई। इस काल में नगरीय निकायों के कार्यपद्धति को न ही पूर्ण रूप से विफल और न ही सफल माना जा सकता है। कुछ प्रान्तों में इन निकायों के द्वारा अच्छा प्रदर्शन किया गया तो कुछ प्रान्तों में यह प्रयोग विफल हो गया।

13.3.3.4 सन् 1937 से 1947 तक का काल

इस काल में स्थानीय शासन जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण की अवस्था में था। भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रांतीय स्वायत्तता ने नगरपालिकाओं को और भी प्रोत्साहन प्रदान किया। इस अधिनियम के माध्यम से प्रान्तों में द्वैद शासन को समाप्त कर दिया गया। स्थानीय सरकार को प्रांतीय विषय के रूप में मान्यता दे दी गई। परन्तु इस अधिनियम में स्थानीय सरकारों के लिए कोई कर की व्यवस्था नहीं की गई थी। इस परिवर्तन से स्थानीय सरकारों को नुकसान हुआ, क्योंकि जिन करों का रोपण पूर्व में पूर्णतयः स्थानीय माना जाता था, उन करों के रोपण का अधिकार भी प्रांतीय सरकारों को मिल गया। इसी दौरान द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारम्भ 1939 में हो गया जिसके कारण प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त होने के बावजूद भी स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि सभी का ध्यान स्थानीय स्वशासन से उठ कर केवल सुरक्षा तक ही सीमित रह गया जिसकी देख-रेख पूर्णरूप से जिला प्रशासन के स्तर से होनी थी। सन् 1947 में ब्रिटिश भारत को छोड़कर चले गए और स्थानीय निकायों का विकास पूर्ण रूप से कर पाने में अक्षम रह गए। 1935 के अधिनियम को 1937 में प्रांतीय भाग में लागू किए जाने से प्रान्तों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को और भी अधिक गति मिली। लोकप्रिय सरकारें वित्त का नियंत्रण करती थीं और इसीलिए इन संस्थाओं को अधिक धन उपलब्ध करा देती थीं, प्रांतीय स्थानीय करों के बीच जो पृथक्कीकरण था वह समाप्त हो गया। लगभग सभी प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। परन्तु उनकी कर लगाने की शक्तियाँ लगभग वही रहीं, अपितु कुछ कम कर दी गई अर्थात चुंगी बढ़ाने, व्यापारों, व्यवसायों तथा संम्पत्ति पर कर लगाने की शक्तियाँ कम कर दी गई। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशों को अनदेखा कर दिया गया। स्वतंत्रता के सम्य नये करों को लगाने के लिए प्रान्तीय सरकारों से आज्ञा लेनी आवश्यक थी।

13.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास

15 अगस्त सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी सन् 1950 में भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसमें भारत को एक सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित किया गया। स्वतंत्र होने के उपरान्त भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाया जाए। इस निश्चय से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास की नवीन आशाएं बंधीं। भारतीय संविधान में स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा

गया। संविधान के चौथे अध्याय राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत अनुच्छेद- 40 में राज्य को निर्देशित किया गया कि वह ग्राम पंचायतों का गठन अधिक अच्छे ढ़ंग से करे और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में अधिक अच्छे ढ़ग से कार्य करने के लिए समर्थ बनाने की भावना से उन्हें आवश्यक शक्तियाँ प्रादान की जानी चाहिए, परन्तु नगर स्थानीय निकायों के बारे में कोई निर्देश नहीं था। नगर स्थानीय इकाइयों का संदर्भ केवल संविधान की राज्य तथा समवर्ती सूचियों में पाया जाता है। राज्य सूची में क्रमांक05 पर यह अंकित है, ''स्थानीय शासन अर्थात् स्थानीय स्वशासन अथवा ग्राम प्रशासन हेतु नगरमहापालिकाओं, इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों, जिला बोर्ड़ों, खनन बंदोबस्त सत्ताओं तथा अन्य स्थानीय सत्ताओं का गठन तथा शक्तियाँ।'' समवर्ती सूची के क्रमांक 20 पर ''आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन'' अंकित है, जिसके अंतर्गत स्वाभाविक रूप से नगर नियोजन भी आता है। इस प्रकार मूल रूप से संविधान, नगर स्थानीय शासन को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में रखता है और केन्द्र सरकार की भूमिका न्यूनाधिक रूप में परामर्शदाता तथा उत्प्रेरक की है।

स्वतंत्र भारत में एक दशक तक नगरीय शासन के क्षेत्र में महानगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में नगर परिषद् या नगरपालिकाएं जिस रूप में ब्रिटिश विरासत से प्राप्त हुई थीं, उसी रूप में निरन्तर क्रियाशील बनी रहीं। यह आशा की जा रही थी कि स्वतंत्र भारत में स्थानीय इकाइयाँ राष्ट्रीय नीतियोंके निर्माण में सहायक सिद्ध होंगी। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त न होने के कारण इसकी शक्तियाँ, कार्य और इसकी भूमिका पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों तक भी नगरीय स्वशासन की स्थिति कमोबेस वही बनी रही। हालांकि इसमें सुधार के प्रयास जारी रहे। यह बड़े आश्चर्य का प्रश्न है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का कोई उल्लेख राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में भी नहीं किया गया था और न ही योजना आयोग द्वारा इस पर कोई ध्यान दिया गया। सर्वप्रथम तीसरे पंचवर्षीय योजना में इसका जिक्र किया गया। इससे पूर्व प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में केवल यह आलोचना की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ अपने दायित्वों का निर्वाह करने में सफल नहीं हो पा रही हैं। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत यह विश्वास जताया गया कि नगरीय शासन तथा नगरों की समस्याओं का समाधान नगरीय स्वशासन की इकाइयों के द्वारा ही सम्भव है। नगरों का विस्तार हो रहा है और नगरीय जीवन के स्तर को सुधारने का कार्य इन्हीं इकाइयों के द्वारा सम्भव हो सकता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय भूमि के मूल्य नियंत्रण, नगर विकास के लिए मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मापदण्ड निर्धारण व विकास कार्यक्रमों के लिए इन संस्थाओं को उत्तरदायी बनाया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ग्राम-नगर सम्बन्ध समिति तथा नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति(Committee on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार किया गया कि राज्य सरकार स्थानीय स्तर पर संसाधनों में वृद्धि करने हेतु आवश्यक कदम उठाए। सप्तम् पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग केवल आलोचक की भूमिका में दिखती है। इस पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग का यह कहना था कि नगरीय जीवन स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है, जिसका कारण यह है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ निष्क्रिय हो गई हैं और वित्तीय संकट के कारण वे अपना कार्य कर पाने में भी सक्षम नहीं हो पा रहीं हैं। परन्तु हम केन्द्र व राज्य सरकारों पर ही दोषारोपण नहीं कर सकते, क्योंकि उनके द्वारा कई प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं जिन्हें निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है।

13.4.1 केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियाँ और आयोग

नगरीय स्वशासन की कार्यशैली के अध्ययन हेतु समय-समय पर केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न समितियों व आयोगों का गठन किया गया जो कि निम्नवत् हैं-

1. **स्थानीय वित्तीय जाँच समिति(The Local Finance Enquiry Committee) सन् 1949-51-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि स्थानीय निकायों हेतु कर व्यवस्था अलग से कर दी जाए, जिसमें राज्य अथवा केन्द्र किसी का कोई हस्तक्षेप न हो।

2. **कर जाँच आयोग(The Taxation Enquiry Commission) 1953-54-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का खर्च उनके आय से कहीं अधिक है, इसलिए उनके आय हेतु अलग से कर व्यवस्था सुनिश्चित की जाए जिसपर क्सिी का कोई हस्तक्षेप न हो।
3. **नगरपालिका कर्मचारियों की प्रशिक्षण समिति(The Committee on the Training of Municipal Employees) 1963-** इस समिति ने प्रशिक्षण पर बल देते हुए नगरपालिका कर्मचारियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया कि इसके लिए केन्द्र और राज्य के स्तर पर अलग-अलग प्रशिक्षण संस्थानों की व्यवस्था की जाए। इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार ने मुनिसिपल प्रशासन में प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र की स्थापना आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली में कर दी। इसके तुरन्त बाद प्रांतीय प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र का निर्माण लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; उस्मानिया विश्वविद्यालय, हायद्राबाद; इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ शोसल वेलफेयर एण्ड बिजनेस मैनेजमेन्ट, कलकत्ता; तथा ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट, बाम्बे में कर दिया।
4. **ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति(The Rural-Urban Relationship Committee) 1963-66-** इस समिति का प्रतिवेदन तीन अंकों में आया जिसके तहत विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई जैसे- नगरीय विकास तथा योजना निर्माण हेतु मशीनरी; नगरीय स्थानीय निकायों की संरचना; नगरपालिका कार्मिकों की व्यवस्था; नगरीय स्थानीय निकायों का वित्त; नगरीय सामुदायिक विकास में जन भागीदारी; राज्य सरकार और नगरीय स्थानीय निकायों के मध्य सम्बन्ध; तथा ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध। मुख्यतः इस समिति की सिफारिश यह थी कि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के मध्य परस्पर सहयोग और अंतर्निभरता को बढ़ावा दिया जाए।
5. **नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति(The Committee of Ministers on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) 1963-** वित्तीय स्थिति को सुधारने हेतु इस समिति की यह सिफारिश थी कि नगरीय स्थानीय निकायों को करारोपण के लिए क्षेत्र निश्चित कर दिए जाएं; करारोपण के अतिरिक्त आय के श्रोतों को तैयार किया जाए तथा नगरों के विकास के लिए संवैधानिक नगरीय विकास बोर्डों की स्थापना की जाए।
6. **नगरपालिका कर्मचारियों के सेवा दशा पर समिति(The Committee on Service Conditions of Municipal Employees) 1965-68-** इस समिति के यह प्रस्ताव दिया गया कि राज्य के स्तर पर ऐसे कार्मिकों को तैयार किया जाए जो स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भली भाँति कार्य करने योग्य हों तथा उनकी सेवा दशा बेहतर हो जिससे वे अपने कार्य को सुचारू रूप से कर सकें।

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार समिति के द्वारा भी नगरीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूती देने पर बल दिया गया है। इसी क्रम में कई राज्य सरकारों के द्वारा भी समय-समय पर नगरीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने हेतु समितियों का गठन किया गया है। जैसे- असम में सन् 1969 में द फाइनान्सेज ऑफ मुनिसिपल कमिटी; दिल्ली में सन् 1948 में द दिल्ली मुनिसिपल ऑर्गनाइजेशन एन्क्वायरी कमिटी, कमिशन ऑन फाइनेन्सेज ऑफ मुनिसिपल कॉरपरेशन ऑफ दिल्ली, न्यू दिल्ली मुनिसिपल कमिटी 1968; गुजरात में द मुनिसिपल रैस्नलाइजेशन कमिटी 1961; हरियाणा में रिसोर्स कमिटी (लोकल बॉडिज) 1988, मुनिसिपल ग्रान्ट्स कमिशन। इसी प्रकार केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, पंजाब, तमिलनाडु आदि में भी कई समितियों और आयोगों का गठन किया गया जिसके माध्यम से नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने का प्रयास किया गया।

इसी क्रम में स्थानीय स्वशासन के केन्द्रीय परिषद् का भी नाम उल्लेखनीय है। 1948 में केन्द्रीय स्वस्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में केन्द्र सरकार के स्वस्थ्य मंत्रालय ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें यह प्रस्ताव पारित हुआ

कि प्रत्येक वर्ष सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री एक साथ संगोष्ठी का आयोजन करेंगे। स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् का गठन राष्ट्रपति द्वारा 1954 में किया गया जिसकी अध्यक्षता पहले केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री करते थे (वर्तमान में नगरीय विकास मंत्री करते हैं) तथा उसके अन्य सदस्य सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री होते हैं।

इसका कार्य स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना; स्थानीय स्वशासन के विधायी मामलों से जुड़े सुझाव देना; स्थानीय इकाइयों के वित्तीय संरक्षण हेतु केन्द्र को सुझाव देना; तथा विभिन्न राज्यों में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के कार्यों की विवेचना करना है। इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों के सशक्तिकरण हेतु समय-समय पर विभिन्न बैठकों, संगोष्ठियों तथा सेमिनारों का आयोजन भी किया जाता रहा है जैसे- द कान्फरेंसेस ऑफ ऑल इण्डिया कॉउन्सिल ऑफ मेयर्स; द मुनिसिपल कमिस्नर्स कान्फरेंस; कान्फरेंस ऑफ स्टेट मिनिस्टर्स ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट इत्यादि।

13.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय

सन् 1985 में स्थापित नगरीय विकास मंत्रालय नगरीय स्वशासन के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित हुआ। शुरूआत में नगरीय शासन स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया था। 1958 तक स्वास्थ्य मंत्रालय ही ग्रामीण व शहरी शासन की देखरेख करता था। सन् 1958 में इसे सामुदायिक विकास मंत्रालय के अधीन रख दिया गया। सन्1966 में नगरीय विकास को ''Works and Housing'' मंत्रालय के अधीन किया गया जो आगे चल कर ''Ministry of Works, Housing and Urban Development'' बन गया। 1967 में नगरीय शासन को पुनः स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखकर इसका नामकरण ''Ministry of Health, Family Planning, Works, Housing and Urban Development'' के रूप में कर दिया गया। 1973 में इसे ''Ministry of Works and Housing'' के अधीन कर दिया गया और अंततः इस हेतु अलग से एक मंत्रालय 1973 में गठित किया गया।

परन्तु नगरीय स्वशासन की समस्याओं का अंत तब तक सम्भव नहीं था, जब तक कि इसे संवैधानिक मान्यता न प्राप्त हो। इस क्रम में सन् 1989 में संसद में नगरपालिका बिल प्रस्तुत किया गया जो कि लोक सभा में तो पारित हो गया परन्तु राज्य सभा में पारित न हो सका। इसके उपरान्त पनुः प्रयास कर सन् 1992 में 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में यह पारित हो सका जिसने नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

अभ्यास प्रश्न-

1. ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ कब से माना जाता है?
2. भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन को कब संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ?
3. नगरीय विकास मंत्रालय की स्थापना कब हुई?
4. किस भारत शासन अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्तता की बात की गई?

13.5 सारांश

भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के विकास का इतिहास बहुत ही लम्बा रहा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक इसके रूप में बहुत परिवर्तन आया है। परन्तु ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास जिस रूप में हुआ उसने स्वतंत्र भारत के स्थानीय स्वशासन की नींव रखी और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नगरीय स्थानीय स्वशासन अपने मूल रूप में विकसित होने से पूर्व कई उतार-चढ़ाव से गुजरा। विभिन्न समितियों के सिफारिशों, संगोष्ठियों और प्रयासों के आधार पर नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विस्तार हुआ और अंततः इसे एक संवैधानिक रूप प्रदान किया जा सका।

13.6 शब्दावली

लोककल्याणकारी राज्य- जनता की भलाई करने वाली सरकार, समृद्ध- सम्पन्न, दोषारोपण- आरोप लगाना

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1687, **2.** 1992, **3.** 1985, **4.** 1935

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल, सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

13.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0 एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्टेªशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज, हैद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास का वर्णन कीजिए।
3. नगरीय स्वशासन के महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई- 14 नगरीय शासन

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं
14.3 नगर पंचायत
14.4 नगर परिषद
14.5 नगर निगम
14.6 अन्य नगर निकाय
    14.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति
    14.6.2 छावनी मण्डल
    14.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण
14.7 चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं
14.8 सारांश
14.9 शब्दावली
14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.13 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

भारत बड़ी ही तीव्र गति से आधुनिकीकरण और शहरीकरण की ओर बढ़ रहा है, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय और कई दशकों तक भारत को गावों का देश कहा जाता था। आधुनिकीकरण ने भारत की तस्वीर ही बदल डाली है। जिन क्षेत्रों में पहले गाँव देखे जाते थे, वे भी आज शहरों में बदलते जा रहे हैं। देश की अधिकतम जनसंख्या गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रही है। गाँवों में मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और सुख-सुविधा के साधन भी दुर्लभ होते हैं। गाँवों में सबसे बड़ी समस्या मुद्रा और रोजगार की होती है, क्योंकि ग्रामीण इलाकों में अनाज, दलहन, तेल आदि रोजमर्रा के जीवन में उपयोगी समझे जाने वाले संसाधन तो प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होते है परन्तु ग्रामीण लोगों के पास पैसों की भारी कमी होती है और रोजगार के अवसर भी लगभग शून्य ही होते हैं। इन समस्याओं का समाधान शहरों में आकर ही सम्भव हो पाता है। अतः भारी संख्या में गाँव के लोगों का शहरों की ओर पलायन होता है। इस पलायन के कारण शहरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है और कई छोटे-छोटे ग्रामीण बाजार भी शहरों में तब्दील होने लगते हैं। ऐसे में शहरों पर बढ़ते दबाव और शहरों की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि लोकतंत्र का प्रसार शहरों में भलीभँति हो सके, जिससे शहरों में वे मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें, जिनकी खोज में शहरों की तरफ गाँव के लोगों के द्वारा पलायन होता है। शहरों में इन मूलभूत सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त किया जाए, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर किया जाना सम्भव हो सके।

शहरी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों की प्रकृति एवं उनका प्रकार ब्रिटिश शासन की धरोहर मानी जा सकती है। भारत में स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक विकास का महत्वपूर्ण अंश भी माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के

पश्चात स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा गया। अतः भारत के सभी राज्यों में शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की संख्या एवं संगठन समान नहीं रही,यद्यपि इन निकायों में कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। तृतीय पंच वर्षीय योजना में राज्य सरकारों से नगरों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को विकसित करने हेतु वांछनीय स्त्रोत जुटाने में सहायता करने एवं अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की अपेक्षा की गई थी। शहरों में भूमि के मुल्यों पर नियंत्रण, शहरी विकास हेतु मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मानदण्ड निर्धारित करने का उत्तरदायित्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया। नगरीय स्थानीय प्रशासन की प्रशासकीय कुशलता बढ़ाने हेतु सुझाव देने के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न समितियाँ गठित की गई व उनके सुझावों से राज्य सरकारों को अवगत कराया गया।

लेकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में शहरों के नागरिकों को अपने स्वयं के मामलों का प्रशासन संचालित करने के लिए स्वशासन के व्यापक अधिकार देने हेतु नगरीय संस्थाओं के अधिक सशक्त बनाने एवं संवैधानिक दर्जा देने के लिए भारतीय संविधान में 74वाँ संशोधन किया गया जो 01 जून 1993 से लागू हो गया है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में एक नया भाग9 क 'नगरपालिका' जोड़ दिया गया है। इन संस्थाओं का उल्लेख 243 वें अनुच्छेद में है। 74वें संविधान संशोधन में तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई- नगर पंचायत, नगर परिषद तथा नगर निगम। परन्तु इस अधिनियम में भी कई ऐसे प्रावधान हैं जो कि राज्यों हेतु छोड़ दिया गया है। राज्य उक्त के सम्बन्ध में अपनी सुविधा के अनुसार कुछ नियमों का निर्माण कर सकते हैं जैसे- महिलाओं के आरक्षण के सम्बन्ध में 74वें संविधान संशोधनमें कुल सीटों की एक तिहाई सीटें महिलाओं हेतु आरक्षित रखने की बात की गई है, किन्तु कुछ राज्यों ने इससे आगे बढ़ते हुए महिलाओं को 50 प्रतिशत तक आरक्षण प्रदान किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि 74वें संविधान संशोधन के प्रावधान एक प्रतिमान के रूप में स्थापित किए गए हैं जिनके आधार पर ही राज्यों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों का संचालन किया जाना है। इस इकाई में हम सर्वप्रथम 74वें संविधान संशोधन की विशेषताओं का वर्णन करेंगे। उसके उपरान्त नगरीय स्वशासन की उपरोक्त इकाइयों का अध्ययन करेंगे तथा 74वें संविधान संशोधन केअंतर्गत नगरीय स्वशासन की व्यवस्था को विस्तार से समझेंगे।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- 74वें संविधान संशोधन के मुख्य लक्षणों को जान सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त भारत में नगरीय शासन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त नगरीय शासन में आए बदलाव को जान सकेंगे।

14.2 74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं को समझने के लिए इसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है-

1. नगरपालिकाओं को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- नगर पंचायत जो कि ग्रामीण से शहरी क्षेत्र की ओर संक्रमण कर रहे संक्रमाणकालीन क्षेत्र होते है, नगर परिषद् छोटे शहरी क्षेत्र होते है; तथा नगर निगम बड़े शहरी क्षेत्र होते हैं।
2. सदस्यों के निर्वाचन के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। शहर की जनसंख्या के अनुपात में अनुसुचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रखे जाते हैं। इनमें एक तिहाई स्थान अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं तथा सम्पूर्ण सदस्यों का एक तिहाई स्थान भी

महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है, परन्तु यदि राज्य चाहे तो अन्य पिछड़ा-वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान कर सकते हैं।

3. नगरपालिकाओं का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। कार्यकाल समाप्त होने के छः माह पूर्व ही नई नगरपालिका का चुनाव सम्पन्न कराए जाने की व्यवस्था है।
4. नगरपालिकाओं का चुनाव सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व राज्य निर्वाचन आयोग पर छोड़ा गया है।
5. नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर अनुसुचित जाति, अनुसुचित जनजाति एवं महिलाओं का स्थान किस प्रकार आरक्षित रहेगा, इसका निश्चय राज्य सरकार द्वारा कानून बनाकर किया जाएगा।
6. संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची जोड़ दी गई है जिसमें नगरपालिकाओं द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले विभिन्न प्रकार के कार्यों की सूची निश्चित कर दी गई है, जैसे- नगर योजना सहित शहरी योजना, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रम, सड़क एवं पुल, जल आपूर्ति, जनस्वास्थ्य इत्यादि।
7. अनुच्छेद- 243 म, में यह उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद- 243 झ, के अधीन गठित वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और अपनी सिफारिशें राज्यपाल को देगा।
8. जिला योजना के लिए समिति की स्थापना की व्यवस्था दी गई। इसके अनुसार प्रत्येक राज्ये में जिले के स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा, जो जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं को समेकित करेगी और पूरे जिले के लिए विकास योजना के लिए प्रारूप तैयार करेगी।
9. राज्य विधान-मण्डल विधि निर्माण द्वारा नगरपालिकाओं के लिए राज्य की संचित निधि में से सहायता अनुदान दे सकता है।
10. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाई गई है।

14.3 नगर पंचायत

नगर पंचायत के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर पंचायत का गठन-** एक लाख तक जनसंख्या वाले संक्रमणकालीन क्षेत्र अर्थात जो न पूरी तरह ग्राम हैं और ना पूरी तरह शहर अपितु ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र बनने की प्रक्रिया में हैं, उनमें नगर पंचायत के गठन की व्यवस्था की गई है। यह पूर्व में प्रचलित कस्बा क्षेत्र समिति का ही रूप है। संक्रमण क्षेत्र का निर्धारण राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व इत्यादि के आधार पर किया जा सकता है। राजस्थान में ऐसे क्षेत्रों को नगरपालिका कहा जाता है तथा अध्यक्ष/ सभापति को नगरपालिका अध्यक्ष कहा जाता है।
2. **नगर पंचायत की संरचना-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में व्यवस्था की गई है कि किसी नगरीय निकाय के सभापति का निर्वाचन राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार किया जाता है। इस अधिनियम के अनुसार सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा किया जाना है। प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को इस हेतु विभिन्न वार्डों में विभक्त किया जाता है। राज्य सरकार यदि चाहे तो नगरीय प्रशासन का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों, उस क्षेत्र के लोकसभा, राज्य सभा, विधान सभा या विधान परिषद के सदस्यों को भी स्थान दे सकती है। अनुसुचित जाति व जनजातियों के लिए उस नगर निकाय क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में स्थानों का आरक्षण किया गया है। कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई स्थान इन वर्गों की महिलाओं के लिए भी आरक्षित रखे गए हैं। इसी प्रकार नगर निकाय क्षेत्र के प्रत्यक्ष चुने जाने वाले स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए, अनुसूचित जाति व जनजातियों की महिलाओं के आरक्षण सहित, आरक्षित किए गए हैं। सभी आरक्षित स्थानों को चक्रानुक्रम से नगर निकाय क्षेत्र में

आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि राज्य सरकार कानून बनाकर नगर निकायों के अध्यक्ष/ सभापति के पद पर भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकती है। अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण का प्रावधान करने का अधिकार भी राज्य सरकारों को ही दे दिया गया है।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पूरे देश में नगर निकायों का कार्यकाल05 वर्ष निर्धारित किया गया है। यदि इस अवधि से पूर्व किसी नगर निकाय को भंग किया जाये तो उसे पूर्व में सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। भंग किये जाने पर 06 माह की अवधि में पुनः चुनाव कराने आवश्यक होंगे। ऐसी स्थिति में नव-निर्वाचित नगर निकाय केवल शेष अवधि तक ही कार्य करेगा। यदि भंग किये जाने के समय शेष अवधि छः माह से कम है तो नवीन निर्वाचन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. **नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ व उत्तरदायित्व-** नगर पंचायत एक निगमित निकाय है। नगरीय निकायों को सौंपे जाने वाले कार्यों को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नई अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर सूचीबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा नगर निकायों को ऐसी शक्तियाँ व प्राधिकार प्रदान कर सकता है जो उनको स्वशासन की संस्था के रूप में आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना व ऐसे कार्यों का निष्पादन करना सम्मिलित है जो उन्हें सौंपे जायें। राज्य विधान-मण्डल द्वारा नगर निकायों को विधि द्वारा करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग के लिए भी प्राधिकृत किया जा सकता है।

14.4 नगर परिषद

नगर परिषद के सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर परिषद का गठन-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा नगर परिषदों की स्थापना की व्यवस्था छोटे नगरों में की गई जो महानगर की श्रेणी में नहीं आते अर्थात् ये एक लाख से अधिक तथा 05 लाख तक की जनसंख्या वाले लघु शहरी क्षेत्र हैं।
2. **नगर परिषद की संरचना-** नगरपरिषदों के सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा की जाती है, जिस हेतु समस्त नगर परिषद प्रादेशिक क्षेत्र को वार्डों में विभाजित किया जाता है। वार्डों के प्रतिनिधि को पार्षद कहते हैं। नगर परिषद के अध्यक्ष के निर्वाचन की विधि राज्य विधान मण्डलों की इच्छा पर आधारित होती है। नगर परिषद में भी नगर पंचायतों/नगरपालिकाओं के समान ही अनुसुचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों के आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं। नगर परिषद का कार्यकाल भी पांच वर्ष निर्धारित किया गया है। कार्यकाल सम्बन्धी अन्य प्रावधान भी नगर पंचायत अथवा पालिकाओं के समान ही हैं। कार्य, शक्तियों और उत्तरदायित्व की भी एक समान व्यवस्था है। नगर परिषद की संरचना में परिषद, अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, अधिशासी अधिकारी एवं आयुक्तऔर समितियाँ आती हैं।
3. **नगर परिषद की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व-** नगर परिषदों को एक निगमित निकाय माना गया है अर्थात् इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। यह सम्पत्ति का क्रय तथा विक्रय कर सकती है। इसकी एक सामान्य मोहर भी होती है। यह किसी के विरूद्ध वाद ला सकती है तथा इसके विरूद्ध भी वाद लाया जा सकता है। नगर परिषद पर राज्य सरकार का नियंत्रण और पर्यवेक्षण रहता है।

नगर परिषदों के कार्य 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध कार्यों के क्षेत्राधिकार तक है। राज्य विधान मण्डल इन्हें ऐसी शक्तियाँ व उत्तरदायित्व सौंप सकता है, जो इन्हें स्वशासन की संस्थाओं के रूप में विकसित करे। राज्य विधानमण्डल इन्हें सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिए योजनाएं तैयार करने एवं इस हेतु

कार्यों के सम्पादन हेतु भी निर्देशित कर सकता है। इन्हें फीसों, शुल्कों, पथकरों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग हेतु प्राधिकृत किया जा सकता है। इन पर राज्य सरकार का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी रहता है।

14.5 नगर निगम

नगर निगम के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर निगम का गठन-** नगर निगम स्थानीय स्वशासन की शीर्षस्थ इकाई है, परन्तु नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सांगठनात्मक नहीं है। निगम अन्य स्थानीय निकायों की तुलना में सर्वाधिक सम्मानीय हैं तथा यह अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वयत्ता का उपयोग भी करता है। 74वें संविधान संशोधन द्वारा 05 लाख से अधिक जनसंख्या वाले बृहत् शहरी क्षेत्रों में निगम की स्थापना की व्यवस्था की गई है। राज्यों में निगमों की स्थापना राज्य विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा की जाती है। निगम का प्रमुख महापौर या मेयर कहलाता है। राज्य सरकार को नगर पंचायत तथा नगर परिषद की भाँति निगमों पर भी नियंत्रण व पर्यवेक्षण रखने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के अधिनियम में निगम की संरचना, शक्तियों, विभिन्न अधिकारियों व विभागों के मध्य शक्तियों के वितरण व निगम के भौगोलिक सीमाओं के विवरण का उल्लेख रहता है।
2. **नगर निगम की संरचना-** 05 लाख से ऊपर जनसंख्या होते हुए भी किसी नगर में नगर निगम की स्थापना की जाये अथवा नहीं, यह सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व, इत्यादि के आधार पर, जैसा वे ठीक समझें, लोक अधिसूचना के द्वारा निर्देशित कर सकते हैं। किसी भी नगर निगम के संगठन में निम्नलिखित चार घटक होते हैं- परिषद या बोर्ड, मेयर तथा उपमेयर अथवा महापौर तथा उपमहापौर, निगम आयुक्त और समितियाँ। 74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निगमों का कार्यकाल पूरे देश में एक समान 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। नगर निगमों में निर्वाचन की व्यवस्था तथा कार्यकाल सम्बंधी अन्य प्रावधानों की व्यवस्था अन्य नगरीय निकायों के समान ही 74वें संविधान संशोधन द्वारा रखी गई है।
3. **नगर निगम की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व-** नगर निगम एक कानूनी निकाय होता है। इसकी अपनी एक मोहर होती है। इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। इसे सम्पत्ति क्रय एवं विक्रय का अधिकार होता है तथा यह किसी के विरूद्ध 'वाद' ला सकता है। नगर निगमों को वे ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं जो राज्य विधान मण्डल द्वारा निगम निर्माण अधिनियम में उल्लेखित होते हैं। विभिन्न राज्यों में निगमों के कार्यों, शक्तियों व स्वायत्तता में भिन्ता है, यद्यपि एक सामान्य आधार मानकर ही निगमों को कार्य सौंपे जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास एवं सामाजिक आय से सम्बन्धित योजनाओं के निर्माण एवं निष्पादन का कार्य भी राज्य सरकारों द्वारा निगमों को प्रदान किया जा सकता है। निगमों के कार्य, शक्तियां एवं सीमा क्षेत्र (भौगोलिक) तथा स्वायत्तता नगर पंचायतों व नगर परिषदों की तुलना में अधिक व्यापक होते हैं। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संवैधानिक दर्जा प्राप्त उपरोक्त तीन नगरीय निकायों- नगर पंचायत, नगर पालिका, नगर परिषद् एवं नगर निगम के अतिरिक्त भारत में तीन प्रकार के अन्य नगरीय निकाय भी हैं। परन्तु इन्हें संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है। ये निकाय हैं- अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल, एकल उद्देशीय अभिकरण।

14.6 अन्य नगर निकाय

आईये अन्य नगर निकायों के अन्तर्गत हम निम्नाकिंत अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल और एकल उद्देश्यीय अभिकरण के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं-

14.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति

नवीन विकासशील शहरों अथवा पर्यटन स्थलों एवं सांस्कृतिक या ऐतिहासिक महत्व रखने वाले छोटेनगरों एवं कस्बों में, जहाँ राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि वहाँ नगर पालिका स्थापित नहीं की जा सकती, वहाँ क्षेत्रीय समितियाँ स्थापित की जाती हैं। राज्य सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी कर इन समितियों का गठन कर सकती है। इसलिए इन्हें अधिसूचित क्षेत्र समिति कहते हैं। इन पर राज्य के नगरपालिका अधिनियम के केवल वे ही नियम लागू होते हैं, जिन्हें सरकारी गजट में अधिसूचित किया जाता है। सदस्यों की संख्या का निर्धारण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता है। इन समितियों के सदस्य प्रायः सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं तथा इन सदस्यों में से ही राज्य सरकार द्वारा सभापति एवं उपसभापति की नियुक्ति करती है। उड़िसा में ऐसे क्षेत्रीय समितियों की संख्या सर्वाधिक है।

14.6.2 छावनी मण्डल

छावनी मण्डल केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित संस्था होती है। इसका तात्पर्य यह है कि छावनी मण्डल के संचालन पर केन्द्र सरकार के सुरक्षा विभाग का नियंत्रण होता है। इसके संचालन में राज्य सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। भारत में छावनी मण्डल की व्यवस्था ब्रिटिश शासन के दौरान ही 'छावनी मण्डल अधिनियम 1924' के द्वारा स्थापित हुआ था। इसके पश्चात सन् 1956 में इसे संशोधित किया गया। वर्तमान समय में भारत में लगभग 62 छावनी मंडल हैं।

संविधान की सातवीं अनुसूची में संघीय सूची की तीसरी प्रविष्टी में छावनी मण्डल के गठन् परिसीमन, शक्तियों तथा स्थानीय स्वशासन का प्रावधान है। छावनी मण्डल की स्थापना ऐसे स्थानों पर की जाती है, जहाँ सेना छावनी में रहती है। ऐसे स्थानों पर सेना की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु छावनी के आस-पास बाजार एवं असैनिक बस्तियाँ विकासित हो जाती हैं। अतः सैनिक छावनियों के निकट विकसित स्थानों पर स्थानीय प्रशासन को संचालित व नियंत्रित करने हेतु छावनी मण्डल स्थापित किए जाते हैं। अधिकतर छावनियाँ बड़ेबड़े नगरों के निकट होती हैं जैसे लखनऊ, आगरा, वाराणसी आदि में इस प्रकार की छावनियाँ देखी जा सकती हैं।

छावनी मण्डल में आधे सदस्य सेना के अधिकारी व आधे सदस्य असैनिक नागरिक होते हैं जो निर्वाचन के द्वारा सदस्य बनते हैं। छावनी मण्डल के सदस्यों की संख्या प्रायः 03 से 15 तक होती है। छावनी मंडल का अध्यक्ष/सभापति सैनिक छावनी का सर्वोच्च अधिकारी होता है तथा उपसभापति का निर्वाचन असैनिक नागरिकों में से किया जाता है। निर्वाचित असैनिक सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष है जबकि सैनिक अधिकारियों का कार्यकाल उनके पद पर बने रहने तक रहता है।

14.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण

नगरीय प्रशासन में केवल किसी एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए बनाये जाने वाले संगठनों को एकल उद्देशीय अभिकरण कहते हैं। इन अभिकरणों को पदत्त शक्तियों की सीमा क्षेत्र तक ये अभिकरण स्वायत्त होते हैं। इनके आय के स्त्रोत भी पृथक होते हैं। इन अभिकरणों की स्थापना के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि कुछ समस्याएं ऐसी होती हैं, जो नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण तेज़ी से बढ़ रही हैं जैसे जलाशय, मलमूत्र निस्तारण, कचड़े या गंदगी की समस्याएं आदि। नगरपालिकायें व नगर निगम इस प्रकार की सेवाओं के संचालन हेतु आवश्यक प्रशासनिक एवं तकनीकी सुविधाएं जुटा सकने में समर्थ नहीं हो पाती, क्योंकि उनके पास विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं की देख-रेख करनी होती है। ऐसे में एकल उद्देशीय अभिकरण महत्वपूर्ण हो जाते हैं। एकल उद्देशीय अभिकरण कई प्रकार के होते हैं जैसे- विकास प्राधिकरण, नगर विकास न्यास, आवासन मण्डल, बंदरगाह न्यास, इत्यादि।

1. **विकास प्राधिकरण-** विकास प्राधिकरण का गठन राज्य सरकार द्वारा अधिनियम के निर्माण के माध्यम से होता है। बड़े शहरों के विकास हेतु ऐसे प्राधिकरण बनाये जाते हैं जैसे दिल्ली विकास प्राधिकरण,

लखनऊ विकास प्राधिकरण, इत्यादि। इनका उद्देश्य क्षेत्र का समुचित, सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित विकास करना होता है। इस हेतु यह योजनाएं तैयार करता है तथा उनका निष्पादन करता है। विकास प्राधिकरण क्षेत्र के विकास हेतु अन्य प्राधिकरणों जैसे नगर परिषद या नगर निगम तथा आवासन मण्डल आदि के साथ भी भगीदारी करता है। इसका एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि यह क्षेत्र की विभिन्न विकास परियोजनाओं में समन्वयक की भूमिका का निर्वाह भी करता है। विकास प्राधिकरण के सभी सदस्य सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं। प्रायः राज्य का विकास मंत्री या राज्यमंत्री इसका अध्यक्ष होता है। इसके अन्य सदस्य सामान्यतः सरकारी अधिकारी होते हैं।

2. **नगर विकास न्यास-** महानगरों में क्षेत्रों के विकास हेतु विकास प्राधिकरण बनाए जाते हैं। इसी तर्ज पर महानगरों की अपेक्षा छोटे नगरों में नगर विकास न्यास अथवा सुधार न्यास स्थापित किये जाते हैं। इनकी स्थापना राज्य के विधानसभा द्वारा की जाती है। यह निगमित निकाय होते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि इनकी अपनी मोहर होती है और इनके पास शाश्वत उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति क्रय-विक्रय का अधिकार भी होता है। इनके कुछ सदस्य मनोनीत तो कुछ निर्वाचित भी हो सकते हैं। परन्तु मुख्यतः इसमें मनोनीत सदस्य ही होते हैं और सरकारी अधिकारियों की संख्या अधिक होती है। इनका कार्य सड़कों, पार्कों, खुले स्थानों, शौचालयों, बाजारों की व्यवस्था करना, जनता की रहन-सहन की दशा को सुधारना, भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों को लागू करना आदि होते हैं। नगर विकास/सुधार न्यास अपने विकास सम्बन्धी कार्य पूरा करने के पश्चात उस क्षेत्र की देख-रेख करने हेतु नगर परिषदों/ निगमों को हस्तांतरित कर देता है।
3. **आवासन मण्डल-** आधुनिक काल में गावों से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके कारण शहरों में जनसंख्या का दबाव भी निरन्तर बढ़ रहा है। अतः शहरवासियों को आवास सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। जैसे- महंगे भूखण्डों व किरायों की ऊची दरों आदि के कारण झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस समस्या के समाधान हेतु सरकार के द्वारा बड़े शहरों में आवासन मण्डल स्थापित किए जाते हैं, जो नगरों में व्यवस्थित एवं पर्यावरण की दृष्टि से स्वच्छ मकानों का निर्माण कर पानी, बिजली, ड्रेनेज आदि की सुविधाओं से युक्त कॉलोनियों का निर्माण कर मकानों की नीलामी द्वारा विक्रय करते हैं, साथ ही किराया-क्रय पद्धति के द्वारा उन लोगों को मकान देने की व्यवस्था करते हैं जो मकान की एकमुस्त राशि नहीं दे सकते। आवासन मण्डल के सदस्य भी सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं।
4. **टाउनशिप-** टाउनशिप ऐसे क्षेत्र में स्थापित किए जाते हैं, जिनका विकास औद्योगिक नगर के रूप में होता है। जैसे- भिलाई, जमशेदपुर, बोकारो, सिन्दरी, तालचेर, आदि। ऐसे औद्योगिक नगरों में उन्हीं उद्योगों में कार्यरत कर्मचारी व अधिकारी निवास करते हैं तथा उनकी आवासीय बस्तियाँ बस जाती हैं। अतः इन स्थानों के स्थानीय प्रशासन के संचालन हेतु टाउनशिप का निर्माण किया जाता है। टाउनशिप उस क्षेत्र में पानी, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, बाजार आदि की व्यवस्था करता है। सम्बन्धित उद्योगों के द्वारा ही इस हेतु वित्तीय व्यवस्था किया जाता है। ये टाउनशिप सरकार से भी अनुदान प्राप्त करते हैं। टाउनशिप का अध्यक्ष उद्योगों द्वारा मनोनीत होता है। अधिकांश सदस्य भी उद्योगों द्वारा ही मनोनीत होते हैं। कुछ निर्वाचित व कुछ सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य भी होते हैं। इन क्षेत्रों के नियंत्रण व पर्यवेक्षण हेतु सरकार द्वारा प्रशासक की नियुक्ति की जाती है।
5. **बंदरगाह न्यास-** बंदरगाह न्यास की स्थापना समुद्र के किनारे उन स्थानों पर की जाती है जहाँ बंदरगाह बने हुए हैं। वहाँ रह रहे नागरिकों की सुविधा हेतु स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में बंदरगाह न्यास की स्थापना की जाती है जैसे- विशाखापट्नम पोर्ट ट्रस्ट, कोचीन पोर्ट ट्रस्ट, आदि। पोर्ट ट्रस्ट अथवा

बंदरगाह न्यास का कार्य बंदरगाहों पर साफ-सफाई की व्यवस्था, समान उतारने-चढ़ाने की व्यवस्था, गोदाम की व्यवस्था सुनिश्चित करना तथा यात्रियों को सुविधा प्रदान करना होता है। पोर्ट ट्रस्ट का अध्यक्ष अथवा सभापति सरकार द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकरी होता है। अन्य सदस्यों में से कुछ सरकार द्वारा मनोनीत तथा कुछ व्यापारियों द्वारा निर्वाचित होते हैं।

14.7 चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं

चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की निम्नांकित व्यवस्थाऐं हैं। आईये विस्तार से इनका अध्ययन करते हैं।

1. **सदस्य एवं पीठासीन अधिकारी-** नगर स्थानीय इकाइयों में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं- निर्वाचित, मनोनीत तथा पदेन। नगर स्थानीय निकायों में मनोनीत अथवा पदेन सदस्य के रूप में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाले सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य स्थानीय निकाय के निर्वाचन क्षेत्रों, जिन्हें वार्ड कहा जाता है, से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं।

   मनोनीत सदस्य वे सदस्य होते हैं जिन्हें राज्य विधान-मण्डल, विधि द्वारा, प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है जिन्हें नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त हो। ऐसे सदस्यों को स्थानीय निकायों की चर्चाओं में भाग लेने का अधिकार तो होता है, परन्तु मत देने का कोई अधिकार नहीं होता।

   राज्य विधान मण्डल, विधि निर्माण द्वारा, निम्न प्रकार के व्यक्तियों को पदेन प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है- लोक सभा और विधान सभा के सदस्यों को उन निकायों में, जिनकी सीमाओं में उनके चुनाव-क्षेत्र पूर्ण अथवा आंशिक रूप में पड़ते हों; राज्य सभा और विधान परिषद के सदस्यों को, उन स्थानीय निकायों में जिनकी सीमाओं में वे मतदाता के रूप में पंजीकृत हों; तथा ऐसी समितियों के पीठासीन अधिकारी, जिनका प्रावधान राज्य विधान-मण्डल ने किसी भी नगर क्षेत्र के लिये किया हो।

   प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में पीठासीन अधिकारी की व्यवस्था होती है, परन्तु उनके निर्वाचन की विधि के सम्बन्ध में राज्य विधान-मडण्ल द्वारा निर्णय लिया जाता है।

2. **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन-** लोकतंत्र को तभी सफल बनाया जा सकता है जब निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष हो। इसलिए नगर स्थानीय निकायों के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन हेतु राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गयी है। एक ही राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ग्रामीण और नगरीय, दोनों स्थानीय निकायों का निर्वाचन सम्पन्न कराया जाता है।

3. **वार्डों की समितियाँ-** 74वें संविधान संशोधन में नगर स्थानीय निकायों में वार्डों की समितियों के गठन का निर्देश देखने को मलता है। ऐसी समितियाँ उन स्थानीय निकायों के क्षेत्रों में गठित की जाती हैं, जिनकी जनसंख्या तीन लाख अथवा उनसे अधिक हो। प्रत्येक वार्डों की समिति में नगर स्थानीय इकाई की सीमा के अंतर्गत अवस्थित एक या अधिक निर्वाचन वार्ड हो सकते हैं। प्रत्येक वार्डों की समिति का गठन, उसकी सीमाएं तथा उसके स्थानों को भरे जाने की विधि 74वें संशोधन में राज्य विधान मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। परन्तु यह संशोधन इतना अवश्य स्पष्ट करता है कि नगर स्थानीय निकाय का वह सदस्य, जो उन वार्डों की समिति के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो, स्वतः ही उस वार्ड समिति का प्रतिनिधि हो जाएगा और उस वार्ड की समिति का पीठासीन अधिकारी भी होगा। जहाँ इस प्रकार के सदस्य दो या दो से अधिक होगें, वहाँ वार्डों की समिति उनमें से किसी एक को पीठासीन अधिकारी निर्वाचित करेगी।

उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य विधान मण्डल किसी अथवा सभी नगर स्थानीय निकाय क्षेत्रों के लिए अन्य प्रकार की समितियों की स्थापना भी कर सकता है। इस प्रकार की समितियों के पीठासीन अधिकारी ही इस स्थानीय निकाय के पदेन सदस्य होते हैं, जिनके क्षेत्र में वो समितियाँ स्थित होती हैं।

4. **आरक्षण-** 73वें संशोधन के समान 74वाँ संविधान संशोधन में भी नगर स्थानीय निकायों में अनुसुचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गो तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। तदानुसार, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में भी सीधे निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से उतने स्थान आरक्षित होंगे, जो अनुपात उस निकाय क्षेत्र में, उनकी जनसंख्या का कुल जनसंख्या से है। पिछड़े वर्गों के पक्ष में भी सीधे भरे जाने वाले स्थान में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। परन्तु आरक्षण की विधि राज्य विधान मण्डलों पर छोड़ दी गई है, क्योंकि 74वें संशोधन के पारित होने के समय पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण पर उनकी नीति न बन सकी थी।

   जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न है, पत्येक स्थानीय निकाय में सीधे भरे जाने वाले स्थनों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं लिए आरक्षित कर दिए गए हैं। इसे कार्यरूप देने के लिए अनुसूचित जातियों के कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, पिछड़े वर्गो के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई तथा अनारक्षित स्थानों में से एक तिहाई क्रमशः उसी वर्ग के महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे, अर्थात अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े-वर्ग तथा अनारक्षित।

   यह निश्चित करने के लिए कि वही वार्ड बार-बार होने वाली निर्वाचनों में एक ही वर्ग के लिए आरक्षित न हो जाए, 74वाँ संविधान संशोधन आरक्षण के सिद्धान्त को चक्रानुक्रम में कार्यान्वित करने का निर्देश देता है।

   सदस्यों के समान नगर स्थानीय निकायों के पीठासीन आधिकारियों के पदों में भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, परन्तु आरक्षण की विधि का निर्णय राज्य विधान मण्डल पर छोड़ दिया गया है।

5. **कार्यकाल-** 74वें संविधान संशोधन के अनुसार, प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। इस अवधि से अधिक इसका विस्तारण नहीं किया जा सकता। 05 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही नए निर्वाचन कराना आवश्यक है। 05 वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही नगर स्थानीय निकायों को विघटित किए जाने की व्यवस्था है। 74वाँ संविधान संशोधन विघटन के कारणों का उल्लेख नहीं करता, वरन् मात्र यह कहता है कि ''विघटन से पूर्व, नगरपालिका को सुनवाई का तर्कसंगत अवसर प्रदान किया जायेगा।'' यदि किसी स्थानीय निकाय को विघटित किया जाता है, तो विघटन की तिथि से 06 माह के अन्दर नये निर्वाचन सम्पन्न किए जाने चाहिए तथा नव-निर्वाचित निकाय पूर्व निकाय, जिसके विघटन के कारण नया निर्वाचन हुआ है, के अवशेष कार्यकाल का ही उपयोग कर सकेगा। परन्तु यदि पूर्ववर्ती निकाय का कार्यकाल 06 माह से कम बचा है, तो नव-निर्वाचित निकाय पूरे 05 वर्ष के कार्यकाल का उपभोग करेगा।

6. **अधिकार तथा दायित्व-** अब तक नगर स्थानीय निकाय अपने अधिकारों के लिए पूर्णतयः अपनी राज्य सरकारों पर ही निर्भर थे। परन्तु 74वें संविधान संशोधन ने पहली बार उनके अलग अधिकारक्षेत्र की व्यस्था की है। इस अधिकार-क्षेत्र में उन्हें निम्नांकित दायित्व दिए गए हैं- आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाऐं बनाने का तथा उन कार्यो के सम्पादन और उन योजनाओं के कार्यान्वयन का जो उन्हें सौंपी जायें (बारहवीं अनंसूची में दिये कार्यों को सम्मिलित करते हुए)।

इनके अधिकार-क्षेत्र में जो मामले सौंपे गये हैं, उनका उल्लेख 12वीं अनुसूची में दिया गया है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के माध्यम् से भारतीय संविधान में जोड़ा गया है। इस अनुसूची में निम्नलिखित 18 विषय हैं- नगर नियोजन, भूमि प्रयोग का नियमन तथा भवनों का निर्माण, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नियोजन, मार्ग तथा पुल का निर्माण, गृह, औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यों के लिए जलापूर्ति, जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, मल-सफाई तथा ठोस अपशेष प्रबन्धन, अग्नि शमन सेवाऐं, नगर वानिकी, पर्यावरण की सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी मामलों की प्रोन्नति, समाज के दुर्बल वर्गों के, जिसके अन्तगर्त अपंग एवम् मानसिक रूप से अविकसित सम्मिलित हैं, हितों की रक्षा, झुग्गी-झोपड़ियों का सुधार तथा उच्चीकरण, नगर गरीबी उन्मूलन, पार्क, बगीचे, खेल-कूद के मैदान, सुख-साधन, सुविधाएं, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा सौन्दर्यपरक आयामों की प्रन्नोति, दफन तथा कब्रिस्तान, दाह संस्कार तथा शमशान तथा विद्युत शव दाहगृह, कांजी हाऊस, पशुओं पर निर्दयता पर रोक, महत्वपूर्ण सांख्यिकी, जिसमें जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण सम्मिलित है, सार्वजनिक सुख-साधन, जिसके अंतर्गत मार्ग, प्रकाश, गाड़ी खड़ी करने का स्थान, बस स्टॉप तथा जन- सुविधाऐं भी सम्मिलित हैं और पशु-बध स्थलों तथा चर्म शोधनशालाओं का नियमन।

7. **वित्तीय स्रोत तथा वित्तीय नियंत्रण-** इन निकायों के वित्तीय आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से 74वाँ संविधान संशोधन राज्य विधानमण्डल को विधि-निर्माण करने की सत्ता प्रदान करता है ताकि-
   - नगर स्थानीय निकायों को करों, शुल्कों, मार्ग करों तथा फीस आरोपित करने की सत्ता प्राप्त हो सके।
   - नगर स्थानीय निकायों को राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा एकत्रित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस प्रदान की जा सके, तथा
   - राज्य के संचित कोष से, सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की जा सके।

   राज्य वित्त आयोग को वित्तीय संसाधन संस्तुत करने का कार्य प्रदान कर दिया गया है। यह आयोग निम्न के बारे में सिद्धान्तों का निर्धारण करेगा- राज्य तथा नगर निकायों के मध्य राज्य सरकार द्वारा आरोपित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस से प्राप्त शुद्ध आय के वितरण की व्यवस्था तथा इस आय का विभिन्न स्तरों के स्थानीय निकायों के मध्य वितरण; उन करों, शुलकों, मार्ग करों तथा फीस का निर्धारण, जो कि नगर स्थानीय निकायों द्वारा आरोपित अथवा विनियोजित किये जा सकते हों; तथा राज्य के संचित कोष से स्थानीय निकायों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था।

   अधिक वित्तीय स्रोतों का अर्थ है कि इन पर कठोर वित्तीय नियंत्रण भी स्थापित किया जाए ताकि धन का दुरूपयोग न हो सके। अतः 74वाँ संशोधन राज्य विधान मण्डल को विधि द्वारा नगर स्थानीय निकायों के लेखों का अनुरक्षण, तथा इन लेखों के अंकेक्षण के बारे में प्रावधान बनाने का अधिकार प्रदान करता है।

8. **अपवाद-** 74वें संशोधन के प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद 244 के अंतर्गत गठित अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों तक लागू नहीं होंगें, जब तक कि संसद विशेष रूप से इसके प्रावधानों को इन क्षेत्रों पर लागू न कर दे। यह व्यवस्था इन क्षेत्रों में आवासित स्थानीय शासन की परम्परागत संरचना को बनाए रखने तथा उनकी रक्षा के लिए की गयी है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के द्वारा छेड़ना उचित नहीं माना गया।

   74वाँ संशोधन की व्यवस्थाओं का प्रभाव दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् के कार्यों तथा अधिकारों पर भी नहीं पड़ेगा, जिसका गठन पश्चिम बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जनपद के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए किया गया है।

9. **विकेन्द्रित नियोजनः जनपद स्तरीय एवं महानगर स्तरीय-** नगर स्थानीय शासन के पुनर्गठन के अतिरिक्त, 74वाँ संविधान संशोधन जनपद तथा महानगर स्तरों पर नियोजन का प्रावधान भी करता है। 74वाँ संशोधन जनपद स्तर पर जनपद नियोजन समिति के गठन की व्यवस्था करता है। इस समिति का गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल पर छोड़ दी गई है। परन्तु यह व्यवस्था की गई है कि जनपद नियोजन समिति के कुल स्थानों में 4/5 स्थान जिला पंचायत के सदस्यों तथा जनपद में नगर स्थानीय निकायों के सदस्यों से उस अनुपात में निर्वाचित होंगे, जो अनुपात जनपद में ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगर क्षेत्रों की जनसंख्या में पाया जाता हो। प्रत्येक जनपद नियोजन समिति का एक अध्यक्ष होगा तथा उसके चयन की विधि राज्य विधान-मण्डल की इच्छा पर छोड़ दी गयी है।

राज्य विधान-मण्डल, विधि के द्वारा, जनपद नियोजन समिति द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को निर्धारित कर सकता है, तथापि 74वाँ संशोधन विशेष रूप से इस समिति को दो कार्य प्रदान करता है- जनपद में ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनाओं को समेकित करना तथा सम्पूर्ण जनपद की विकास योजना का प्रारूप तैयार करना।

इस समिति को जनपद की विकास योजना का प्रारूप बनाते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत स्थानिक नियोजन, जल तथा अन्य भोतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी, आधारिक संरचना का विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित हैं; उपलब्ध वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों के प्रकार तथा उनकी मात्रा; तथा ऐसी संस्थाओं तथा संगठनों से परामर्श, जैसा कि राज्यपाल निर्धारित करें। एक बार जहाँ जनपद नियोजन समिति ने जनपद की विकास योजना का प्रारूप बना लिया, इसका अध्यक्ष इस योजना को राज्य सरकार के विचारार्थ अग्रसारित करेगा।

74वाँ संविधान संशोधन प्रत्येक महानगर नियोजन समिति की स्थापना का निर्देश देता है। इसका गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। तथापि 74वाँ संशोधन स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करता है कि महानगर नियोजन समिति के कम से कम दो-तिहाई सदस्य महानगर क्षेत्र में अवस्थित नगर स्थानीय इकाइयों के निर्वाचित सदस्यों तथा ग्रामीण स्थानीय इकाइयों के अध्यक्षों से उस अनुपात में चुनें जायेंगे, जो अनुपात महानगर क्षेत्र में ग्रामीण और नगर स्थानीय निकायों की जनसंख्या के मध्य हो। इसके अतिरिक्त, राज्य विधान-मण्डल महानगर समिति में केन्द्र तथा राज्य सरकार तथा साथ ही ऐसे संगठनों एवम् संस्थाओं के अधिकारियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगा, जैसा कि वह उचित समझे। महानगर नियेजन समिति का प्रमुख एक अध्यक्ष होगा, जिसके चयन की प्रक्रिया राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित किये जाने की व्यवस्था है।

महानगर नियोजन समिति को सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र की विकास योजना का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया है। नियोजन तथा समन्वयन के कार्यों का निर्धारण राज्य विधान मण्डल द्वारा किया जायेगा। विकास योजना का प्रारूप बनाते समय महानगर नियोजन समित को अग्रलिखित को ध्यान में रखना पड़ेगा- महानगर क्षेत्र ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनायें; नगर तथा ग्रामीण स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत क्षेत्र का समन्वित स्थानिक नियोजन, आधारिक संरचना का समन्वित विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित है; केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित किये गये कुल उद्देश्य एवम प्राथमिकताऐं; तथा महानगर क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य सरमाकर के अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले व्ययों की मात्रा तथा उनका स्वरूप तथा अन्य वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों की उपलब्धता। महानगर नियोजन समिति से यह भी अपेक्षा किया जाता है कि वह राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्धारित संस्थाओं और संगठनों से भी परामर्श करेगी।

महानगर नियोजन समिति द्वारा महानगर विकास योजना तैयार होने पर इसका अध्यक्ष इसे राज्य सरकार के विचारार्थ प्रेषित कर देगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 74वें संविधान संशोधन में किन तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई है?
2. संविधान की 12वीं अनुसूची में कितने विषय हैं?
3. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर किस अनुच्छेद द्वारा रोक लगाई गई है?

14.8 सारांश

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का सही अर्थों में सशक्तिकरण तभी सम्भव हो सका है जब नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान करते हुए इसे संविधान में शामिल कर लिया गया। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने मात्र से ही नगरीय स्वशासन की इकाइयों को पूर्णरूप से सशक्त की पाना सम्भव नहीं हो सका है क्योंकि वर्तमान में भी इन इकाइयों को जिस स्वयत्तता की आवश्यकता है वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी है। इसके लिए अभी और भी सुधारों की आवश्यकता है जिसका अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे।

आधुनिक समय में निरन्तर शहरों पर बढ़ते जनसंख्या के दबाव के कारण शहरों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक संसाधनों की कमी है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रादान की जाए तथा राज्यों के अनावश्यक हस्तक्षेप को कम किया जाए। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों पर आवश्यक दृष्टि बनाए रखी जाए, नहीं तो इनके भ्रष्ट हो जाने का खतरा भी बढ़ जाता है।

14.9 शब्दावली

पलायन- एक स्थान से अन्य स्थान को जाना, विकास प्राधिकरण- नगरों के विकास के लिए बनाए गये सरकारी विभाग, टाउनशिप- औद्योगिक नगर, जहाँ उद्योगों से जुड़े लोगों के लिए बसाया गया नगर, विघटन- समाप्त या अलग-अलग करना

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नगर पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम, **2.** 18, **3.** अनुच्छेद- 243 (य छ)

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल, सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

14.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्टेशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967

2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज़, हायद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

14.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. नगर निगम पर एक निबन्ध लिखिए।
2. नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालिए।
3. 74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई- 15 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याएं
15.2.1 वित्तीय व्यवस्था एवं वित्तीय समस्या
15.2.2 राज्य के नियंत्रण की समस्या
15.2.3 नेतृत्व की समस्या
15.2.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या
15.2.5 कार्मिक प्रशासन की समस्या
15.2.6 राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या
15.3 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार
15.3.1 वित्तीय सुधार
15.3.2 राज्य के नियंत्रण में सुधार
15.3.3 नेतृत्व में सुधार
15.3.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या का समाधान
15.3.5 कार्मिक प्रशासन में सुधार
15.3.6 राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या का समाधान
15.4 सारांश
15.5 शब्दावली
15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.9 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम संवैधानिक प्रावधानों से इतर हट कर यह अध्ययन करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के उपरान्त भी नगरीय शासन के समक्ष कई प्रकार की चुनौतियाँ देखने को मिलती हैं। नगरीय शासन के व्यवहारिक क्रियान्वयन में इन संस्थाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे- वित्तीय समस्याएं; राज्य के नियंत्रण की समस्याएं; नेतृत्व की समस्याएं; जन प्रतिनिधित्व की समस्याएं; कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी समस्याएं इत्यादि। इन समस्याओं के सफल समाधान के अभाव में नगरीय शासन में सुधार लाना और इसके महत्व को बनाए रखना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए कुछ आवश्यक परिवर्तनों तथा सुधारों की आवश्यकता है, जिससे नगरीय शासन को स्वशासन की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्थापित किया जा सके तथा लोकतंत्र की जड़ों को मजबूती प्रदान किया जा सके।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याओं को जान सकेंगे।

- नगरीय शासन की समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक सुधारों को जान सकेंगे।
- नगरीय शासन के सफल संचालन हेतु आवश्यक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

15.2 नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याएं

इकाई के इस भाग में हम नगरीय स्थानीय शासन सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं पर एक-एक कर के विचार करेंगे, जो कि निम्नलिखित हैं-

15.2.1 वित्तीय व्यवस्था तथा वित्तीय समस्याएं

वित्त किसी भी संस्था अथवा संगठन के सफल संचालन के लिए सबसे महत्वपूर्ण आधार माना जाता है, जिसके बिना संस्था को संचालनसम्भव ही नहीं हो सकता। नगरीय शासन में वित्त भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि किसी भी संस्था के लिए। यदि वित्तीय स्रोतों तथा वित्त का अभाव है, तो किसी भी व्यवस्था का संचालन अत्यंत कठिन है। इसी प्रकार स्थानीय संस्थाओं के संचालन के लिए सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था का होना आवश्यक हो जाता है। शहरों के विकास के साथ ही साथ नगरीय निकायों के दायित्वों में भी इजाफा हुआ है और इन दायित्वों का निर्वाह तब तक सम्भव नहीं जब तक वित्तीय व्यवस्था सुचारू रूप से कार्य न करे। इसलिए स्थानीय संसथाओं के वित्तीय प्रबन्धन को महत्वपूर्ण माना गया है। वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत हम नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों, इनके व्यय और इन पर राज्य सरकार के नियंत्रण के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे और साथ ही साथ जिन वित्तीय समस्याओं का सामना इन नगरीय स्थानीय निकायों को करना पड़ रहा है उनके विषय में भी जानेंगे।

1. **बजट-** प्रत्येक नगरपालिका के वार्षिक आय और व्यय से सम्बन्धित लेखा-जोखा को नगरपालिका बजट कहते हैं। बजट निर्माण की प्रक्रिया में आय के स्रोतों और व्यय पर विचार किया जाता है। बजट का उद्देश्य है कि आय और व्यय नियमों के अनुकूल किए जाएं। राज्य सरकारों के मतानुसार बजट की प्रक्रिया से राज्य इन स्थानीय निकायों पर अपनी निगरानी और अपना नियंत्रण बनाने में सक्षम होती है। यह बजट सामान्यतः कार्यपालिका के द्वारा निर्मित किया जाता है और परिषद् में अनुमोदन हेतु रखे जाने से पूर्व वित्तीय उप-समितियों के द्वारा इसकी जांच की जाती है। नगरपालिकाओं को यह जिम्मेदारी दी जाती है कि वे बजट तैयार कर इसे प्रत्येक वर्ष 25 फरवरी तक राज्य सरकार के समक्ष अनुमोदन हेतु प्रस्तुत करें। यदि व्यवहारिकता की बात करें, तो इस बजट का निस्तारण तृतीय श्रेणी कर्मचारियों के द्वारा ही कर दिया जाता है क्योंकि राज्य सरकार इसमें कोई विशेष रूचि नहीं दिखाती। केवल उस परिस्थिति में राज्य सरकार गंभीरता से बजट पर विचार करती है, जब किसी भारी अनियमितता की आशंका होती है। परन्तु राज्य सरकार बजट की प्रक्रिया में अपनी भूमिका को कम नहीं करना चाहती क्योंकि राज्य सरकारों का ऐसा मानना है कि इसके माध्यम से वे स्थानीय निकायों पर अपना नियंत्रण रख सकती हैं और उनकी जांच कर सकती हैं। हालांकि राज्य सरकारों की इस शिथिलता का यह परिणाम होता है कि नगरीय स्वशासन हेतु बजट की प्रक्रिया समय से पूर्ण नहीं हो पाती जिसके फलस्वरूप इन निकायों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ पाता।
2. **नगरपालिकाओं के आय के स्रोत-** नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों को निम्न वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है-
    - स्थानीय कर/करारोपण से प्राप्त आय- यह नगरपालिकाओं के आय का मुख्य साधन माना जाता है, क्योंकि आय का अधिकांश भाग करारोपण से ही प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित कर आते हैं- चुंगी कर, सम्पत्ति कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, प्रचार कर।

- गैर-कर आय- नगरपालिकाओं के द्वारा करों के रोपण के अतिरिक्त आय का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है, जिसके अंतर्गत नगरपालिकाओं के द्वारा वसूले गए शुल्क इत्यादि आते हैं।
- सहायता अनुदान- नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों में सहायता अनुदान भी अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। नगरपालिकाओं के आय के स्रोत सीमित हैं और व्यय निरंतर बढ़ते ही जा रहे हैं। ऐसे में आय और व्यय के इस अन्तर को समाप्त करने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा जो धनराशि प्रदान की जाती है, उसे ही सहायता अनुदान कहते हैं। कई मामलों में राज्य सरकार नगरपालिकाओं से कुछ कार्य लेती हैं या उन्हें कोई कार्य सौंपती हैं, ऐसी स्थिति में यह राज्य सरकार का नैतिक दायित्व बन जाता है कि वह नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान प्रदान करें जिससे उस कार्य का सम्पादन भली भाँति हो सके। स्थानीय शासन तथा राज्य सरकार के मध्य करों के बंटवारे, अनुदान के संदर्भ में तथा स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने हेतु सुझाव देने के लिए राज्य वित आयोग का गठन किया गया है। 11वीं केन्द्रीय वित्त आयोग ने स्थानीय निकायों को आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए केन्द्र सरकार से अनुदान की सिफारिश की थी और उसके बाद अन्य केन्द्रीय वित्त आयोग भी ऐसी ही सिफारिशें करती रही हैं।
- ऋण- किसी आकस्मिकता की परिस्थिति में नगरपालिकाओं के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे राज्य सरकार से ऋण प्राप्त करें। यह ऋण की व्यवस्था केन्द्र के द्वारा निर्मित स्थानीय प्राधिकारी ऋण अधिनियम 1914 से संचालित होती है। परन्तु नगरपालिकाएं यह ऋण केवल निम्न परिस्थितियों में ही ले सकती हैं- आपातकालीन परिस्थिति, विकास कार्य हेतु, ऋण का भुगतान करने हेतु, सूखे की परिस्थिति में राहत कार्य करने हेतु, या किसी महामारी की परिस्थिति में। नगर निगम यह ऋण 60 वर्षों के लिए ले सकते हैं जबकि नगरपालिका समितियाँ इसे 30 वर्षों के लिए ही ले सकते हैं। परन्तु नगरपालिकाएं इस प्रकार के ऋण ले पाने में असमर्थ रहीं हैं, क्योंकि उनकी छवि लोगों की नज़र में अच्छी नहीं है।

3. **नगरपालिकाओं का व्यय तथा लेखा परीक्षण-** नगरपालिकाओं के कार्यों में निरन्तर वृद्धि देखी जा सकती है। शहरीकरण के परिणामस्वरूप शहरों पर बढ़ते दबाव के कारण नगरीय स्थानीय निकायों का कार्य बहुत बृहद हो गया है, जो कि इसके व्यय को बढ़ाता रहता है। मुख्य रूप से नगरपालिकाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को निम्न बृहद वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है- सुरक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण, शिक्षा, ऋण भुगतान, स्थानीय लोगों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, विकास कार्य, मनोरंजन, आदि। व्यय की अपेक्षा इनके आय के स्रोत बहुत कम हैं।
   स्थानीय निकायों का लेखा परीक्षण सामान्यतः स्थानीय निधि लेखा के परीक्षक के द्वारा किया जाता है। यह लेखा परीक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं- पूर्व लेखा परीक्षा तथा उत्तर लेखा परीक्षा। पूर्व लेखा परीक्षा में किसी वर्ष के किसी एक निश्चित हिस्से में किए गए व्यय का आंकलन किया जाता है, यदि भारी अनियमितता पाई जाती है तो सरकार बृहद स्तर पर परीक्षण के लिए निर्देशित कर सकती है। उत्तर लेखा परीक्षा में किए गए परीक्षण का कोई विशेष महत्व नहीं होता, क्योंकि यह उस कार्य का परीक्षण है जिसे पूर्व में ही किया जा चुका है। यह लेखा परीक्षा कराने का अधिकार राज्य सरकार का होता है।
4. **वित्तीय समस्याएं-** इस प्रकार उपरोक्त का अध्ययन करके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किन कारणों से नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में कोई सुधार नहीं हो पा रहा है-

- आय के स्रोतों का अन्यायपूर्ण वितरण- नगरपालिकाओं के कार्य अधिक हैं, जबकि आय के स्रोत सीमित है। अतः राज्य सरकार और नगरपालिकाओं के मध्य आय के स्रोतों का बंटवारा कार्यों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- बजट निर्माण की गलत प्रक्रिया- सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि नगरपालिकाओं के बजट का निर्माण किया जाता है तो उसमें व्यय आय से कहीं अधिक होता है जिससे कार्यों का संपादन कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त बजट को पारित करने में इतना समय लग जाता है कि कोई भी कार्य उचित ढ़ंग से समय से पूर्ण नहीं हो पाता और कई बार परियोजनाओं को बजट पारित होने से पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया जाता है और बाद में इसके लिए पूंजी की कमी हो जाती है।
- नए कर लगाने की समस्या- नगरपालिकाओं को यह अधिकार दिए गए हैं कि वे कुछ नए कर लगा सकते हैं। परन्तु किन्हीं राजनीतिक दबावों के कारण नगरपालिकाओं को कोई भी नया कर लगाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- अनुदान की गलत प्रक्रिया- जो अनुदान राज्य सरकारों के द्वारा दिए जाते हैं, वे अपर्याप्त होते हैं तथा इन अनुदानों के लिए राज्य सरकार बाध्य नहीं है। ऐसे में व्यवस्था का संचालन कर पाना कठिन हो जाता है।
- राज्य का कठोर रवैया- कई राज्यों में नगरपालिकाओं के कार्य राज्य सरकार द्वारा छीन लिए जाते हैं, जिससे एक तरफ तो नगरपालिकाओं की छवि धुमिल होती है और दूसरी ओर उनका महत्व भी कम हो जाता है।
- लेखा परीक्षण की गलत विधि- लेखा परीक्षण के नियमों का पालन राज्य सरकारों के द्वारा पूर्ण रूप से नहीं किया जाता, जिससे नगरपालिकाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- ऋण लेने की सीमा अपर्याप्त- ऋण लेने की सीमा बहुत कम है जो कि नगरपालिकाओं के लिए कोई भी कार्य करवाने के लिए कम पड़ जाता है। इस सीमा को और भी बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

15.2.2 राज्य के नियंत्रण की समस्या

नगरीय स्वशासन की इकाइयों पर राज्य का नियंत्रण भी एक समस्या के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह नियंत्रण कई बार इन संस्थाओं की स्वायत्ता को भी चोट पहुँचाती हैं। मुख्यतः राज्य के नियंत्रण को निम्न प्रकारों में विभाजित कर देखा जाता है-

1. **विधायी नियंत्रण-** संविधान द्वारा राज्य सरकारों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं हेतु कानून का निर्माण कर सकते हैं तथा उनके कार्य और शक्तियों का निश्चय कर सकते हैं। ऐसा इस लिए क्योंकि प्रत्येक राज्य में नगरीय शासन की संस्थाओं का निर्माण ही राज्य विधान मण्डल द्वारा होता है तथा यह अपनी सभी शक्तियाँ राज्य से ही प्राप्त करते हैं। यहाँ तक कि विधान मण्डल सरकार को इससे सम्बन्धित मामलों जैसे चुनाव, कार्मिक, लेखा, कर आदि में कानून निर्माण का अधिकार दे सकती है। राज्य विधान-मण्डल नगरपालिका अधिनियम में संशोधन भी कर सकती है तथा कुछ महत्वपूर्ण मामलों में अलग से कानून का निर्माण भी कर सकती है। राज्य विधान सभा में नगरपालिकाओं से सम्बन्धित विचार-विमर्श भी किया जा सकता है तथा उस पर सम्बन्धित मंत्री से प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। हालांकि राज्य का विधायी नियंत्रण कोई समस्या नहीं है बल्कि यह नगरपालिकाओं के सफल

संचालन हेतु अत्यंत ही आवश्यक भी है, परन्तु नगरपालिकाओं के मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए समय का अभाव होता है। कई बार राजनीतिक पूर्वाग्रहों के कारण या राजनीतिक निहित हितों के कारण समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं, तब यह विधायी नियंत्रण नगरपालिकाओं के लिए एक समस्या बन जाती है।

2. **वित्तीय नियंत्रण-** जैसा कि पूर्व में ही बताया जा चुका है कि नगरपालिकाएं वित्तीय रूप से पूरी तरह राज्य सरकारों पर ही निर्भर होती हैं और उनकी दया पर आश्रित हैं, इस बिन्दु के अंतर्गत हम राज्य सरकार का नगरपालिकाओं पर वित्तीय नियंत्रण के तरीकों को देखेंगे। राज्य सरकार वित्तीय मामलों में इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि नगरपालिकाओं को यह तो अधिकार है कि वे कोई कर लगाएं अथवा उसमें परिवर्तन करें अथवा उसे समाप्त करें, परन्तु वे ऐसा तभी कर सकती हैं जब इस हेतु राज्य सरकार द्वारा उन्हें अनुमोदन प्रदान कर दिया जाए। राज्य सरकार नगरपालिकाओं को यह भी निर्देशित कर सकती है कि किसी कर की दर क्या होगी, उसकी सीमा क्या होगी, किसे उस कर से मुक्त रखा जाएगा, इत्यादि।

   राज्य सरकार नगरपालिकाओं के व्यय को विनियमित भी कर सकती है तथा नगरपालिकाओं के बजट का प्रारूप भी राज्य सरकारों के द्वारा तय किया जाता है और इसका अनुमोदन भी राज्य सरकार के द्वारा ही होता है। इसी प्रकार लेखा परीक्षण का कार्य भी राज्य के द्वारा ही सम्पादित किया जाता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नगरपालिकाएं राज्य सरकार के पूर्ण वित्तीय नियंत्रण में कार्य करती हैं।

3. **प्रशासनिक नियंत्रण-** प्रशासनिक नियंत्रण एक ऐसा नियंत्रण है जिसके माध्यम से राज्य नगरपालिकाओं पर अपना पूर्णरूपेण नियंत्रण स्थापित कर लेता है। राज्य निम्नलिखित प्रकार से नगरपालिकाओं पर अपना प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करता है- नगरपालिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों को अनुमोदन प्रदान करना, उन्हें निदेशित करना, सुझाव देना, कार्यक्रमों को अनुमादन देना, परीक्षण व निरीक्षण करना, उनसे रिर्पोट मांगना, कर लगाना, आदि।

   जहाँ तक कार्मिकों का प्रश्न है, राज्य सरकार का नगरपालिका कार्मिकों पर पूर्ण नियंत्रण है। एक सहायक से लेकर ऊपर के सभी पदों पर राज्य सरकार द्वारा ही नियुक्ति की जाती है। राज्य सरकार ही कार्मिकों की नियुक्ति, स्थानांतरण तथा पदोन्नति के नियम और तरीकों को तय करती है। परन्तु कार्मिकों का वेतन, भत्ता, पेंशन आदि का निर्धारण सम्बन्धित नगरपालिका के द्वारा किया जाता है। नगरपालिका केवल तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकती है। इसी प्रकार नगरपालिका केवल उन्हीं कार्मिकों को पद से निकाल सकती है जिसकी नियुक्ति उसके द्वारा की गई है, अन्य कार्मिकों को निकालने का अधिकार राज्य सरकार को ही होता है। नगरपालिका केवल इस प्रकार की कार्यवाही की राज्य सरकार से सिफारिश कर सकती है।

   नगर निगमों के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि नगर निगम का आयुक्त, जिसमें सभी कार्यकारी शक्तियाँ निहित होती हैं, राज्य सरकार के द्वारा ही नियुक्त किया जाता है। इसके सभी कर्मचारी राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित वेतन, भत्ते और अन्य सुविधा प्राप्त करते हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि नगर निगमों पर राज्य सरकार का पूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण होता है।

   उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर निरीक्षण का कार्य भी किया जाता है। सरकार उनसे नियमित रिर्पोट भी मांग सकती है। सरकार उनसे किसी भी कार्य को सम्पादित करने हेतु निर्देशित भी कर सकती है। नगरपालिकाओं के विरूद्ध राज्य सरकार के पास अपील भी की जा सकती है। इन सबसे महत्वपूर्ण यह है कि राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह नगरपालिकाओं को भंग कर सकती है।

4. **न्यायिक नियंत्रण-** नगरपालिकाओं के द्वारा उनके अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन कर यदि नागरिकों के हितों की अनदेखी की जाती है तो ऐसे में उनपर न्यायिक नियंत्रण का होना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार यदि राज्य सरकारें नगरपालिकाओं के अधिकार क्षेत्र में जा कर उनके अधिकारों का हनन करती हैं तो ऐसे में भी न्यायिक हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। हालांकि न्यायालय स्वतः नगरपालिकाओं के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती परन्तु यदि स्थानीय सरकार अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करे या नागरिकों के हितों को चोट पहुँचाए तो ऐसे में न्यायालय को यह अधिकार है कि वह नगरपालिका अधिनियम की व्याख्या करे। नगरपालिकाओं से सम्बन्धित कई विवाद निरन्तर न्यायालय में पहुँचते रहते हैं, जिनका निपटारा नहीं हो पाता और मामले लम्बित रहते हैं। ऐसे में नगरपालिकाओं का संचालन सही तरीके से हो पाना सम्भव नहीं होता।

15.2.3 नेतृत्व की समस्या

कुशल नेतृत्व स्थानीय शासन में अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसका उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का समाधान होता है तथा राज्य और केन्द्र सरकार की अपेक्षा इसका सीधा सम्पर्क जनता से होता है। परन्तु प्रायः यह देखा जाता रहा है कि स्थानीय शासन की इकाइयों में अधिकतम ऐसे लोग नेतृत्वकर्ता की भूमिका में होते हैं, जो या तो वृद्ध हों, या अशिक्षित हों, या उनमें स्थानीय शासन सम्बन्धी जानकारियों का अभाव होता है। ऐसे में स्थानीय संस्थाओं का महत्व कम हो जाता है।

स्वशासन की इन इकाइयों में आरक्षण की व्यवस्था के माध्यम से भी सामाजिक सशक्तिकरण का प्रयास किया गया है जिस हेतु अनुसुचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है। परन्तु प्रायः यह भी देखा जाता है कि इन जातियों, जनजातियों और महिलाओं का नेतृत्व प्रतीकात्मक बन कर रह जाता है और इनके पीछे समाज के प्रभुत्व सम्पन्न लोगों को नेतृत्व होता है। ऐसे में सामाजिक सशक्तिकरण का उद्देश्य भी अधूरा रह जाता है और सामाजिक सुधार असम्भव हो जाता है। इसके साथ ही इन स्थानीय निकायों में धन और शक्ति का महत्व भी बढ़ता ही जा रहा है। समाज के संभ्रांत लोगों के द्वारा पैसे और बल का प्रयोग कर इन संस्थाओं पर अपना कब्जा स्थापित कर लिया जाता है और ये प्रतिनिधि अपने निहित स्वार्थ की पूर्ती में लग जाते हैं जिससे स्थानीय स्वशासन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता और यह समाज के कुछ गिने-चुने लोगों के हितपूर्ति का साधन मात्र बन कर रह जाता है।

उपरोक्त वर्णित नेतृत्व की समस्या के कुछ मूलभूत कारण हैं जैसे- नगरीय निकायों की अपेक्षा संसद व विधान सभा की सदस्यता का अधिक लुभावना होना जिसमें शक्ति के साथ ही साथ अपेक्षाकृत अधिक सम्मान भी है। नगरीय निकायों की शक्तियों में कमी भी एक महत्वपूर्ण कराण माना जा सकता है। इसके साथ ही राजनीतिक दलों की नकारात्मक भूमिका जिसके कारण स्थानीय निकायों के चुनाव में प्रभाव, भाई-भतीजावाद, पैसा, बल प्रयोग आदि निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। राज्य का अत्यधिक नियंत्रण भी इस समस्या का एक कारण है, क्योंकि जो योग्य नेतृत्व होती है उसे सही तरीके से कार्य नहीं करने दिया जाता इसलिए कुशल नेतृत्व की कमी होती जा रही है। गरीबी और अशिक्षा इस समस्या का जड़ कहा जा सकता है। निरन्तर बढ़ती गरीबी के कारण व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ती के साधन एकत्र करने के लिए अधिक चिन्तित रहता है और शिक्षा के अभाव में लोग स्थानीय स्वशासन के महत्व को समझ नहीं पाते जिसके परिणामस्वरूप वे इन निकायों में कोई विशेष रूचि नहीं लेते।

15.2.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या

आधुनिक काल में व्यक्ति एकांकी जीवन व्यतीत कर रहा है और उसे अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं का भी कोई ज्ञान नहीं होता। प्रायः यह देखा गया है कि नागरिकों में इसी वजह से राजनीतिक उदासीनता का प्रसार भी हो रहा है और वे राजनीतिक घटनाओं से दूरी बनाए रखने पर विश्वास करते हैं। इसका प्रभाव स्थानीय शासन

पर भी देखने को मिलता है। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष यह एक संकट बन कर उभर रहा है क्योंकि यदि स्थानीय लोग ही स्थानीय शासन में प्रतिभाग नहीं करेंगे तो इसका महत्व न के बराबर रह जाएगा।

इसके अतिरिक्त भारत में सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषाई, जातीय और नस्ली भिन्नता देखने को मिलती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक स्थान पर निवास करने वाले सभी लोग एक ही धर्म, भाषा, नस्ल, संस्कृति या जाति के ही हों। ऐसे में उस स्थान के लोगों के मध्य समूह की भावना नहीं आ पाती जिस कारण वे किसी भी सामूहिक कार्य के प्रति उदासीन रहते हैं।

कुशल नेतृत्व की कमी, नागरिकों के प्रति गलत व्यवहार, गरीबी, निरक्षरता अथवा शिक्षा का अभाव, राजनीतिक चेतना का अभाव और भ्रष्टाचार के कारण भी लोग इन स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के कार्यों में रूचि नहीं लेते तथा इनसे स्वयं को पृथक मानते हैं जिसके कारण इन संस्थाओं का महत्व निरन्तर घटता जा रहा है।

15.2.5 कार्मिक प्रशासन की समस्या

कार्मिक प्रशासन की समस्या भी नगरीय निकायों के समक्ष एक बहुत बड़ी समस्या है। नगरीय निकाय मुख्तः नौकरशाही के अधीन ही रह जाते हैं, क्योंकि इनमें कार्मिकों की नियुक्ति राज्य सरकार में कार्य कर रहे नौकरशाहों तथा राज्य सरकार द्वारा मनोनीत विशेषज्ञों के द्वारा की जाती है। कार्मिकों की नियुक्ति जनता से जुड़े लोगों के बीच में से नहीं किया जाता बल्कि राजनीतिक पहुँच और प्रभाव वाले लोगों को ही नियुक्त किया जाता है। ऐसे में इन कार्मिकों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि ये स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त बनाने में सफल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त इन कार्मिकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी दुरूस्त नहीं है क्योंकि प्रशिक्षण के महत्व को ध्यान में रखते हुए कई राज्यों के द्वारा प्रशिक्षण केन्द्रों और संस्थाओं का निर्माण तो कर दिया गया, परन्तु इनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। प्रशिक्षण की कमी के कारण ये कार्मिक स्थानीय स्वशासन के कार्यों और दायित्वों को भी भली-भाँति नहीं समझ पाते, जिसके कारण स्थानीय निकाय अपने कार्यों का सम्पादन नहीं कर पाते। समय-समय पर भ्रष्टाचार के कई मामले भी प्रकाश में आए हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय निकायों में कार्यरत कर्मचारियों में भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति बढ़ी है। अतः यह कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन सुदृढ़ किए बिना नगरीय निकायों को सुदृढ़ नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन निकायों में कार्य कर रहे कार्मिकों पर ही दायित्वों के निर्वाह की जिम्मेदारी होती है। ये स्थानीय शासन के कार्यपालक के रूप में कार्य करते हैं। यदि कार्यपालिका ही सही से कार्य न करे तो सभी कानून और सभी कार्यक्रम केवल कागज़ी ही बन कर रह जाते हैं।

15.2.6 राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या

सिद्वान्ततः नगरपालिका तथा नगरीय स्वशासन की इकाइयों में राजनीतिक दलों की भूमिका पर रोक है, क्योंकि राजनीतिक दलों का स्थानीय शासन में कोई भूमिका नहीं है। स्थानीय शासन का उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का स्थानीय समाधान करना है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि स्थानीय शासन में राजनीतिक दलों की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। राजनीतिक दल किसी व्यक्ति विशेष को अपने दल के प्रतिनिधि के रूप में न केवल सहयोग करते हैं परन्तु उनका प्रचार भी करते हैं। एक ही व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सांसद या विधायक के प्रत्याशी के रूप में भी खड़ा होता है और न जीत पाने पर वह स्थानीय शासन में चुने जाने हेतु प्रत्याशी बन जाता है। राजनीतिक दलों की भूमिका को स्थानीय शासन में इसलिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता, क्योंकि स्थानीय स्तर पर विचारधार का कोई महत्व नहीं होता। स्थानीय शासन के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे राजनीतिक विचारधाराओं को शासन में शामिल न करें बल्कि समस्याओं के समाधान पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। परन्तु राजनीतिक दलों के द्वारा अपना जनाधार तैयार करने के उद्देश्य से अनावश्यक रूप से स्थानीय निकायों के चुनाव में बढ़-चढ़कर भागीदारी करने के कई प्रमाण हैं। इससे स्थानीय शासन समस्याओं का समाधान नहीं, बल्कि राजनीतिक दलों की हार और जीत, को अपना मुख्य उद्देश्य मान लेती है, जिससे राज्य सरकार और स्थानीय शासन के मध्य सहयोग और सामंजस्य बिगड़ता है।

15.3 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार

नगरीय शासन के समक्ष चुनौतियों का अध्ययन करने के पश्चात अब हम नगरीय शासन में आवश्यक सुधारों की चर्चा करेंगे। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वशासन की इकाइयाँ लोकतंत्र की रीढ़ मानी जाती हैं। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सबल और सशक्त बनाया जाए। परन्तु यह स्वशासन की इकाइयाँ दिन-प्रतिदिन नई-नई चुनौतियों का सामना करती हैं और वर्तमान में इनकी दशा और भी दयनीय होती जा रहीं है जिनके कारणों को हमने इस इकाई के उपरोक्त बिन्दुओं में देखा। नगरीय निकायों के कार्य जैसे-जैसे बढ़ते जा रहे हैं, वैसे-वैसे इनके समक्ष नई चुनौतियाँ भी उभर रहीं है। अतः इकाई के इस भाग में हम नगरीय शासन सम्बन्धी सुधारों का अध्ययन करेंगे, जिससे इन्हें और भी सशक्त किया जा सके और इनकी दशा में सुधार लाया जा सके।

नगरीय शासन में आवश्यक सुधारों को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

15.3.1 वित्तीय सुधार

वित्तीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वित्तीय मामलों में नगरीय शासन में क्रांतिकारी परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। नगरीय शासन की इकाइयों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इनके आय से सम्बन्धित है। इन निकायों के आय के साधन बहुत की सीमित हैं जिनके कारण इनके व्यय को इनके आय के द्वारा पूरा किया जाना सम्भव नहीं हो पाता। आवश्यकता इस बात की है कि इन निकायों के आय के स्रोतों में बढ़ोत्तरी की जाए जिससे यह निकाय अपने व्यय को पूरा कर सकें और राज्य सरकार पर इनकी निर्भरता को कम किया जा सके। आय में वृद्धि के लिए जिस प्रकार आय के स्रोतों में वृद्धि की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार आय के स्रोतों के निर्धारण में भी नगरीय निकायों को राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके कारण यह निकाय स्वयं यह निश्चय नहीं कर पाते कि इन्हें कितने कर लगाने हैं और कर की दरें क्या होंगी। अतः आय में वृद्धि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इनके स्रोतों का निर्धारण करने हेतु इन निकायों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए। प्रायः आकस्मिकता के समय या किसी अतिरिक्त कार्य को करने के लिए इन निकायों को राज्य सरकार द्वारा दिए गए वित्तीय सहायता/अनुदान पर भी निर्भर होना पड़ता है। परन्तु राज्य सरकार इन निकायों को वित्तीय अनुदान देने के लिए बाध्य नहीं है, जिससे कभी-कभी इन निकायों को अपने कार्यों को पूरा करने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नगरीय निकायों का बजट भी पूर्णरूपेण राज्य सरकार की इच्छा और दया पर ही आधारित होता है। इनके बजट का प्रस्ताव जब तक राज्य सरकार द्वारा पारित नहीं किया जाता, तब तक इनका बजट तैयार नहीं होता, ऐसे में नियोजन से लेकर बजट तक इन निकायों को राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके कारण यह निकाय सफलतापूर्वक कार्य कर पाने में असमर्थ रहती हैं। अतः यह प्रयास किया जाना चाहिए कि वित्तीय मामलों में नगरीय निकायों को स्वायत्ता प्रदान की जाए और राज्य के नियंत्रण को कम करने का प्रयास किया जाए।

15.3.2 राज्य के नियंत्रण में सुधार

नगरीय शासन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती स्वायत्ता की है। स्वयत्ता के अभाव में इन निकायों का विकास और कार्य दोनों ही बाधित होता है। संविधान में 74वें संशोधन के उपरान्त दी गई व्यवस्था में इन निकायों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है। नगरीय शासन पर राज्य का वित्तीय, प्रशासनिक, विधायी और न्यायिक नियंत्रण होता है। हालांकि केन्द्र के हस्तक्षेप से इन निकायों को पूणतः मुक्त कर दिया गया है परन्तु कई ऐसे प्रावधान कर दिए गए हैं, जिससे इन निकायों की स्वयत्ता पूणतयः समाप्त हो गई है। यदि वित्तीय प्रबन्ध की बात करें तो जैसा की पूर्व में ही चर्चा की गई है कि नगरीय शासन को आय के स्रोत, व्यय, बजट तथा लेखा परीक्षण आदि के संदर्भ में राज्य सरकारों पर आश्रित कर दिया गया है। संविधान में दी गई व्यवस्था का उद्देश्य केवल इन निकायों

को राज्य सरकार के अधीन रखना मात्र नहीं था, अपितुः राज्यों को अपनी परिस्थिति के अनुकूल व्यवस्था तैयार करने तथा स्थानीय निकायों में सुधार और सुशासन लाने हेतु आवश्यक स्वतंत्रता प्रदान करना भी था। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि राज्य सरकारों ने इन स्थानीय निकायों को अपने हाथ की कटपुतली बना दिया और इन पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया।

वित्तीय नियंत्रण के विषय में प्रथम बिन्दु में चर्चा की जा चुकी है। जहाँ तक प्रशासनिक नियंत्रण का प्रश्न है, यह नगरीय निकायों के लिए एक बड़ी समस्या बनी हुई है। यह निकाय प्रशासनिक रूप से राज्य सरकारों पर ही निर्भर करते हैं। चाहे कार्मिकों की नियुक्ति का प्रश्न हो, या उनके स्थानांतरण और पदोन्नती का, ये निकाय राज्य सरकार पर ही आश्रित होते हैं। इन्हें प्रशासनिक स्वयत्ता दिए बिना इन निकायों को सशक्त नहीं किया जा सकता।

राज्य सरकार को यह अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त है कि राज्य की विधायिका कानून बना कर नगरीय शासन सम्बन्धी व्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं। 74वाँ संविधान संशोधन नगरीय शासन हेतु केवल एक विस्तृत खाका तैयार करता है, परन्तु व्यवस्था निर्माण का पूर्ण अधिकार राज्य की विधायिका कों सौंप दिया गया है। कर निर्धारण, बजट निर्धारण, आरक्षण और अन्य किसी भी व्यवस्था हेतु कानून निर्माण का अधिकार राज्य की विधायिका को सौंपा गया है। मंशा यह थी कि राज्य स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर इन निकायों हेतु कानून का निर्माण करेगी और व्यवस्था बनाएगी। परन्तु विधायी नियंत्रण के कारण नगरीय शासन का बागडोर पूरी तरह राज्य सरकार के हाथों में आ गई और कई मामलों में इसका दुर्पियोग भी किया जाता है, विशेष रूप से तब जब कि राज्य में किसी ऐसे राजनीतिक दल की सरकार हो जो कि नगरीय शासन को चलाने वाले या उसका समर्थ करने वाले राजनीतिक दल का विरोधी हो।

न्यायिक नियंत्रण को सकारात्मक माना जाता है किन्तु न्यायिक प्रक्रिया में देरी के कारण नगरीय निकायों से जुड़े कई मामलों में अत्यंन्त ही विलम्ब होता है। अतः यह प्रयास किया जाना चाहिए कि न्यायालय में नगरीय निकायों से जुड़े मामलों के ससमय निस्तारण हेतु अलग से एक कोर्ट की व्यवस्था की जाए।

15.3.3 नेतृत्व में सुधार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर वर्तमान तक भारत में केन्द्र व राज्य के स्तर पर तो सबल नेतृत्व देखने को मिलता है, परन्तु स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष सबल और कुशल नेतृत्व का अभाव रहा है। स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त किए अभी कुछ ही दशक बीते हैं परन्तु नेतृत्व के अभाव में इसका महत्व निरन्तर गिरता जा रहा है। नेतृत्व यदि सबल और कुशल नहीं है, तो इन निकायों का संचालन भी सफलतापूर्णक कर पाना सम्भव नहीं है। समस्या यह है कि इन निकायों में स्वायत्ता के अभाव के कारण लोगों द्वारा इसकी भूमिका पर विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता, जसके परिणामस्वरूप नेतृत्वकर्ता स्थानीय निकायों की अपेक्षा राज्य तथा केन्द्र की राजनीति में प्रतिभाग करने में अधिक विश्वास रखते हैं। इस समस्या का समाधान तभी सम्भव हो सकता है, जब इन निकायों को स्वायत्ता प्रदान की जाए तथा युवा पीढ़ी में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात युवा पीढ़ी के अधिकतम लोग राजनीति की शुरूआत स्थानीय स्तर से करते थे। परन्तु आज स्थानीय निकायों की दुर्दशा को देखते हुए लोग इससे बचने का प्रयास करते हैं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थानीय चुनावों में बाहुबलियों और अपराधियों की भूमिका को समाप्त कर दिया जाए जिससे सही अर्थों में जनता के प्रतिनिधियों का चुनाव सम्भव हो सके।

15.3.4 जन-प्रतिनिधित्व तथा जन-सहभागिता की समस्या का समाधान

वर्तमान भारतीय राजनीति में जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, वर्ग विभेद जैसी समस्याएं आम हैं। यह समस्याएं स्थानीय स्तर पर और भी गंभीर रूप धारण कर लेती हैं। जैसेजैसे हम केन्द्र की राजनीति से स्थानीय स्तर की राजनीति की ओर बढ़ते हैं समस्याएं और भी विकट होने लगती हैं। इन सभी समस्याओं का सबसे बुरा प्रभाव जन प्रतिनिधित्व और जन सहभागिता पर पड़ा है। इस प्रकार की समस्याओं के

कारण आम जनता का राजनीति पर से विश्वास उठ चुका है। वे राजनीति में प्रतिभाग करने से भी डरने लगे हैं, जिसके कारण निरन्तर मतदान का प्रतिशत घटता जा रहा है और लोग राजनीति के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति से इन समस्याओं का सफाया करना होगा, तभी हम जन सहभागिता को बढ़ाने में सक्षम हो सकते हैं।

इन समस्याओं के समाधान और राजनीति में सुधार हेतु सर्वप्रथम हमें जनता के मध्य चेतना का प्रसार करना होगा और उन्हें राजनीति में प्रतिभाग करने के महत्व को समझाना होगा तथा उन्हें इस बात का एहसास कराना होगा कि मतदान का आधार योग्यता को बनाया जाए न कि जाति, धर्म, क्षेत्र और बल को। राजनीति में बुरी ताकतों के प्रवेश को रोकने के लिए हमें कुछ न्यूनतम् शैक्षणिक आहर्यता का निर्धारण करना होगा जिससे केवल वही लोग राजनीति में प्रवेश कर सकें, जो समझदार हों और जिनमें नेतृत्व करने की क्षमता हो। इस प्रकार उपरोक्त सुधारों से हम जन प्रतिनिधित्व और जन-सहभागिता में सुधार ला सकते हैं।

15.3.5 कार्मिक प्रशासन में सुधार

जैसा कि इस इकाई के भाग 15.2 में दर्शाया जा चुका है कि स्थानीय निकायों के कार्मिक प्रशासन पर राज्य का ही पूर्ण नियंत्रण होता है। केवल तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कार्मिकों की नियुक्ति का अधिकार इन निकायों के पास होता है, शेष सभी कार्मिकों की नियुक्ति व मनोनयन राज्य सरकार के स्तर पर होता है। ऐसे में समस्या यह होती है कि ये कार्मिक स्थानीय निकायों के प्रति उत्तरदायी न हो कर ये सीधे राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं और इनके पास स्थानीय निकायों के संचालन के विषय में जानकारी का भी अभाव होता है जिससे स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के संचालन में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु यह व्यवस्था बनाई जानी चाहिए कि इन निकायों को अपने कार्मिकों की नियुक्ति का अधिकार सौंप देना चाहिए जिससे ये निकाय भली-भाँति अपने कार्यों का निष्पादन कर पाने में सक्षम हो सकें। राज्य सरकारों को स्थानीय शासन के लिए एक अलग से स्थानीय सेवाओं की स्थापना करनी चाहिए, ताकि इस सेवा में कार्यरत कार्मिकों की दक्षता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि हो सकेगी, क्योंकि इसी सेवा में वे निरन्तर कार्य करेंगे जिससे उन्हें स्थानीय निकायों में कार्य करने की विशेषज्ञता भी प्राप्त होगी। इसके साथ ही उनके नियमित प्रशीक्षण की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वे नवीन समस्याओं का समाधान कर पाने में सक्षम हो सकें। इन कार्मिकों पर राज्य सरकार नहीं बल्कि स्थानीय निकायों का ही पूर्ण नियंत्रण हो ना चाहिए तथा इन्हें स्थानीय निकायों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार इन इकाइयों को सशक्त बनाया जा सकता है।

15.3.6 राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या का समाधान

उपरोक्त सभी समस्याओं के साथ ही साथ स्थानीय निकायों और विशेष रूप से नगरीय निकायों में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप भी एक बहुत बड़ी समस्या है। स्थानीय निकायों का निर्माण स्थानीय समस्याओं के समाधान के उद्देश्य से किया गया था जिसमें राजनीतिक दलों की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि स्थानीय निकायों के चुनाव में प्रतिभाग करने वाले अधिकतम् नेता किसी न किसी राजनीतिक दल से जुड़े होते हैं, जिसके कारण स्थानीय स्तर पर भी राजनीति के वही दाँव-पेंच खेले जाने लगते हैं जैसा कि राज्य या केन्द्र की राजनीति में देखा जा सकता है। राजनीतिक दलों के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण 'समस्याओं का समाधान करना' परिधि में चला जाता है और 'सत्ता हासिल करना' केन्द्रीयता प्राप्त कर लेता है। यह भी किसी से छिपा नहीं है कि स्थानीय चुनावों में मार-काट और बड़े पैमाने पर राजनीतिक हत्याएं भी कर दी जाती हैं जिससे न केवल आम लोगों के मन में राजनीति के प्रति गलत धारणा विकसित होती है बल्कि लोगों का राजनीति पर से विश्वास भी खो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए यह सुधार अत्यंत आवश्यक है कि स्थानीय निकायों के चुनाव में राजनीतिक दलों की भूमिका को शून्य कर दिया जाए। परन्तु कई प्रयासों के बाद भी हमें इस प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप देखने को मिलता है। अतः राज्य चुनाव आयोग को इस मामले को गंभीरता से संज्ञान लेते

हुए उन राजनीतिक दलों पर कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए जो स्थानीय चुनावों में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करते हों।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगरीय स्थानीय निकायों के आय का प्रमुख स्रोत क्या है?
2. नगरीय स्थानीय निकायों के नगर आयुक्त की नियुक्ति कौन करता है?
3. स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने हेतु कौन सी संस्था सुझाव देती है?

15.4 सारांश

इस इकाई में यह दर्शाया गया कि किस प्रकार नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो जाने के उपरान्त भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। कई ऐसी समस्याएं हैं जिनका समाधान किए बिना हम नगरीय स्वशासन की इकाइयों का सशक्त नहीं कर सकते। इन समस्याओं का केन्द्र-बिन्दु नगरीय स्वशासन के निकायों की स्वायत्ता है। जब तक संवैधानिक संशोधन अथवा राज्य सरकार द्वारा इस दिशा में सुधार नहीं किए जाएंगे, तब तक इन निकायों का सफलतापूर्वक संचालन सम्भव नहीं है। स्वायत्ता की बात की जाए तो स्वायत्ता के अंतर्गत वित्तीय, प्रशासनिक तथा विधायी स्वायत्ता महत्वपूर्ण हैं। परन्तु प्रश्न यह भी उठता है कि इन स्थानीय निकायों पर किस सीमा तक विश्वास किया जा सकता है? क्योंकि प्रायः इन निकायों में भ्रष्टाचार की शिकायतें मिलती हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हे पूर्ण रूप से राज्य के नियंत्रण से मुक्त करना उचित नहीं होगा। परन्तु यह भी प्रयास किया जाना चाहिए कि इन निकायों को राज्य सरकार के हाथों की कठपुतली न बना दिया जाए, जिससे कि इसका महत्व ही समाप्त हो जाए। अतः यह प्रयास होना चाहिए कि स्वायत्ता के साथ ही साथ इन पर राज्य का उचित नियंत्रण भी हो जो कि विशेष परिस्थिति में इनकी शक्तियों और अधिकारों पर अंकुश लगाने हेतु प्रयोग किया जाए। सामान्य परिस्थितियों में इन्हें स्वयं समस्यओं का समाधान करने के लिए छोड़ दिया जाए जिससे इनकी कार्यकुशलता को बढ़ावा मिलेगा और इन पर जनता का विश्वास भी सुदृढ़ हो सकेगा, क्योंकि अंततः इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर ही किया जाना सम्भव है और यही लोकतंत्र की भावना भी है।

15.5 शब्दावली

सुदृण- सुधार या मजबुती, दायित्व- जिम्मेदारी, लेखा-जोखा- लिखित दस्तावेज, आपातकालीन परिस्थिति- संकट का समय, अनुमोदन- मान्यता या सहमति

15.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सम्पत्ति कर, **2.** राज्य सरकार, **3.** राज्य वित्त आयोग

15.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

6. भट्टाचार्य, मोहित, स्टेट कंट्रोल ओवर मुनिसिपल बॉडिज, इण्डियन जॉर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 22 (1976)

15.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0 एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जलंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज, हायद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979
6. महेश्वरी, श्रीराम, लोकल गर्वनमेन्ट इन इण्डिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1984

15.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य सरकार के नगरीय स्वशासन पर वित्तीय नियंत्रण पर प्रकाश डालिए।
2. नगरीय निकायों की स्वयत्ता के लिए सुझाव दीजिए।
3. नगरीय निकायों में नेतृत्व तथा जन सहभागिता की समस्याओं पर टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 16 चौहतरवाँ(74वाँ) संवैधानिक संशोधन एवं नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 चौहतरवें वें संविधान संशोधन के उद्देश्य
16.3 चौहतरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता
16.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं
16.5 नगरीय शासन की रूपरेखा
16.6 नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम है। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गांव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रकरण कहलाता है।

बहुत समय पहले नीति निर्माताओं, वरिष्ठ अधिकारियों एवं कार्यक्रमों को चलाने वाले अधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता के लिये योजनायें बनायी जाती थीं। इसलिए योजना को बनाने की प्रक्रिया पूर्व में उपर से नीचे की ओर थी। परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी, विकास गतिविधियों को चलाने में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी एवं लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनायें स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं। अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये क्योंकि लोगों को अपनी ज़रूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं को वरीयता क्रम निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- चौहत्तरवें संविधान संशोधनकी आवश्यकता एवं उसके महत्व के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- वर्तमान में नगरीय शासन का स्वरूप और उसके कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

16.2 चौहतरवें(74वें) संविधान संशोधन के उद्देश्य

चौहतरवें संविधान संशोधन के निम्नांकित उद्देश्य हैं-

1. देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
2. नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
3. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
4. समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।
5. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।
6. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

16.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व की नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था। जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्रावधान किया गया।

16.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं

74वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा संविधान में एक नयाभाग- 9 क जोड़ा गया, जिसमें कुल 18 अनुच्छेद हैं और एक नयी अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर नगरीय क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।

1. 74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों को संवैधानिक मान्यता और संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।
2. इस संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों की देश भर में त्री-स्तरीय व्यवस्था की गयी- नगर पंचायत, नगर परिषद और नगर निगम।
3. इस अधिनियम में प्रत्यक्ष चुनावों के द्वारा नगर निकायों के गठन की व्यवस्था की गयी है।
4. यह अधिनियम वार्ड समितियों के बठन की व्यवस्था करता है। जिसमें 03 लाख या असमे अधिक की जनसंख्या वाले नगर निकायों में एक या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियों का गठन किया जायेगा।

5. इस अधिनियम के माध्यम से प्रत्येक नगर निकायों में अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक क्षेत्र में सीटों का यह आरक्षण उस नगर निकाय के क्षेत्र में इन वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा आरक्षित की गयी सीटों पर बारी-बारी से आवर्तन किया जायेगा।
6. इस अधिनियम के द्वारा नगर निकायों का कार्यकाल 05 वर्ष का होगा। नगर निकायों का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तिथि से, यदि वह निर्धारित तिथि से पूर्व भंग नहीं कर दी जाती है, तो 05 वर्ष निर्धारित की गयी है। यदि निर्धारित तिथि से पूर्व नगर निकाय को भंग किया जाता है तो 06 माह के भीतर उसके चुनाव कराये जाने होंगे।

16.5 नगरीय शासन की रुपरेखा

नगरीकरण विश्व भर में तेजी से और तीसरी दुनिया में और भी तेजी से अपना पांव पसार रहा है। नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है, जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। सरल शब्दों में नगरीकरण को एक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा एक क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या नगरों तथा कस्बों में संकेन्द्रित हो जाती है।भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है।

शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया विगत दो दशकों में विश्व के विभिन्न हिस्सों की विशिष्टता रही है, चाहे वह केंद्रीय/पूर्वी यूरोप एवं लैटिन अमेरिकी देशों के मामले में स्थानीय स्तरों की ओर से आवाजों के परिणामस्वरूप या अफ्रीका तथा दक्षिण एशिया विशेषकर केन्या, युगांडा एवं भारत के मामलोंमें राष्ट्रीय सुधार तथा पुनर्निमार्ण की प्रक्रिया की प्रतिक्रिया में हो; या दाता एजेंसियों की ओर से बढ़े हुए दबाव के कारण हो। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक वैश्वीकरण है जो स्थानीय शासन के नए आयामों को उजागर कर रहा है, जिसमें अपने सम्बन्धित क्षेत्रों में शहर लोगों सामानों तथा सूचनाओं के वैश्विक प्रवाह के लिए नोडल बिंदु बन रहे हैं। इस कारकों के प्रकाश में आर्थिक तथा सामाजिक मुद्दों को सुलझाने के लिए नगर की सरकारों में महत्वपूर्ण स्तर उभर रहे हैं (या सम्भवतः उभर रहे हैं)। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है । भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा द्वारा तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा द्वारा पारित और 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत एवं 1 जून, 1993 से प्रवर्तित 74वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय नगरीय शासन के सम्बन्ध में संविधान में भाग- 9- क नये अनुच्छेदों (243 त से 243 य छ तक) एवं 12वीं अनुसूची जोड़कर संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। नगरीय निकाय ऐसी संस्थाऐं हैं, जिनकी निश्चित सेवाएं एवं नियामक कार्य हैं। नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को मूलभूत नागरिक

सुविधाएं यथा- स्वच्छ पेयजलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण, आदि उपलब्ध कराया जाना, इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। जैसे- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय निकाय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतर्मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है।

16.6 नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता,केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति ,विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भ्रष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। नगर विकास जैसे मुद्दों पर सरकार, निकाय, गैर-सरकारी संगठन एवं नागरिकों के परस्पर समन्वयन व सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

भारत में 'टॉप हेवी कैरेक्टर' क्षेत्र ने असमानता तथा पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं तथा भारतीय शहरीकरण के विकास को प्रोत्साहित किया गया है। आर्थिक दृष्टि से शहरीकरण का तृतीयक क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध है। 'ट्रिकल-डाउन' पद्धति से शहरीकरण तथा सम्बन्धित अवसंरचना तथा सेवाओं के लाभों को फैलाने में सफलता नहीं मिली है। इसके कारण शहरी क्षेत्रीय असमानता अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से बढ़ी है। हाल की शहरीकरण पद्धति परिवहन-कॉरिडोर आधारित शहरीकरण को बढावा देता है। इस प्रकार संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढावा देने के लिए शहरी केंद्रों का चार-सतही क्रम प्रस्तावित किया गया है।

नगरीकरण विकास प्रक्रिया का ही एक अंग है। ग्रामीण क्षेत्रों जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन आर्थिक विकास की दृढ़ कसौटी है। पिछड़े हुए स्थिर समाज में नगरीकरण की प्रक्रिया वस्तुतः धीमी होती है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने में नगर सक्षम नहीं होते। किन्तु फिर भी ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की तरफ तेजी से पलायन रोज़गार पाने के उद्देश्य से ही होती है और इस स्थिति में यह पलायन तब और तेज हो जाता है जब पूँजी गहन उद्योगों की बजाय श्रम गहन उद्योगों पर बल दिया जाता है। इसके विपरीत नगरीकरण की गति धीमी तब होती है जब कुल जलसंश्या के अनुपात में नगरीय जनसंख्या बहुत ही उच्च स्तर पर पहुँच जाती है। यह स्थिति अभी कुल मिलाकर 30 देशों में आई है, जो विकसित औद्योगिक देश कहलाते हैं। बढ़ते शहरीकारण का परिणाम देश के असंतुलित विकास के रूप में सामने आ रहा है। बढ़ते शहरीकरण के साथ तीसरी समस्या ग्रामीण इलाकों में कार्यशील आबादी में आ रही कमी और खेती-बाड़ी की उपेक्षा के रूप में पैदा हुई है।

नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय नगरीय निकायों की स्थापना से यह अपेक्षा की गयी कि स्थानीय स्वशासन के लिये स्थापित ये संवैधानिक संस्थान स्थानीयस्तर पर आर्थिक विकास को बढ़ाते हुये सामाजिक न्याय को भी लाने की जिम्मेदारी निभायेंगे। स्थानीय नगरीय निकायों की स्थापना के बाद से ही इनकी क्षमताओं के विकास का मुद्दा निरंतर एक चुनौती के रूप में सामने खड़ा है। क्षमता विकास के इस प्रश्न को मानवीय संसाधनों के साथ ही साथ संस्थागत स्तर पर भी देखने और समझने की जरूरत है। वास्तव में क्षमताओं के अभाव के कारण ही स्थानीय नगरीय निकायों में कार्य, कार्यकर्ता और कोष का सही तरीके से हस्तानांतरण नहीं किया जा सका है। स्थानीय नगरीय निकायों जैसी संवैधानिक संस्थाओं के जन्म लेने के बाद वयस्क हो जाने के बाद भी इनकी क्षमता कैसे बढ़ायी जाय, इसका चिन्तन केन्द्र या राज्य सरकारों के द्वारा ही किया जा रहा है। स्थानीय स्वशासन की ईकाइयॉ खुद भी अपने आप को सशक्त बनाने की बहुत इच्छुक नजर नहीं आती हैं।

देश की आबादी के दो रुझान स्पष्ट हैं। पहला यह कि शहरों की आबादी बढ़ रही है और दूसरा यह कि युवाओं की आबादी बढ़ रही है। दूसरे रुझान का सम्बन्ध भी शहरीकरण से ही है, क्योंकि युवा को अंतत: शहरों की ओर ही आना है। आजादी के बाद लगातार शहरीकरण बढ़ रहा है। गांवों से आबादी का बड़े पैमाने पर पलायन हो रहा है। 1991 की जनगणना के वक्त यह 27 प्रतिशत था तो 2001 में 29 प्रतिशत हो गया था। जो भी देश अमीर हैं, विकसित हैं, वहाँ शहरी आबादी का प्रतिशत 70-90 प्रतिशत तक है। देश के आर्थिक विकास में शहरों का योगदान भी ज्यादा होता है। पश्चिम की तुलना में हमारे यहाँ आज भी शहरी आबादी 30-35 प्रतिशत ही है। हमें वह बहुत ज्यादा इसलिए दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमारे यहाँ शहरीकरण तो हो गया, लेकिन उस अनुपात में सुविधाएं नहीं बढ़ीं, आधारभूत संरचना का विकास नहीं हुआ। बिजली-पानी, स्वच्छता, परिवहन और सड़कों की उचित व्यवस्था नहीं है। वैश्वीकरण के साथ शहरीकरण तो बढ़ना ही है, साथ ही गांवों से आबादी का पलायन भी बढ़ना ही है। यह रफ्तार और बढ़ेगी। इसलिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि आने वाले समय में हमारी सरकार को बुनियादी संरचना खड़ी करनी होगी, जनता को मूलभूत सुविधाएं देनी होंगी। चूँकि शहरीकरण का सबसे ज्यादा लाभ निजी क्षेत्र को मिलेगा, इसलिए उसकी भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होगी। यदि बुनियादी सुविधाओं के मोर्चे पर हम कामयाब हो गए तो हम सतत आबादी विकास को प्राप्त कर लेंगे। 1901 से 2001 की अवधि में यहाँ कुल शहरों की संख्या 1827 से बढ़कर 5161 (वर्ष 2001 में) हो गई। शहर तो बढ़े परन्तु यह बात भी साफ तौर पर उभरकर आती है भारत में छोटे शहरों से ज्यादा बड़े शहरों का विकास हुआ है। वर्ष 1901 में एक लाख की जनसंख्या वाले केवल 24 शहर थे जो वर्ष 2001 में बढ़कर 393 हो गये जबकि 5 से 10 हजार की जनसंख्या वाले शहरों की संख्या 744 से बढ़कर महज 888 हो पाई। यानी संसाधन और विकास बड़े नगरों के आसपास केन्द्रित हुआ। बड़े शहरों में रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 26 से बढ़कर अब 68 हो गया है और छोटे शहरों में आबादी का अनुपात कम हुआ है। शहरीकरण का यह परिदृश्य बताता है कि कहीं न कहीं गांवों की बदहाली ने इसके लिये उर्वरक का काम किया है। वर्ष 1921 में भारत में 685665 गाँव थे और गांधी जी कहते थे कि हमारा देश 07 लाख गणराज्यों का देश है और वर्ष 2001 की जनगणना बताती है कि अब महज 593731 गाँव ही देश में आबाद हैं। कहां गये ये 92 हजार गाँव मतलब यह है 28 गाँवों की कीमत पर एक शहर खड़ा हुआ। मौजूदा दशक में ही 7863 गाँव शहरों की सीमा में शामिल कर दिए गए। आज भारत के शहरों में लगभग 34 करोड़ लोग रहते हैं और यह संख्या अगले 20 वर्षों में बढ़कर 59 करोड़ हो जायेगी। आज शहरी जीवन के 02 घंटे हर रोज ट्रैफिक के नाम होते हैं। वर्तमान स्थिति में भारत में एक किलोमीटर सड़क पर 170 वाहनों का घनत्व है, जो सड़कों पर जाम की स्थिति बनाता है। अगले 20 वर्षों में जाम का समय दो गुना हो जाने वाला है, क्योंकि निजी परिवहन साधनों को भारत में ज्यादा विस्तार दिया गया। जिससे सार्वजनिक परिवहन सेवायें बेहद कमजोर हो गई। आज 70 प्रतिशत शहरी परिवहन निजी साधनों से होता है जिसे आधा करने की जरूरत है। कार्बन उत्सर्जन, दुर्घटनायें और तनाव भी यातायात की अव्यवस्था के बड़े परिणाम है। इस तथ्य को महज नकारात्मक कहकर हमें नकारना नहीं

चाहिए कि देश-समाज ज्वालामुखी सरीखे विस्फोट की संभावना के मुहाने पर आ बैठा है। भारत के चार राज्यों (बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल और उत्तराखंड) के 36 शहर हर रोज डेढ़ अरब लीटर अपशिष्ट मैला पानी बिना उपचार के गंगा के बेसिन में छोड़ते हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मण्डल की शहरों में पानी की स्थिति पर जारी ताजा रिपोर्ट के मुताबिक भारत के 908 शहर हर रोज 3.80 अरब लीटर मैला पानी पैदा करते हैं और इसमें से 2.80 अरब लीटर मैला अपशिष्ट बिना उपचार के शेष गंदा पानी खुले मैदानों और नदियों (जैसे गंगा, नर्मदा, शिप्रा, चंबल आदि) में मिलने के लिये छोड़ दिया जाता है। 113 शहरों द्वारा गंगा और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में हर रोज डेढ़ अरब लीटर अपशिष्ट गंदा पानी छोड़ा जाता है। ऐसे में बेतरतीब ढंगी शहरों का यह देश किसी भी ऐसी महामारी के चपेट में आ सकता है, जिसके लिये हम खुद जिम्मेदार होंगे। हम उस स्थिति में कभी नहीं आ सकेंगे जब शहरों द्वारा पैदा किये गये अरबों टन कचरे का उपचार करके उसे ठिकाने लगा सकें। प्रोफेसर सुरेश तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट के मुताबिक 25.7 प्रतिशत शहरी गरीबी की रेखा के नीचे हैं। ये एक व्यक्ति पर 19 रूपये प्रतिदिन से भी कम खर्च करके जीवनयापन करते हैं। आज जबकि शहरों में अपनी छत का सुख हासिल करना बुनियादी जरूरत है, इन परिवारों के लिए आवास का आधार मिलना एक दूर का ख्वाब है। यही कमी सड़क और रेल यातायात के मामले में भी जमकर बढ़ने वाली है। आवास व्यवस्था के बारे में उभरकर आये निष्कर्ष और ज्यादा गंभीर हैं। आज जरूरत 3 करोड़ घरों की है पर केवल 50 लाख घर ही बन पायेंगे। यह अन्तर 2030 के शहरों में खूब बढ़ने वाला है। तब 5 करोड़ घर चाहिये होंगे और बन पायेंगे केवल 1.20 करोड़।

'दक्षिण-पूर्व एशिया' की कुल आबादी का 34 प्रतिशत भाग शहरी है। यह आबादी तेजी से बढ़ रही है और उसका बहुत गहरा दबाव सभी सेवाओं पर पड़ रहा है। इनमें परिवहन-व्यवस्था, जलापूर्ति, स्वच्छता और बिजली प्रमुख हैं। यू.एन. हैबिटैट के अनुसार, दक्षिण-एशिया में 40 प्रतिशत से अधिक आबादी मलिन बस्तियों में रहती है। अक्सर मजदूर कार्यस्थल के आस-पास या मलिन बस्ती के बीच में रहते हैं, उदाहरण के लिए सड़कों के किनारे या भवन-निर्माण स्थल के पास। सुरक्षित पेयजल तथा स्वच्छता-सेवाओं के उपलब्ध न हो पाने तथा आस-पास के परिवहन, कारखानों और औद्योगिक परिसरों से पैदा होने वाले प्रदूषण मजदूरों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं। इसका प्रतिकूल असर पड़ता है आधारभूत पर्यावरण-सम्बन्धी सेवाओं-जैसे स्वच्छ हवा, जल और मिटटी पर। ठोस कचरे के खराब प्रबन्धन से रिसाव के कारण भू-जल और सतह जल विषाक्त हो रहा है और कचरे को अनियन्त्रित तरीके से जलाए जाने के कारण वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। ठोस कचरे की प्रोसेसिंग और निपटान की अवैज्ञानिक पद्धतियों के कारण पर्यावरण के जोखिम बढ़ रहे हैं।

शहरी ढाँचे से सम्बन्धित उच्च अधिकार प्राप्त विशेषज्ञ समिति के अनुमानों के अनुसार भारत के शहरी पर्यावरण सरोकारों के प्रबन्धन में वित्त व्यवस्था अभी भी एक बड़ी बांधा है। किन्तु, उम्मीद बनी हुई है। अनेक रचनात्मक स्थितियाँ भी सामने आई है, जैसे ठोस कचरे और स्वच्छता सुविधाओं के बेहतर प्रबन्धन में निजी क्षेत्र की भागीदारी इसका एक उदाहरण है।

शहरीकरण विकास एक सूचक होते हुए भी कई तरह की समस्याओं का जन्मदाता है। शहरी विकास को सही रास्ते पर लाने के लिए अमीरों और गरीबों के बीच जो टकराव की स्थिति है, उसकी जगह सहयोग को प्रतिस्थापित करना होगा। संपन्न वर्ग अनेक स्थानों पर झुग्गी-झोंपड़ियों और गंदी बस्तियों में रहने वाल लोगों के प्रति सहानुभूति और संवेदना से हीन हो जाते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि नगरों का अधिकांश निर्माण कार्य इन्हीं वर्गो के परिश्रम एवं त्याग से हुआ है। निर्धन वर्ग के इस आन्दोलन को संपन्न वर्ग के लोगों को स्वीकार करना चाहिए। परिणामतः परस्पर सहयोग की जो भावना उत्पन्न होगी, उससे नगरों का जो विकास होगा वह संतुलित तथा उचित होगा। शहरीकरण को लेकर सरकार का नजरिया यह है कि इस पर राजनीति करने के बजाय इसे मौके के रूप में देखा जाना चाहिए। उसके मुताबिक शहरों में गरीबी दूर करने की ताकत होती है और हमें इस ताकत को और आगे बढ़ाना चाहिए ताकि आर्थिक समृद्धि का स्वत: प्रसार हो। सुख-सुविधाओं की मौजूदगी के चलते शहर सदा से

मनुष्य के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। आज की तारीख में तो ये विकास के इंजन बन चुके हैं। दरअसल, ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले शहरों में लोगों की ज्यादा आमदनी और वस्तुओं का अधिक उपभोग जहाँ 'पुल फैक्टर' का काम करता है वहीं गांवों की गरीबी-बेरोजगारी 'पुश फैक्टर' का। ये दोनों मिल कर शहरों में भीड़ बढ़ा रहे हैं। चूंकि शहरों में लोगों की आमदनी ज्यादा होती है इसलिए वस्तुओं और सेवाओं की खपत बढ़ती है जिसका नतीजा अंततः कम्पनियों की अधिक कमाई और देश के जीडीपी की तेज रफ्तार के रूप में सामने आता है। आंकड़ों के मुताबिक भारत के सौ सबसे बड़े शहरों में देश की महज सोलह फीसद आबादी निवास करती है, लेकिन राष्ट्रीय आय में इन शहरों का हिस्सा 43 प्रतिशत है। इसीलिए कई विशेषज्ञ देश में शहरीकरण को रफ्तार देने की वकालत करते रहते हैं। वे चीन का हवाला देते हैं जहाँ की आधी आबादी शहरों में रहती है, जबकि भारत में यह अनुपात महज एक-तिहाई है। उनका तर्क है कि यदि भारत को मांग आधारित विकास दर को बढ़ावा देना है तो उसे तेज शहरीकरण की नीति अपनानी चाहिए। भले ही शहरों को विकास का 'ड्राइवर' माना जाता हो लेकिन शहरीकरण के स्तर की दृष्टि से भारतीय शहर नकारात्मक तस्वीर पेश करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में नगरीय शासन की अवसंरचना का विकास अत्यावश्यक है ,साथ हीं कर्मचारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी समय की मांग है। विशेषज्ञ सुविधाओं की आवश्यकता, कुशल प्रबन्धन, नवीन तकनीक के साथ सुविधाओं का विकास, कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था एवं कारगर वित्तीय प्रबन्ध न आदि ऐसे आवश्यक तथ्य है जो नगरीय शासन को बदलते परिदृश्य में कारगर सिद्ध कर सकते हैं । नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगर निकायों का कार्यकाल कितने वर्षों का होता है?
2. नगर निकायों के आय के स्रोत नहीं हैं?
3. किस संविधान संशोधन के तहत् नगर प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है?
4. कितनी जनसंख्या पर नगर निगम का गठन होता है?
5. कितनी जनसंख्या पर नगर पंचायतों का गठन होता है?

16.7 सारांश

विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरुरतें पूरी करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया लोगों की शासन व लोक विकास में भागेदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम, नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण बनता गया। 1992 में सरकार के 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वां संशोधन में नगर निकायों- नगर पलिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास सम्बन्धी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील है, निर्णय लेने की स्थिति में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्यम से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित

की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निणर्य प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

नगरीय शासन, आधुनिक समय भी अब विकेन्द्रीकरण की स्थिति को और अधिक मजबुत बना रहा है। नगरीय शासन के लिए वर्तमान समय में नगरों में बढते जनसंख्या के दबाव को व्यवस्थित करना और नगरीय लोगों की आम जरूरतों का सुचारू संचालन एक चुनौती है। ब्जिली, पीने का साफ पानी, कुड़ा निस्तारण, बरसात के पानी का निस्तारण, सड़कें ये सभी व्यवस्थित रखना है। वर्तमान सरकार के 'स्मार्ट सीटी' प्रोजेक्ट भी नगरों की दशा व दिशा बदल सकते हैं।

16.8 शब्दावली

महत्ता- महत्व/उपयोगी, अपव्यय- फिजुल खर्ची, पारदर्शिता- इमानदारी/ जिसके आर-पार देखा जा सके

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पांच साल, **2.** चंदे की धनराशि, **3.** 74वां संविधान संशोधन **4.** एक लाख, **5.** 50 हजार

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हार्क नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदार्शिका।
2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।
4. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

16.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज, के0के0 शर्मा।
2. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
3. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन और नगरीय संस्थाओं के विकास में 74वें संविधान संशोधन का क्या योगदान है? स्पष्ट करें।
2. आधुनिक समय में नगरीय प्रशासन की जिम्मेदारियों पर एक लेख लिखें।

इकाई- 17 नगर निगम

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 नगर निगम का ऐतिहासिक विकास
17.3 विभिन्न राज्यों में नगर निगम
17.4 नगर निगम की स्थापना
17.5 नगर निगमों का संगठन
17.6 नगर निगम के कार्य
17.6.1 अनिवार्य कार्य
17.6.2 ऐच्छिक कार्य
17.7 नगर निगम के आय के साधन
17.8 नगर निगम पर नियन्त्रण
17.9 सारांश
17.10 शब्दावली
17.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.14 निबंधात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

भारत में ग्रामीण स्वशासन की भाँति ही नगरीय स्वशासन भी अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। चन्द्रगुत मौर्य के दरबार में विद्यमान यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र की नगरीय व्यवस्था का उल्लेख किया है। मुगलकाल में भी नगरीय प्रशासन का उल्लेख मिलता है। किन्तु नगरीय शासन की आवश्यकता ब्रिटिश काल में प्रबल रूप से महसूस की गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में ही उद्योगों एवं व्यापार के कारण नगरो का तेजी के साथ विकास हुआ। जिसका स्वाभाविक परिणाम नगरीय समस्याओं के रूप में प्रकट हुआ। इन समस्याओं का तात्कालिक समाधान करने की धारणा ने स्थानीय नगरीय शासन के विचार को जन्म दिया।

इसलिए ब्रिटिश शासन काल में ही नगरीय शासन की स्थापना को मूर्तता प्रदान की गई। जिसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति 1687 ई0 में मद्रास कार्पोरेशन के रूप में देखने को मिलती है। जिससे प्रेरित होकर 1720 में कलकत्ता तथा 1793 ई0 में बम्बई में भी ऐसे ही कार्पोरेशनों की स्थापना की गयी। इन कार्पोरेशनों में भारतीयों के सदस्य होने की भी व्यवस्था थी। यद्यपि इन कार्पोरेशनों की शक्तियां अत्यन्त सीमित थी। ये कुछ कर भी लगा सकते थे जिससे एकत्र कोष को इनके कार्यक्षेत्र के विकास पर खर्च किया जाता था। ब्रिटिश शासन काल में नगरीय संस्थाओं के विकास पर ग्रामीण संस्थाओं के विकास की अपेक्षा ज्यादा ध्यान दिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नगरीय प्रशासन के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त जहाँ ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए व्यापक प्रयास किये गये वहीं नगरीय प्रशासन वहीं का वहीं रह गया जहाँ यह स्वतन्त्रता के पूर्व था। 1992 स्वातन्त्रोत्त भारत में नगरीय प्रशासन को मजबूत करने के लिए इसे 74वें संविधान संसोधन 1992 के द्वारा संवैधानिक दर्जा दे दिया गया है। अतः अब इससे विमुख होना भारतीय जनमानस व सरकारों के लिए प्रतिगामी कदम सिद्ध होगा।

इस इकाई का सम्बन्ध नगर निगम (नगर महापालिका) से है। यह नगरीय प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है। इसमें नगर निगम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ स्वतन्त्रता पश्चात नगर निगम के स्थिति का विवेचन किया गया है। 74वें संविधान संसोधन के उपरन्त नगर निगमों की संरचना, अधिकार व शक्तियां, वित्तीय स्थिति, सरकार के साथ सम्बन्ध तथा महानगरों के विकास में इनकी भूमिका का विस्तृत अवलोकन करने का प्रयास किया गया है।

17.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगर निगम की उत्पत्ति व विकास को समझ सकेंगे।
- नगर निगम के स्थापना के उद्देश्य व सिद्धान्त को जान सकेंगे।
- नगर निगम के वित्तीय स्थिति व कार्य प्रणाली को समझ सकेगें।
- महानगरों के विकास में नगर निगम की भूमिका का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

17.2 नगर निगम का ऐतिहासिक विकास

भारत में नगर प्रशासन का अस्तित्व तथा विकास अत्यन्त प्राचीन समय से है। हड़प्पा एवं मोहन-जोदड़ों की खुदाई में सुव्यवस्थित शहरों के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में पाटलिपुत्र नगर तथा वहाँ के प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होने लिखा है कि नगर का प्रधान उस समय नगराध्यक्ष अथवा 'नागरिक' कहलाता था। नगराध्यक्ष के अधीन गोप तथा स्थानीय हुआ करते थे। मेगस्थनीज ने भी अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में लिखा है कि मौर्य शासकों के द्वारा अपनी राजधानी पाटलिपुत्र के लिए सुव्यवस्थित नगर प्रशासन की व्यवस्था की गयी थी। जिसका कार्यक्षेत्र नगर में कानून व्यवस्था, बाजारों का नियन्त्रण, अपराधों तथा बुराईयों का उन्मूलन, वार्डों के अनुसार, लोगों का पंजीकरण तथा गुप्तचर की व्यवस्था आदि तक विस्तृत था। इस प्रकार प्राचीन काल में नगर संस्थाऐं सुनिश्चित कार्यों के साथ कार्यरत थी। मुगल शासनकाल में शासकों के द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन प्रणाली में अपने हितों के संरक्षण और लाभ को ध्यान में रखकर अनेक परिवर्तन किये। इस परिवर्तित स्थानीय स्वायत्त शासन के प्रारूप का वर्णन एक लेखक के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है कि ''उस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। नगर का प्रशासन एक अधिकारी के सुपुर्द होता था, जो कोतवाल कहलाता था, दण्ड व्यवस्था, पुलिस तथा वित्तीय मामलों में उसकी सत्ता सर्वोपरि होती थी। इसके अतिरिक्त वह अनेक परिसंघ विषयक कार्यों का भी सम्पादन करता था।''

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पश्चात कई कारणों से शहरी क्षेत्रों के लिए नगरीय शासन के बारे में सोचा गया। इसके लिए सर्वप्रथम 1687ई0 में मद्रास में नगर निगम (कार्पोरेशन) की स्थापना की गयी। इसमें भारतीयों के सदस्य होने की भी व्यवस्था थी। नगर निगम में एक निगमाध्यक्ष (महापौर, निगमपति) एक नगर वृद्ध (एल्डरमैन) तथा एक नगर प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। उन्हें कुछ कर लगाने का अधिकार दे दिया गया था। जिन्हें वे एक नगर भवन (टाउन हाल), एक कारागार व एक स्कूल का भवन बनाने में तथा ऐसी अन्य सजावट की वस्तुओं व भवनों के निर्माण में जो निगम व उसके निवासियों की प्रतिष्ठा, हित, शोभा, सुरक्षा व प्रतिरक्षा के अनुरूप हो तथा नगर निगम के अधिकारियों व स्कूल अध्यापक के वेतन के लिए खर्च कर सकते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विश्वास था कि ''यदि लोगों को स्वयं अपने ऊपर कर लगाने दिया जाय तो वे सार्वजनिक कल्याण के लिए पांच शिलिंग स्वेच्छा से दे देगें, किन्तु यदि हम अपनी निरंकुश शक्ति के द्वारा कर वसूल करे तो वे छः पैंस भी नहीं देना चाहेगें।'' किन्तु लोगों ने करारोपण का यथा सामर्थ्य प्रतिरोध किया।

1793 ई0 के अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) के द्वारा मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता के तीन महाप्रान्तीय नगरों में नगर महापालिकाओं अर्थात् कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। इन महापालिकाओं को सफाई इत्यादि का

प्रबन्ध करने, पुलिस व्यवस्था तथा सड़कों के रखरखाव, शराब इत्यादि के बिक्री लाइसेन्सों को देने तथा नाम मात्र के टैक्स लगाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1842 ई0 में बंगाल अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार बंगाल के जनपदीय नगरों (जिला नगरों) में भी नगर प्रशासन का विस्तार कर दिया गया। उक्त अधिनियम द्वारा व्यवस्था की गयी कि यदि किसी नगर के दो तिहाई मकान मालिक प्रार्थना करें तो सफाई के लिए एक नगर समिति की स्थापना कर दी जायेगी। यह अधिनियम निरर्थक साबित हुआ, क्योंकि इसकी व्यवस्था ऐच्छिक थी। इसके साथ ही साथ प्रत्यक्ष करारोपण के कारण इसका सर्वत्र प्रतिरोध किया गया। नगरीय शासन के विस्तार के दृष्टि से 1850 ई0 में सम्पूर्ण देश के लिए एक अधिनियम पारित किया गया। जिसके द्वारा पूर्व की संविधियों के विपरीत अप्रत्यक्ष करारोपण का प्रावधान किया गया, जिसके लिए लोग स्मरणातीत काल से अभ्यस्त हो चुके थे। इस अधिनियम के अनुसार ही उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों, बम्बई तथा अन्य प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गई। इस अधिनियम के लागू होने पर सरकार को नगरपालिकाओं के लिए आवश्यकतानुसार न्यायधीशों तथा कमिश्नरों की नियुक्ति करने का भी अधिकार दे दिया गया।

1863 ई0 में राजकीय सैनिक स्वास्थ्य आयोग ने अन्य चीजों के साथ-साथ भारतीय नगरों की गन्दी स्थिति के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त किया। फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में नगर प्रशासन का विस्तार करने के लिए अनेक अधिनियम पारित किये गये। अब तक नगरीय स्थानीय शासन की स्थापना के लिए ऐच्छिकता के सिद्धान्त का अनुसरण किया गया था। जिसका परित्याग करते हुए प्रान्तीय सरकारों को नगर समितियां बनाने का अधिकार दे दिया गया। इन समितियों का प्रमुख कार्य सफाई, प्रकाश तथा पानी की व्यवस्था करना था। 1870 ई0 में लार्ड मेयो का सुप्रसिद्ध विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें स्थानीय स्वायत्त शासन को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया था। इस प्रस्ताव की भाषा थी कि ''यदि इस प्रस्ताव को पूर्ण अर्थ में और पूरी निष्ठा के साथ कार्यान्वित किया जाय तो इससे स्वशासन का विकास करने, म्यूनिसिपल संस्थाओं को सशक्त बनाने और भारतीय तथा यूरोपीय लोगों को प्रशासनिक मामलों के साथ पहले से कही अधिक सीमा तक सम्बद्ध करने का अवसर मिलेगा।'' आगे चलकर इसी सिद्धान्त के आधार पर ''जनप्रतिनिधि स्थानीय कार्यों की जिम्मेदारी को स्वयं ग्रहण करें'' की धारणा का उदय हुआ। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नगरीय प्रशासन के क्षेत्र को सर्वाधिक उपयुक्त माना गया।

1882 ई0 में लार्ड रिपन के द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य इन संस्थाओं में निर्वाचित या गैर-सरकारी प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान करते हुए इन पर सरकारी नियन्त्रण को सीमित करना था। इस प्रस्ताव को स्वायत्त शासन के मैग्नाकर्टा की संज्ञा प्रदान की जाती है।1909 ई0 में स्थापित राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग भी नगरीय संस्थाओं के विकास की दिशा में एक मजबूत पहल थी। किन्तु स्वतन्त्रता पूर्व नगर निगमों के स्थापना की दिशा में किये गये प्रयास नगण्य प्रतीत होते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी ऐसा प्रतीत होता है कि नगरीय प्रशासन की अपेक्षा ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने पर ही ज्यादा ध्यान दिया गया। यही कारण है कि ग्रामीण स्थानीय शासन के क्षेत्र में हुए नाटकीय परिवर्तनों की तुलना में नगरीय प्रशासन के विकास की गति इतनी धीमी रही कि वह नगण्य प्रतीत होती है। नगरीय स्थानीय शासन की ओर ध्यान तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दिया गया। नगरीय शासन के महत्व को स्वीकार करते हुए इसमें कहा गया कि ''आयोजन के अगले दौर में यथासम्भव अधिकाधिक नगरों एवं कस्बों को आयोजन की व्यवस्था में अवयवी ढंग से सम्मिलित किया जाय, प्रत्येक राज्य अपने साधनों को जुटाये और नगरों के निवासियों के लिए पहले से अच्छे जीवन की परिस्थितियों का निर्माण करें।'' इस योजना में यह स्वीकार किया गया कि नगरीय क्षेत्र तीव्र गति से बढ़ रहें है। ऐसे में इन क्षेत्रों की समस्याएं विकराल रूप ले रही हैं जिसका समाधान केवल

राज्य की सरकारों के लिए सम्भव नहीं रहा बल्कि इसके लिए नगर प्रशासन और सामान्य जनता में आपसी सहयोग आवश्यक है। योजना में भविष्य के लिए उचित दिशा प्राप्त करने के लिए निम्न कार्य योजना बनायी गयी-

1. सार्वजनिक अभिग्रहण और उचित वित्तीय नीतियों के द्वारा नगरीय भूमि के मूल्य का नियन्त्रण।
2. भूमि के प्रयोग के लिए सरकार आयोजन और महायोजना का निर्माण।
3. नगरों में उनकी आवश्यक तओं के अनुसार निवास तथा अन्य सुविधाओं के लिए मानक तैयार करना।
4. नगरीय प्रशासन को सशक्त बनाना ताकि वह विकास सम्बन्धी अन्य दायित्वों को पूरा कर सके।

केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर नगरीय स्थानीय शासन के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए निम्नलिखित समितियों का गठन किया गया है- स्थानीय वित्त जांच समिति 1951, नगर प्रशासन के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में समिति 1963, नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय साधनों के वृद्धि के सम्बन्ध में मन्त्रियों की समिति 1963, ग्रामीण-नगरीय सम्बन्धों के विषय में समिति और नगर-प्रशासन समितियों की सेवा की शर्तों से सम्बन्धित समिति।

इसी प्रकार महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब और गुजरात की सरकारों ने नगरीय स्वायत्त शासन के कार्य प्रणाली की जाँच और उनके सुधार के लिए समय-समय पर भिन्न-भिन्न समितियों का गठन किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगर निगमों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ी। यह इसी से स्पष्ट है कि 1947 ई0 में इनकी संख्या जहाँ मात्र तीन थी, वहीं 1969 ई0 में इनकी संख्या बढ़कर तीस हो गयी। नगरीय शासन के पुनर्गठन के लिए प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के शासन काल में 65वां संविधान संसोधन विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि नगर निकायों को स्थानीय शासन के इकाई के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करने हेतु शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। इस अधिनियम द्वारा नगरीय संस्थाओं के तीन वर्ग बनाये गये। प्रथम एक हजार से बीस हजार शहरी आबादी वाली नगर पंचायतें, द्वितीय बीस हजार से तीस हजार शहरी आबादी वाली नगरपालिका और तृतीय तीस हजार से कम शहरी आबादी वाले नगर निगम। इनके निर्माण की घोषणा करने का अधिकार राज्यपाल को प्रदान किया गया था। इसमें अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण का भी प्रावधान किया गया था। नगर निकायों का कार्यकाल पांच वर्ष निश्चित किया गया तथा इससे पूर्व विघटन स्थिति में छः माह के भीतर चुनाव बाध्यकारी था। निर्वाचनों का अधीक्षण निर्देशन और नियन्त्रण भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाना था। वित्त आयोग का कार्यक्षेत्र बढ़ाकर नगर निकायों की वित्तीय समीक्षा करने तक कर दिया गया। इन निकायों के वित्तीय स्थिति को सुधारने पर भी प्रबल जोर दिया गया था। यद्यपि इस विधेयक को लोकसभा के द्वारा तो पारित कर दिया गया लेकिन राज्य सभा में कांग्रेस का बहुमत न होने के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका। नगरीय स्थानीय स्वशासन की दिशा में सबसे ठोस पहल 1991 ई0 में पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्री बनने के बाद हुई। इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के उद्देश्य से 73वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। जिसे दिसम्बर 1992 में लोकसभा और राज्य सभा दोनों के द्वारा पारित कर दिया गया। 20 अप्रैल 1993 ई0 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर यह विधेयक 74वें संविधान संसोधन 1993 ई0 के रूप में जाना गया। इस संसोधन द्वारा संविधान में अध्याय 09 (क) नाम से एक नया अध्याय जोड़ दिया गया। जिसका सम्बन्ध शहरी प्रशासन से है। इस अधिनियम द्वारा शहरी प्रशासन के सर्वोच्च संस्था के रूप में नगर निगम की स्थापना की गई है।

17.3 विभिन्न राज्यों में नगर निगम

स्थापना के आधार पर भारतीय नगर महापालिकाओं को दो श्रेणियों विभाजित किया जा सकता है- स्वतन्त्रता पूर्व स्थापित नगर महापालिकाएं और स्वतन्त्र भारत में स्थापित नगर महापालिकाएं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा सर्वप्रथम 1687ई0 में मद्रास में कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। जिसमें भारतीयों को भी सदस्य बनाने की व्यवस्था की गयी थी। यद्यपि इनको अधिकार बहुत कम दिया गया था। ये सीमित मात्रा में कर भी लगा सकते थे। बाद में चलकर 1720 ई0 में कलकत्ता और 1793ई0 में बम्बई में भी इसी तरह के कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। चूंकि स्वतन्त्रता से पूर्व स्थापित इन नगर निगमों की स्थापना एक विशेष विधान के अन्तर्गत की गयी थी। इसलिए इनको भंग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उस विधान में इनको भंग करने का कोई प्रावधान नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व स्थापित इन नगर-निगमों के स्वरूप में भी बदलती हुई परिस्थितियों का अनुरूप संसोधन व परिवर्तन होता रहा है। 1938ई0 में नियुक्त स्थानीय शासन समिति का सुझाव था कि जिन नगर पालिकाओं की जनसंख्या एक लाख पचास हजार अथवा उससे अधिक हो तथा वार्षिक आय 15 लाख से कम न हो उन्हें नगर निगमों में परिवर्तित कर दिया जाय। यद्यपि वर्तमान समय में ये कसौटियां अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि पन्द्रह अगस्त 1947 ई0 में स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक भारत में केवल तीन नगर निगम संस्थाएं (मद्रास, कलकत्ता और बम्बई) ही स्थापित हो सकी थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगर निगम की स्थापना राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विशेष संविधि के अन्तर्गत की जाती है। इस प्रकार की विधि किसी एक निगम विशेष या राज्य के सभी निगमों के लिए बनायी जा सकती है। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद क्रमशः विभिन्न राज्यों के द्वारा अधिनियम बनाकर नगर निगमों की स्थापना का प्रयास किया गया। मध्य प्रदेश में मध्यप्रदेश नगर निगम अधिनियम 1956, केरल में 1956 ई0 में, उत्तर प्रदेश में उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम 1959, आसाम में 1960 ई0 में, कर्नाटक में 1964 ई0 में, महाराष्ट्र में महापालिका अधिनियम 1965, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में 1965 ई0 में अधिनियम बनाकर नगर निगमों की स्थापना की गयी। जिसके कारण नगर निगमों की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। 1947 ई0 में यह तीन, 1975 ई0 में 34, 1986 ई0 में 68 तथा 1992 ई0 तक यह संख्या 73 तक पहुँच गयी थी। 74वें संविधान संसोधन के उपरान्त प्रायः सभी राज्यों में नगर निगम की अर्हताए पूरे करने वाले नगरों में इनकी स्थापना की जा चुकी है। दिल्ली में नगर निगम की स्थापना संघीय संसद के द्वारा की गयी है। इसलिए नगर निगम संस्था के रूप में वह अधिक सम्माननीय और अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वायत्ता का उपयोग करता है।

17.4 नगर निगम की स्थापना

नगर निगम सर्वोच्च नगरीय निकाय है। नगरीय शासन की इस पद्धति की उत्पत्ति उन बड़े नगरों के लिए हुई है जहाँ कि नागरिक समस्याएं अधिक जटिल हो जाती हैं। नगरीय समस्याओं का समाधान करने के लिए ही राज्य संविधि बनाकर नगर निगमों की स्थापना करते है। डॉ0 एस0आर0 माहेश्वरी ने लिखा है कि भारत में नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सोपानात्मक नहीं है नगर निगम अन्य नगरीय संस्थाओं की तुलना में अधिक स्वायत्तता का उपयोग करने के कारण निश्चित रूप से अधिक सम्माननीय हैं। राज्य विधानमण्डल के विधि द्वारा स्थापित होने के कारण ही इनके निर्माण के लिए कठोर कसौटियों का निर्धारण किया जाता है। 1966ई0 में ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने सुझाव दिया कि स्थानीय शासन की निगम पद्धति को उन्हीं नगरों में स्थापित किया जाना चाहिए, जिनकी जनसंख्या 05 लाख तथा वार्षिक आय एक करोड़ से कम न हो। यद्यपि जनसंख्या और आय आधारित यह कसौटी अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। इसलिए नगर निगमों की स्थापना की एक मात्र कसौटी इसको नहीं माना जा सकता है। मोटे तौर पर यह माना जाता है कि किसी नगर में नगर निगम स्थापित करने के लिए निम्नलिखित शर्तो का पूरा होना आवश्यक है-

1. क्षेत्र घना बसा हो।
2. नगरपालिका के वर्तमान विकास के साथ-साथ भावी विकास की गुंजाइश हो।
3. वर्तमान वित्तीय विकास के साथ-साथ भविष्य में भी विकास सम्भावित हो।

4. जनता में बढ़े हुए कर को वहन करने की इच्छा और क्षमता हो।
5. लोकमत निगम निर्माण के पक्ष में हो।

वस्तुतः ये सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं हैं बल्कि यह तो पूर्णरूपेण राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह किस नगर में नगर की स्थापना करे। प्रायः राज्य सरकार उसी नगर को नगर निगम का दर्जा प्रदान करती है जो अत्यन्त बड़ा हो और साथ ही साथ वहाँ जनमत भी नगर निगम की निरन्तर मांग कर रहा हो। जनसंख्या और राजस्व की कसौटी तो वास्तव में समय सापेक्ष होती है। इसलिए समय के साथ-साथ उसकी सार्थकता जाती रहती है। जैसे 1938ई0 में स्थानीय शासन समिति ने सुझाव दिया था कि जिस नगरपालिका की जनसंख्या 01 लाख 50 हजार या उससे अधिक तथा वार्षिक आय 15 लाख से अधिक हो उन्हे नगर निगम बना दिया जाना चाहिए। वर्तमान समय में यह कसौटी हास्यास्पद होने के साथ-साथ अस्वीकार्य भी है। राज्यों में नगर निगमों की स्थापना राज्य विधानमण्डल द्वारा कानून बनाकर किया जाता है तो केन्द्र शासित प्रदेशों में इनकी स्थापना संसदीय अधिनियमों के आधार पर होता है। इसलिए इनका अस्तित्व एवं अधिकार भी राज्य एवं केन्द्र की इच्छा पर निर्भर होता है।

17.5 नगर निगमों का संगठन

भारतीय महानगरों में स्थापित नगर निगमों के चार प्रमुख घटक होते हैं। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है- 1. परिषद, 2. निगमाध्यक्ष या महापौर, 3. समितियां, 4. नगरपाल या नगर आयुक्त।

1. **परिषद-** परिषद नगर निगम का विधायी अंग होता है। इसलिए इसे स्थानीय विधान सभा की संज्ञा दी जाती है। परिषद के सदस्य दो तरह के होते हैं। प्रथम कुछ सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है, जिन्हें सभासद या पार्षद के नाम से सम्बोधित किया जाता है। द्वितीय कुछ सदस्यों का चुनाव सभासदों के द्वारा किया जाता है। इस चुनाव का उद्देश्य परिषद में बयोवृद्ध या अनुभवी व्यक्तियों, महिलाओं या अन्य तबके लोगों को लाना होता है, इसलिए इनको 'एल्डरमैन' कहा जाता है। इस प्रकार परिषद के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा ही किया जाता है। इसलिए यह जनता के इच्छा को मुखरित करती है, जो अन्ततः नगर विधि का रूप धारण कर लेती है। परिषद के आकार के सम्बन्ध में कोई सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं बनाया गया है, जिसका परिणाम है कि पष्चिम बंगाल के चन्द्रनगर नगर निगम में मात्र 22 सदस्य होते है तो बम्बई नगर निगम के सदस्यों की संख्या 131 होती है।
2. **निगमाध्यक्ष या महापौर-** नगर निगम के अध्यक्ष को निगमाध्यक्ष, महापौर, निगमपाल, निगमपति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। नगर निगम अध्यक्ष नगर का प्रथम नागरिक कहलाता है। इस दृष्टि से उसका पद अत्यन्त सम्मान एवं प्रतिष्ठा से परिपूर्ण होता है। महापौर के चुनाव के सम्बन्ध में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता का अभाव है, इसलिए जहाँ कई राज्यों में आज भी नगर निगम के अध्यक्ष का चुनाव सभासदों के द्वारा किया जाता है तो वहीं उत्तर प्रदेश में इनका चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा पांच वर्ष के लिए किया जाता है। अध्यक्ष के रूप में वह नगर निगम के परिषद के द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए नगर आयुक्त को प्रेषित करता है। नगर के नेता के रूप में वह नगरीय प्रशासन तथा राज्य सरकार के बीच कड़ी के रूप में भी कार्य करता है। नगरीय समस्याओं से राज्य सरकार को अवगत कराने तथा राज्य सरकार के द्वारा नगर के विकास के लिए दिये जाने वाले आदेश व निर्देश को वह क्रियान्वित कराता है। निगमाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में परिषद के कार्यालय पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है। इस दृष्टि से उसे कई प्रदेशों में नगर निगम के सभी अभिलेखों की जांच करने का अधिकार दिया गया है। वह नगर के नागरिक प्रशासन के सम्बन्ध में नगरपाल से जानकारी मांग सकता है।

3. **समितियां-** परिषद, नगर निगम का सबसे शक्तिशाली घटक है। जिसके समस्त कार्य समितियों द्वारा किये जाते हैं। नगर के परिषद की बैठके प्रायः महीने में एक या दो बार होती है। अतः उसके लिए अपने सभी कार्यों को भली-भाँति सम्पन्न करना दुष्कर है। इसलिए लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के अनुरूप परिषद द्वारा अपने सदस्यों की समितियां बना दी जाती है जो उनके कार्यों को सुचारु रूप में संचालित करने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है। परिषद द्वारा नियुक्त समितियों को दो श्रेणियों में रखा जाता है- सांविधिक और गैर- सांविधिक। सांविधिक समितियों का आशय उन समितियों से लगाया जाता है, जिनका निर्माण उसी संविधि के द्वारा की गयी हो जिसके द्वारा नगर निगम की स्थापना की गयी है। जबकि गैर-संविधिक समितियां उन समितियों को कहा जाता है जिनका निर्माण समय-समय पर परिषद के द्वारा बनाये गये उपनियमों के अधीन किया जाता है। इन समितियों में सबसे महत्वपूर्ण कार्यकारिणी समिति होती है, जो नगर निगम के कार्यों को सम्पन्न करने हेतु आदेश देती है। इसके अलावा शहर की व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के लिए विकास, शिक्षा, जन स्वास्थ्य, प्रकाश व्यवस्था, जल, साफ-सफाई, लेखा-जोखा, नगर नियोजन आदि से सम्बन्धित समितियां भी गठित की जाती हैं। इन समितियों की सदस्य संख्या सीमित होने के कारण आवश्यकतानुसार इनकी बैठक किसी भी समय आसानी से बुलायी जा सकती है।
4. **नगरपाल या नगर आयुक्त-** प्रत्येक नगर निगम में निगम की स्वीकृति से राज्य सरकार द्वारा एक मुख्य अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो नगर निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ सदस्य होता है जिसके वेतन का भुगतान नगर निगम के कोष से किया जाता है। नगर आयुक्त के द्वारा ही निगम के समस्त प्रशासनिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता है तथा वह नगर निगम का आवश्यक मार्गदर्शन व नियन्त्रण भी करता है। निगम आयुक्त का कार्य विविधतापूर्ण होता है। वह अधिनियम द्वारा निश्चित कर्तव्यों का पालन करता है। वह सभी नगरीय विवरणों का अभिरक्षक होता है। वही नगर निगम बजट को तैयार कर परिषद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए रखता है। प्रशासनिक-तन्त्र का प्रमुख होने के नाते वह सभी सरकारी कार्यो के सरल सम्पादन के लिए उनको विभिन्न विभागों में बांटता है। इस प्रकार वह नगर निगम का सबसे महत्वपूर्ण और अत्यन्त शक्तिशाली पदाधिकारी होता है। नगर आयुक्त की सहायता के लिए नगर निगम में सहायक नगर अधिकारी, उपनगर अधिकारी, नगर अभियन्ता तथा स्वास्थ्य अधिकारी आदि प्रमुख हैं। नगर आयुक्त को परिषद तथा उसकी समितियों की बैठकों में भाग लेने, परिषद में किसी मुद्दे पर विचार-विमर्श करने का भी अधिकार होता है लेकिन परिषद या उसकी समितियों के निर्णय के लिए मतदान में भाग लेने का अधिकार उसे नहीं होता है।

17.6 नगर निगम के कार्य

नगर निगम के कार्यों के सम्बन्ध में भी राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता का अभाव देखने को मिलता है। यह इसी से स्पष्ट है कि जहाँ कुछ राज्यों के नगर निगम स्थापित करने वाली संविधियों में उनके कार्यों का विवरण संक्षिप्त रूप में दिया गया है तो वही कुछ राज्यों में नगर निगम को स्थापित करने वाली संविधियों में इनका उल्लेख अत्यन्त विस्तार पूर्वक किया गया है। इसके अतिरिक्त नगर निगम के कार्यों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है- अनिवार्य कार्य और ऐच्छिक कार्य। इनकी सूची में इस हद तक असमानता है कि किसी राज्य में जो कार्य अनिवार्य कार्य की श्रेणी में है तो दूसरे राज्य में वही कार्य ऐच्छिक कार्य की श्रेणी में हैं। उदाहरण स्वरूप पषु चिकित्सालयों की स्थापना और अनुरक्षण मध्य प्रदेश में अनिवार्य कार्यों की सूची में है तो दिल्ली में यह ऐच्छिक कार्यों की सूची के अन्तर्गत है। सामान्यतः सभी राज्यों में नगर निगमों के द्वारा निम्नलिखित प्रमुख कार्यों को सम्पन्न किया जाता है-

17.6.1 अनिवार्य कार्य

अनिवार्य कार्य वे कार्य है जिनको करना नगर निगम के लिए आवश्यक माना जाता है। अनिवार्य कार्यों में प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है-

1. शुद्ध जल की व्यवस्था तथा जल संदाय का निर्माण व अनुरक्षण।
2. बिजली और सड़कों पर प्रकाश का प्रबन्ध करना।
3. यातायात सेवाओं के विकास में योगदान करना।
4. सार्वजनिक स्थलों गलियों में सफाई एवं प्रकाश की व्यवस्था करना।
5. गन्दगी तथा कूड़ा-करकट की सफाई व उसको हटाना।
6. जल निकास के लिए नालियों, नालों, सार्वजनिक शौचालयों, मूत्रालयों, आदि का निर्माण, उसकी देखरेख तथा उनकी सफाई।
7. खतरनाक इमारतों तथा स्थानों का अधिग्रहण व उनको गिराने का प्रबन्ध करना।
8. सार्वजनिक मार्गों, गलियों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में उत्पन्न रूकावटों तथा उन पर बने निर्माणों को हटाना।
9. अस्पतालों तथा प्रसूति एवं शिशु कल्याण केन्द्रों का निर्माण तथा अनुरक्षण।
10. खतरनाक बीमारियों की रोकथाम व नियन्त्रण के उपाय।
11. टीकाकरण तथा सुइयों आदि की व्यवस्था।
12. जन्म तथा मृत्यु का पंजीकरण कर उसका लेखा-जोखा रखना।
13. श्मशान घाटों का प्रबन्ध एवं उसका नियमन।
14. प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था।
15. अग्निशमन हेतु दमकल की व्यवस्था।
16. निगम प्रशासन से सम्बन्धित वार्षिक विवरण, आय-व्यय व नक्शों का प्रकाशन।
17. भोजन सामग्री, भोजनालयों का नियन्त्रण तथा उसका प्रबन्ध।
18. बूचड़खानों, कब्रिस्तानों व हाट बाजार हेतु स्थान सुरक्षित करना।

17.6.2 ऐच्छिक कार्य

ऐच्छिक कार्य वे कार्य है जिनको करना या न करना नगर निगमों की वित्तीय स्थिति और उनकी इच्छा पर निर्भर करता है। नगर निगम के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नांकित है-

1. सार्वजनिक पार्कों, उद्यानों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों, नाट्यशालाओं, अखाड़ों तथा क्रीड़ा स्थलों का निर्माण।
2. नागरिकों के सांस्कृतिक विकास हेतु कला-केन्द्र, पिक्चर गैलरी आदि की स्थापना करना।
3. सड़कों के किनारे तथा अन्य स्थानों पर वृक्षारोपण व उनकी देखभाल।
4. वृद्ध अपाहिज तथा असहायों की सहायता करना।
5. अवारा कुत्तों, सूअरों तथा अन्य खतरनाथ जानवरों को समाप्त करना अथवा बन्दीकरण।
6. भवनों तथा भूमि का सर्वेक्षण।
7. शहर क्षेत्र में मेलों तथा प्रदर्शनियों का संगठन एवं व्यवस्था।
8. विशिष्ट अतिथियों का स्वागत तथा अभिनन्दन करना।
9. विवाहों का पंजीकरण।
10. सार्वजनिक भवनों का निर्माण।

17.7 नगर निगम के आय के साधन

नगर निगम अपने दायित्वों का निर्वहन उचित तरीके से कर सके इसके लिए उसके पास पर्याप्त वित्तीय संसाधनों का होना अनिवार्य है। इस लिए निगमों के निर्माण हेतु बनायी गयी संविधि में इनके आय के स्रोतों का भी जिक्र कर दिया जाता है। वर्तमान में नगर निगम के आय के प्रमुख स्रोतो को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- कर, अनुदान तथा अन्य स्रोत।

1. **कर-** नगर निगमों के आय का सबसे प्रमुख स्रोत उसके द्वारा लगाया जाने वाला कर ही होता है। अनुमानतः नगर निगमों के कुल आय का 2/5 से 3/4 भाग करों से प्राप्त होता है। नगर निगम द्वारा प्रमुख रूप से निम्नलिखित कर लगाये जा सकते हैं- भवन कर, जल कर(वाटर टैक्स), समाचार पत्रों के अतिरक्त अन्य विज्ञापनों पर कर, सम्पत्ति कर, वाहनों तथा पशुओं पर कर, थियेटर पर कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, बिजली के उपभोग तथा बिक्री पर कर, शिक्षा कर तथा नगरीय क्षेत्र के अधिक विकास और सुधार के कारण जमीन की बढ़ी हुई कीमतों पर उन्नति कर।

   नगर निगम द्वारा आरोपित करों के विरूद्ध अपील की जा सकती है। जिसकी सुनवायी स्वयं नगर निगम द्वारा की जाती है। किसी विधिक त्रुटि की स्थिति में यह अपील सिविल कोर्ट या हाइकोर्ट में भी की जा सकती है।
2. **अनुदान-** भारत में नगर निगम को वित्तीय सुदृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से समय-समय पर केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा अनुदान दिये जाते रहते हैं। नगर निगमों के आय का एक प्रमुख स्रोत सरकारों से प्राप्त होने वाला ये अनुदान भी है।
3. **अन्य स्रोत-** उपर्युक्त स्रोतों के अतिरिक्त अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए नगर निगम एक तरफ नगरीय क्षेत्र में किये जाने वाले विभिन्न कार्यों का लाइसेंश देने हेतु शुल्क वसूल करता है तो दूसरी तरफ वह अपने वित्तीय साधनों से लाभकारी उद्यमों को भी संचालित करता है। इस दृष्टि से वह मुर्गीपालन, सिनेमा, थियेटर व अन्य दूसरे कार्यों को करता है।

17.8 नगर निगम पर नियन्त्रण

नगरीय शासन (नगर निगम) की स्थापना राज्य संविधि के अधीन की जाती है। इसलिए राज्य सरकार नगर निगमों पर यथेष्ठ नियन्त्रण भी रखती है। राज्य सरकार समय-समय पर नगर निगमों को आवश्यक कार्य करने हेतु आदेश व निर्देश देती है। जिन कार्यों को करने में अतिरिक्त व्यय की सम्भावना होती है उसके लिए राज्य सरकार की पुष्टि आवश्यक होती है। नगर निगम अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट भी शासन को भेजता रहता है जिसका मूल्यांकन सरकार के द्वारा किया जाता है। नगर निगम द्वारा अपने नियत कर्तव्यों का संपादन न करने या लापरवाही की स्थिति में राज्य सरकार को निगमाध्यक्ष, समितियों, परिषद या नगरपाल को विघटित या पदच्युत करने का अधिकार भी होता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर राज्य सरकार इनके निर्धारित कर्तव्यो का पालन निर्धारित व्यक्ति या कर्मचारी के माध्यम से पूरा करा सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में सर्वप्रथम कार्पोरेशन(निगम) की स्थापना किस नगर में और कब की गयी थी?
2. क्या लार्ड मेयो के प्रस्ताव के आधार पर ही ''जनप्रतिनिधि स्थानीय कार्यों की जिम्मेदारी को स्वयं ग्रहण करें'' की धारणा का विकास हुआ?
3. नगरीय स्वायत्त शासन के लिए 65वां संविधान संसोधन विधेयक किस प्रधानमन्त्रीके शासन काल में लाया गया था?
4. 74वां संविधान संसोधनविधेयक कब लागू हुआ?

5. क्या नगर निगम सर्वोच्च नगरीय निकाय है?
6. नगर निगम के चार प्रमुख घटक कौन-कौन है?
7. नगर निगम के प्रमुख को कहा जाता है?
8. नगर निगम के आय का सबसे प्रमुख स्रोत क्या है?

17.9 सारांश

भारत में नगरीय शासन का प्रचलन भी अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। नगर निगमों के विकास की दषा में सबसे ठोस पहल 1687ई0 में मद्रास में कार्पोरेशन की स्थापना कर की गयी। नगरों को सुव्यवस्थित रखने के उद्देश्य से समय-समय पर नगर निगमों की स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास किये जाते रहे। इसलिए 1793 में अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) पारित कर तीन महत्वपूर्ण नगरों मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में नगर निगम (कार्पोरेशन) की स्थापना की गई। जिनको साफ-सफाई के साथ-साथ पुलिस प्रशासन, सड़कों का रखरखाव तथा शराब आदि के लाइसेंस देने का अधिकार दिया गया था। 1863 में राजकीय सैनिक स्वास्थ्य आयोग ने नगरों की गन्दी स्थिति पर चिन्ता व्यक्त किया, जिसे दृष्टिगत रखकर देश के विभिन्न भागों में अधिनियम बनाकर प्रान्तीय सरकारों को नगर समितियों की स्थापना का अधिकार दिया गया। जिनका प्रमुख कार्य नगरों की सफाई, प्रकाश व पानी की व्यवस्था करना था। 1882ई0 का लार्ड रिपन का प्रस्ताव तथा 1909 में स्थापित राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग भी नगरीय संस्थाओं के विकास का महत्वपूर्ण प्रयास था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगरीय प्रशासन की अपेक्षा ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने पर ही विशेष बल दिया गया। नगरीय प्रशासन की ओर सर्वप्रथम तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ध्यान दिया गया। इस सम्बन्ध में कहा गया कि प्रत्येक राज्य अपने साधनों की व्यवस्था कर नगरों के निवासियों के जीवन की दशाओं को बेहतर बनाये। सबसे ठोस पहल राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान के रूप में की गयी लेकिन यह लोक सभा द्वारा पारित होने के बाद कुछ असहमतियों के कारण राज्य सभा में अस्वीकृत हो गया। इसलिए पुनः पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान संसोधन के विवादास्पद मुद्दों को परिवर्तित कर 74वां संविधान संसोधन विधेयक संसद केदोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया और 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर यह विधेयक नगरीय प्रशासन का आधार बना।

17.10 शब्दावली

नगर- जहाँ शिक्षित व सभ्य लोग निवास करें, कार्पोरेशन(निगम)- शासकीय अधिनियम से अध्यासित समिति, भग्नावशेष- किसी प्राचीन व्यवस्था के समापन के बाद बचा उसका शेष रूप, पंजीकरण- रजिस्टर में दर्ज करना, परिसंघ- किसी खास उद्देश्य के लिए बनाया गया संगठन, पंचवर्षीय योजना- केन्द्र सरकार द्वारा विकास के लिए पांच वर्ष के निमित सुनियोजित योजना, संविधि- राज्य के कानून द्वारा, निकाय- स्थानीय स्वशासन का संगठन

17.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मद्रास में सन् 1687 ई0 में, **2.** हाँ, **3.** राजीव गाँधी, **4.** 1993ई0, **5.** हाँ, **6.** परिषद, महापौर, समितियां व नगर आयुक्त, **7.** महापौर, **8.** कर

17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
2. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन मेरठ।
4. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

17.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।
2. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन मेरठ।
4. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

17.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. नगर निगम के विकास पर एक लेख लिखें।
2. नगर निगम की संरचना एवं कार्यों का उल्लेख करें।
3. नगरीय प्रशासन में नगर निगम की भूमिका को स्पष्ट करें।

इकाई- 18 नगरपालिका

इकाई की संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 नगर पालिका का ऐतिहासिक विकास
18.3 नगरपालिकाओं की स्थापना का आधार
18.4 नगरपालिका का संगठन
18.5 नगरपालिका के अधिकार एवं कार्य
18.5.1 अनिवार्य कार्य
18.5.2 ऐच्छिक कार्य
18.6 नगरपालिका के आय के साधन
18.7 नगरपालिका पर नियन्त्रण
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.13 निबंधात्मक प्रश्न

18.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में आपने देखा कि नगरों की सबसे बड़ी इकाई नगर निगम है जिसकी स्थापना कुछ बड़े आकार व जनसंख्या वाले नगरों में ही की जाती है। यद्यपि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75 से 80 प्रतिशत जनसंख्या आज भी मूल रूप से गांवों में निवास करती है। सामाजिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलताएं व आर्थिक आवश्यकताओं ने व्यक्ति के कार्य प्रणाली को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया है। जिसके परिणामस्वरूप लोग शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य आदि आवश्यक ताओं को दृष्टिगत रख गांवों से कस्बों या शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप जहाँ नगर, महानगरों में तब्दील हो रहें है, वहीं कस्बे नगर का रूप ग्रहण करते जा रहे हैं।

गांवों से कस्बों या नगरों की तरफ पलयान निश्चित रूप से इन क्षेत्रों की समस्याओं को बढ़ा रहा है। इसलिए स्वतन्त्रता पूर्व ही अपेक्षाकृत छोटे नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की जाने लगी थी। विभिन्न प्रान्तों के द्वारा अपने नगरीय नागरिकों की समस्याओं को दृष्टिगत रखकर नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना करने के साथ-साथ वहाँ के साफ-सफाई, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी आदि समस्याओं के समाधान का दायित्व उन्हें सौंप दिया है। जिसके कारण निश्चित रूप से नगरीय जीवन की परिस्थितियों में सुधार हुआ है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं भौतिक आवश्यकताओं ने मानव जीवन को प्रभावित किया। लोगों ने रोजी व रोजगार के लिए ऐसे क्षेत्रों में जाना प्रारम्भ किया, जहाँ विभिन्न किस्म के कल-कारखाने स्थापित थे। जिससे ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व तेजी के साथ बढ़ा। परिणामस्वरूप आवश्यक संसाधनों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता घटने के साथ-साथ इन क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सफाई, बिजली, शुद्ध पानी आदि जैसी समस्याएं बढ़ने लगी। स्थानीय स्तर पर ही इन समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से राज्यों ने अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना को व्यवहारिकता प्रदान किया।

इस इकाई में नगरीय प्रशासन के नगरपालिका निकाय का विस्तृत उल्लेख करने का प्रयास किया गया। यह जनसंख्या, आकार और अन्य मानकों के दृष्टि से द्वितीय श्रेणी के नगरों में स्थापित की जाती है। इसमें नगरपालिका के प्राचीन स्वरूप के साथ-साथ उसकी संरचना, अधिकार एवं कार्य, आय के साधन तथा नागरिकों के प्रति उसका दृष्टिकोण एवं सरकारों के नियन्त्रण का व्यापक उल्लेख किया गया है।

18.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपारान्त आप-

- नगर पालिका के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे।
- नगरीय प्रशासन में उसकी स्थिति को समझ सकेंगे।
- नगरीय समस्याओं के समाधान में इसकी भूमिका को समझ सकेंगे।
- नगर पालिकाओं की संरचना व कार्यप्रणाली को जान सकेंगे।

18.2 नगर पालिका का ऐतिहासिक विकास

भारत में नगर प्रशासन का स्वरूप अत्यन्त प्राचीनतम् है। मौर्यकाल में ग्रामीण शासन व्यवस्था के साथ-साथ नगरीय प्रशासन की व्यवस्था भी सन्तोषजनक थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार नगर का सबसे बड़ा पदाधिकारी नागरिक कहलाता था, जो नगर का प्रशासन करता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र नगर (आधुनिक पटना) के विस्तृत अध्ययन के पश्चात जो विवरण दिया है, उससे विदित होता है कि वह एक प्रकार की म्यूनिसिपल व्यवस्था ही थी। जिसकी तुलना वर्तमान म्यूनिसिपल की कार्य प्रणाली से की जा सकती है। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही स्थानीय शासन के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया गया है। जिसका वर्णन करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि इस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। नगर का प्रशासन एक अधिकारी को सुपुर्द होता था, जो कोतवाल कहलाता था। दण्ड व्यवस्था, पुलिस तथा वित्तीय मामलों में उसकी सत्ता सर्वोपरि थी।

सन् 1842 में पहला नगरपालिका अधिनियम केवल बंगाल के लिए पारित किया गया। जिसके अनुसार बंगाल के जनपदीय नगरों (जिला नगरों) में भी नगर प्रशासन का विस्तार कर दिया गया लेकिन इसका तीव्र विरोध प्रारम्भ हो गया। जिसे देखते हुए इसे समाप्त कर सन् 1850 में दूसरा नगरपालिका अधिनियम पारित किया गया। जिसे ऐच्छिक रूप से किसी भी नगर में लागू किया जा सकता था। इस अधिनियम द्वारा नगरपालिकाओं को चुंगी-कर वसूलने का अधिकार दे दिया गया। इसी अधिनियम के अनुसार उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा अन्य प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी। इसमें नगरपालिकाओं द्वारा नागरिकों को अधिक सुविधाएं और सुरक्षा प्रदान करते हेतु आवश्यकतानुसार न्यायधीशों और कमिश्नरों की नियुक्ति का प्रावधान था। यह अधिनियम सम्पूर्ण ब्रिटिश इण्डिया में लागू किया गया था। 1857 ई0 के जन विप्लव के कारण भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश सम्राट के हाथों में आ गया। इसी बीच रेल तथा सड़कों का निर्माण एवं विस्तार ग्रामीण उद्योगों के बजाय शहरों में निर्मित होने वाली वस्तुओं के उपयोग एवं सुरक्षा तथा व्यापार हेतु शहरों एवं कस्बों का विकास तेजी से होने लगा। जिसके कारण लोग इन विकासोन्मुख स्थानों पर बसने के लिए बरबस ही आकृष्ट हुए। इसलिए नगरीय शासन को सुव्यवस्थित करने की दिशा में प्रयास तेज हो गया। इसलिए 1861 ई0 में 'टाऊन इम्प्रूवमेंट एक्ट' पारित किया गया। इसके साथ-साथ 1861 ई0 में उत्तर पश्चिमी प्रान्तों 1864 ई0 में बंगाल प्रान्त, 1865 ई0 में मद्रास तथा 1867 ई0 में पंजाब में नगर पालिका अधिनियम पारित किये गये। इन एक्टों द्वारा लगभग सभी प्रान्तों के प्रमुख नगरों में स्वायत्त शासन संस्थाओं की स्थापना करके नगरीय स्थानीय शासन का विकास किया गया।

1870 में लार्ड मेयो ने अपने विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया कि भारतीयों को प्रशासनिक कार्यों में अधिकतम् सहभागिता देने के दृष्टि से नगरीय स्थानीय प्रशासन की इकाईयों का विकास किया जाय। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि ''यदि इस प्रस्ताव को पूर्ण अर्थ में और पूरी निष्ठा के साथ कार्यान्वित किया जाय तो इससे स्वशासन का विकास करने, म्यूनिसिपल संस्थाओं को सशक्त बनाने और भारतीय तथा यूरोपीय लोगों को प्रशासनिक मामलों के साथ पहले से कही अधिक सीमा तक सम्बद्ध करने का अवसर मिलेगा।'' सन् 1881ई0 के अन्त तक ब्रिटिश इण्डिया के विभिन्न प्रान्तों में नगरपालिकाओं की स्थिति निम्न प्रकार थी-

प्रान्त का नाम	कुल नगरपालिका सदस्य	पूर्ण अथवा अर्द्ध निर्वाचित सदस्य	नियुक्त सदस्य
अवध प्रदेश(उत्तर प्रदेश)	107	75	32
पंजाब	197	05	192
मध्य प्रदेश	61	61	135
बंगाल	138	03	- -
मद्रास	47	12	35
बम्बई	162	19	143

उपर्युक्त आकड़ों से स्पष्ट है कि लार्ड मेयो के प्रस्ताव के अनुरूप सत्ता का विकेन्द्रिकर कर नगरपालिकाओं में कुछ हद तक निर्वाचित सदस्यों को प्रवेश दिया गया। लार्ड मेयो के प्रस्ताव को सुदृढ़ता प्रदान करने का कार्य 1882ई0 में लार्ड रिपन के द्वारा किया गया। लार्ड रिपन के प्रस्ताव की प्रमुख संस्तुतियां निम्नलिखित थी

1. ब्रिटिश इण्डिया के समस्त समृद्ध नगरों में स्थानीय संस्थाओं की स्थापना की जाये। इनका अधिकार क्षेत्र सीमित रखा जाय ताकि इन स्वायत्त संस्थाओं में भाग लेने वाले सदस्य स्थानीय समस्याओं का गहन अध्ययन कर सकें।
2. इन संस्थाओं में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या 2/3 तथा सरकारी सदस्यों की संख्या 1/3 कर दी जाये। गैर- सरकारी सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था की जाय।
3. इन निकायों के गैर सरकारी सदस्यों को प्रान्तीय सरकार द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक कर दिया गया।

लार्ड रिपन का प्रस्ताव नगरीय स्वशासन के इकाईयों के गठन का आधार बना। इसलिए कुछ विद्वानों ने लार्ड रिपन के प्रस्ताव को नगरीय स्थानीय स्वशासन के मैग्नाकार्टा की संज्ञा दी है।

भारत में नगरीय शासन (नगरपालिका) की स्थापना के दृष्टि से 'राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग' एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। जिसकी स्थापना सन् 1907 ई0 में की गयी और जिसने अपनी रिपोर्ट 1909 ई0 में प्रस्तुत की। इसकी प्रमुख संस्तुतियों का संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है

- नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं का निर्माण किया जाय जिसका अध्यक्ष गैर-सरकारी और निर्वाचित व्यक्ति हो उसके अधिकारों में भी वृद्धि कर दी जाय।
- नगरपालिका के सदस्यों का निर्वाचन नगर पालिका के कर दाताओं के द्वारा किया जाना चाहिए।
- नगरपालिकाओं को इतनी शक्ति अवश्य प्रदान की जाय जिससे वे कर निर्धारित कर न्यूनतम धनराशि अपने कोष में इकट्ठा कर अपने बजट का निर्धारण कर सकें।
- बड़े नगरों में नगरपालिका को एक पूर्णकालिक नामित अधिकारी की सेवाऐं उपलब्ध करायी जाय, जिससे वह स्थानीय कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखते हुए उनसे अपने दायित्वों का निर्वहन करा सके।
- नगरपालिकाओं के ऋण लेने पर सरकार का नियन्त्रण बना रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त नगरपालिका की सम्पत्ति पट्टे पर देने या बेचने के पूर्व उस पर सरकार की स्वीकृति अवश्य ली जानी चाहिए।

- प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिका का हो और यदि वह चाहे और उसके पास संसाधन हो तो वह उच्च प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों पर भी खर्च कर सके।

इस काल में नगरपालिकाओं के आय के साधन लगभग दो गुने हो गये फिर भी उनकी स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। 1918 ई0 में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित प्रावधान किये गये थे-

- समस्त स्वायत्तशासी संस्थाओं में निर्वाचित सदस्यो की संख्या 3/4 होनी चाहिए तथा अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए इस वर्ग के सदस्यों को नामित किया जाना चाहिए।
- निर्वाचन तथा मताधिकार को व्यापक बनाया जाना चाहिए। नगरपालिका का अध्यक्ष सामान्यतः गैर-सरकारी तथा निर्वाचित व्यक्ति को ही बनाया जाय और यदि ऐसा न हो तो बहुमत गैर-सरकारी सदस्यों का ही होना चाहिए।
- बड़े नगरों में नगरपालिकाओं के प्रशासन का संचालन हेतु प्रशासनिक अधिकारी बोर्ड गठित किया जाय, जिसकी स्वीकृति राज्य सरकार द्वारा की जाय।
- नगरपालिकाओं को अपने कार्य क्षेत्र के भीतर कर लगाने तथा अपने वेतनभोगी कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने का व्यापक अधिकार दिया जाय।

सन् 1921 ई0 में सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में मताधिकार को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया। अब नगरपालिकाओं के मतदान में उन सभी लोगों का भाग लेने का अधिकार दिया गया जो नगरपालिका को कर देते थे या विधान परिषद के चुनाव में मतदाता थे या नगरपालिका सीमा या उससे दो मील के अन्दर निवास करते थे। 1924 में एक अधिनियम बनाकर भारतीय महिलाओं को भी नगरपालिका का सदस्य चुने जाने का अधिकार दिया गया।

भारत के अधिकांश प्रान्तों के नगरों में स्वतन्त्रता पूर्व ही अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना कर दी गयी थी। जैसे- बम्बई जिला नगरपालिका अधिनियम 1901, पंजाब नगरपालिका अधिनियम 1911, संयुक्त प्रान्त नगरपालिका अधिनियम 1916, मद्रास जिला नगरपालिका अधिनियम 1920, बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम 1922, बम्बई म्यूनिसिपल बोर्ड अधिनियम 1925, बंगाल नगरपालिका अधिनियम 1932 आदि।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी नगरीय शासन के प्रति उपेक्षात्मक रवैया ही देखने को मिलता है। यद्यपि 1956 ई0 में राज्यों के पुनर्गठन के तत्काल बाद कई राज्यों में नगरपालिका अधिनियम बनाये गये, क्योंकि राज्यों के पुनर्गठन के बाद एक ही अधिनियम द्वारा कई राज्यो या एक ही राज्य कई अधिनियमों के आधार पर नगरपालिकाओं का संचालन कर रहे थे, जबकि अलग-अलग राज्यों की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय प्रशासन को महत्वपूर्ण मानते हुए नगरों और कस्बों के नागरिकों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए साधन जुटाने पर बल दिया गया। बढ़ते हुए औद्योगीकरण व व्यवसायीकरण ने नगरों की जनसंख्या को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया है। जिसके कारण इन क्षेत्रों की समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही है। जिनका उन्मूलन जनता और स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से ही सम्भव है। 1971 ई0 तक भारत में नगरपालिकाओं की संख्या बढ़कर लगभग 1493 हो गयी थी। नगरीय स्वशासन की दिशा में एक ठोस पहल प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के शासन काल में 65वें संविधान संसोधन अधिनियम के रूप में की गयी थी लेकिन विपक्षी दलों के विरोध के कारण यह राज्य सभा में पारित नहीं हो सका जबकि लोक सभा ने इसे बहुमत से पारित कर दिया था। 65वें संविधान संसोधन की विसंगतियों को दूर करते हुए प्रधानमन्त्री नरसिंह राव के शासन काल में 74वां संविधान संसोधन विधेयक संसद में पेश किया गया जो संसद के दोनों सदनों के बहुमत से पारित हो गया और राष्ट्रपति की

स्वीकृति प्राप्त कर इस अधिनियम ने नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। अतः अब इनकी उपेक्षा करना सरकारों के लिए सम्भव नहीं रह गया है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का ही परिणाम है कि नगरपालिकाओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सन् 1971 में इनकी संख्या 1493 थी जो बढ़कर सन् 1990 में 1770 हो गयी।

18.3 नगरपालिकाओं की स्थापना का आधार

वर्तमान नगरों एवं शहरों में नगरपालिका स्थानीय स्वशासन की अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली संस्था है। जिसकी स्थापना विभिन्न नगरों में नगरवासियों की बढ़ती हुई समस्याओं का निदान कर उनको जीवन के अनुकुल परिस्थितियां उपलब्ध करना होता है। किसी क्षेत्र विशेष में व्यवसाय तथा अन्य सुविधाओं के कारण जब लोग वहाँ बसने लगते है तो स्वाभाविक रूप से नागरिक समस्याओं की उत्पत्ति होती है। नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए किसी शहर में कुछ न्यूनतम जनसंख्या का होना आवश्यक है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि वह न्यूनतम जनसंख्या क्या हो? इस सम्बन्ध में अलग-अलग राज्यों में उनकी स्थितियों व परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग मानक निर्धारित किया गया है। कुछ राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए आवश्यक न्यूनतम जनसंख्या निम्न प्रकार है-

राज्य	जनसंख्या
उत्तर प्रदेश	20000
बिहार	5000
बंगाल	20000
मद्रास	20000
गुजरात	30000
आन्ध्र प्रदेश	25000
पंजाब व हरियाण	10000
महाराष्ट्र	10000
उड़ीसा	5000

किसी भी नगरीय क्षेत्र में नगरपालिका की स्थापना के लिए एक आवश्यक शर्त यह भी है कि वहाँ की जनता इसके लिए साधन जुटाने के योग्य तथा इच्छुक हो। वस्तुतः कुछ राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए जनसंख्या और वार्षिक आय दोनों ही मानक निर्धारित किये गये है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में नगरपालिका की स्थापना के लिए जनसंख्या कम से कम 20 हजार तथा वार्षिक आय 40 हजार आवश्यक मानी गयी है। आय सम्बन्धी मानक उस स्थिति में ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाता है, जबकि किसी कम जनसंख्या वाले क्षेत्र में नगरपालिका स्थापित करने की अनुज्ञा दे दी जाती है। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि किसी नगर को नगरपालिका का दर्जा प्रदान करने लिए आय सम्बन्धी मानक का प्राथमिक महत्व नहीं होता है, लेकिन वह उस शहर की श्रेणी या दर्जा निर्धारित करने में निर्णायक मानी जाती है।

18.4 नगरपालिका का संगठन

नगर निगमों की भाँति नगर पालिका के भी चार प्रमुख घटक होते हैं- नगर परिषद, अध्यक्ष, नगरपालिका आयुक्त और समितियां।

1. **नगर परिषद-** नगर पालिका में 'नगर परिषद' जनता की सभा मानी जाती है। जिसमें प्रमुख रूप से तीन प्रकार के सदस्य होते है- निर्वाचित सदस्य, नामित सदस्य और नगर वृद्ध(एल्डरमैन)। निर्वाचित सदस्यों का चुनाव नगर की जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। इसके लिए नगर क्षेत्र को उतने ही क्षेत्रों (वार्डों) में बांट दिया जाता है, जितना जनसंख्या के आधार पर नगर

परिषद के सदस्यों की संख्या निश्चित होती है। प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि चुने जाने की व्यवस्था होती है। इन चुने हुए सदस्यों को पार्षद के नाम से सम्बोधित करते हैं। नगर परिषद में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा स्त्रियों के लिए यथासम्भव स्थान आरक्षित होता है, लेकिन अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थान का अनुपात वही होगा जो उस नगर के सम्पूर्ण जनसंख्या में अनुसूचित जाति व जनजाति के जनसंख्या का है। लोकसभा व विधान सभा के वे सदस्य भी नगरपालिका के नामित (पदेन) सदस्य होते हैं, जिनके निर्वाचन क्षेत्र का पूर्ण या आंषिक भाग नगरपालिका क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो। इसी प्रकार राज्य सभा या विधान परिषद के वे सदस्य भी जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत है नगरपालिका के सदस्य होते हैं। कुछ सदस्यों को नगरपालिका में राज्य सरकार के द्वारा मनोनीत किया जाता है। इस हेतु राज्य सरकार किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसकी उपस्थिति नगर परिषद के लिए लाभदायक हो, नगरपालिका परिषद के सदस्य के रूप में नामित करती है। इन सदस्यों को नगर परिषद की बैठकों व चर्चा परिचर्चा में भाग लेने का अधिकार तो होता है, लेकिन परिषद में किसी विषय पर मतदान की स्थिति में इनको मत देने का अधिकार नहीं होता है। नगर परिषद को विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। जैसे- म्यूनिसिपल कमेटी, म्यूनिसिपल काउन्सिल, म्यूनिसिपल बोर्ड आदि।

नगर परिषद के सदस्यों का चुनाव जनसंख्या के आधार पर होता है। इसलिए अलग-अलग नगरपालिकाओं के परिषदों का आकार भी छोटा-बड़ा होता है। उत्तर प्रदेश में जिन नगरपालिकाओं की जनसंख्या पचास हजार से कम है, वहाँ 12 सदस्य, पचास हजार से अधिक तथा एक लाख से कम है तो 16 सदस्य, एक लाख से डेढ़ लाख तक 20 सदस्य, तथा डेढ़ लाख से दो लाख तक 28 सदस्य होते हैं। परिषद का कार्यकाल पांच वर्ष होता है, किन्तु राज्य सरकार नगर परिषद की अवधि समाप्त होने के पूर्व भी उसको विघटित कर उसके कार्यों को अपने हाथ में ले सकती है। नगर परिषद नगरपालिका का विधायी अंग होता है, जो नगरपालिका अधिनियम द्वारा निश्चित सीमाओं के भीतर नगर क्षेत्र के लिए उप-विधियों का निर्माण करती है।

2. **अध्यक्ष-** नगरपालिका का एक अध्यक्ष होता है जो नगरपालिका का प्रमुख होता है। अध्यक्ष का पद प्रतिष्ठा एवं सम्मान से परिपूर्ण होता है, इसलिए उसे नगर का प्रथम नागरिक भी कहा जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर प्रायः सरकारी अधिकारी पदासीन होते थे, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह प्रथा समाप्त कर इस पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित व्यक्ति के आसीन होने की व्यवस्था कर दी गयी है। नगरपालिका अध्यक्षों के चुनाव में भी अलग-अलग राज्यों में असमानता पायी जाती है। उत्तर प्रदेश में अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा किया जाता है तो कई राज्यों में अध्यक्ष का चुनाव पार्षदों (परिषद के निर्वाचित सदस्यों) द्वारा अपने में से ही किया जाता है। नगरपालिका अध्यक्ष परिषद के बैठकों का सभापतित्व करता है। वह परिषद के विचार-विमर्श में व्यवस्था बनाये रखते हुए उसका मार्गदर्शन भी करता है, क्योंकि वह सदन (परिषद) का नेता भी होता है। वह नगरपालिका के वित्तीय तथा प्रशासनिक कृत्यों पर निगरानी रखता है। जब कभी परिषद में किसी मुद्दे पर मतदान कि स्थिति में पक्ष व विपक्ष में समान मत में पड़े तो उसे निर्णायक मत देने का भी अधिकार होता है। उसे नगरपालिका के सभी अभिलेखों का निरीक्षण करने का अधिकार है और वह नगर प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय की जानकारी मांग सकता है। परिषद तथा सरकार के बीच बातचीत भी उसी के माध्यम से होती है।

   नगरपालिका के अध्यक्ष को पार्षदों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसके पद से मुक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त निम्न कारणों से राज्य सरकार भी उसको पदमुक्त कर सकती है-

- यदि वह मतदाता की अर्हताएं पूरी न करता हो।
- यदि वह सदस्य के रूप में अपने दायित्वों का सतत निर्वहन न कर रहा हो।
- यदि वह अपना सामान्य निवास स्थान त्याग कर अन्यत्र कही जाकर बस जाता है।
- यदि वह अपने आर्थिक हित हेतु नगरपालिका के किसी कार्य को प्रभावित करता है।

3. **नगरपालिका आयुक्त-** नगरपालिका के कार्यकारी विभाग का प्रमुख आयुक्त होता है, जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों में से की जाती है। राज्य सरकार ही उसकी सेवा शर्ते तथा वेतन भी निश्चित करती है। इसका वेतन नगरपालिका कोष से दिया जाता है। आयुक्त को अनेक कार्य सम्पन्न करने पड़ते है। वह समितियों तथा परिषद का सचिव होता है। वह परिषद तथा समितियों की बैठको में भाग लेता है, भाषण देता है लेकिन उसे कोई प्रस्ताव रखने या मत देने का अधिकार नहीं होता है। वह नगरपालिका के विभिन्न प्रशासनिक विभागों को संगठित करता है तथा उनमें कार्यों का बंटवारा करता है। वह नगरपालिका कार्यालय का प्रमुख होता है, इसलिए समस्त अभिलेख उसके अधीन होते है। नगरपालिका के आय-व्यय का ब्यौरा तथा वार्षिक रिपोर्ट भी उसी के द्वारा तैयार की जाती है। उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए राज्य सरकार अभियन्ता, सेनेटरी, इन्सपेक्टर, चिकित्साधिकारी आदि की नियुक्ति करती है। जबकि कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति अध्यक्ष या आयुक्त के द्वारा भी चयन समिति के माध्यम से की जा सकती है।
4. **समितियां-** नगरपालिका अधिनियमों में उसके कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में सहयोग देने के लिए समितियों के निर्माण का प्रावधान होता है। ये समितियां प्रायः दो प्रकार की होती हैं- स्थायी समिति और अन्य समितियां। स्थायी समितियों का निर्माण नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत किया जाता है, जबकि अस्थायी या अन्य समितियों का निर्माण समय-समय पर परिषद द्वारा बनाये गये नियमों के आधार पर किया जाता है। नगरपालिका के कार्यों के सम्पादन में इन समितियों की प्रबल भूमिका होती है। समिति के सदस्य तथा अध्यक्ष प्रायः परिषद के सदस्य ही होते है, लेकिन किसी विशेष प्रकृति के कार्य को सम्पन्न करने के लिए राज्य सरकार दक्षता प्राप्त व ऐसे अनुभवी लोगों को भी समिति में रख सकती है, जो आवश्यक हों।

18.5 नगरपालिका के अधिकार एवं कार्य

नगरपालिका नगरीय स्थानीय स्वशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। जिसके स्थापना का उद्देश्य उसके क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगो को मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराना है। जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकें, इसलिए राज्य सरकार अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना करती है और उन्हें कुछ अधिकार व कार्य सौंपती है। यद्यपि ऐसे कार्यों की सूची अत्यन्त लम्बी होती है, इसलिए नगरपालिका के कार्यो को अनिवार्य व ऐच्छिक दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इसमें अनिवार्य कार्यों को करना, जहाँ उसके लिए आवश्यक एवं बाध्यकारी होता है, वहीं ऐच्छिक कार्यों को करना उसकी इच्छा और संसाधनों पर निर्भर करता है।

18.5.1 अनिवार्य कार्य

नगरपालिका के प्रमुख अनिवार्य कार्यों का विवेचन संक्षेप में निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. शुद्ध व स्वास्थ्यवर्द्धक जल की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
2. सार्वजनिक चिकित्सालयों की स्थापना तथा अनुरक्षण।
3. प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना व देख रेख।

4. जन्म और मृत्यु का पंजीकरण।
5. गलियों का नाम करण तथा मकानों का नम्बर लगाना।
6. सार्वजनिक रास्तों, पुलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों से अवरोधकों को हटाना।
7. सार्वजनिक स्वास्थ्य हेतु अस्पतालों की व्यवस्था करना।
8. प्रकाश व बिजली की व्यवस्था करना।
9. सार्वजनिक स्थानों, मार्गों व नालियों की साफ-सफाई की व्यवस्था।
10. शमशान गृहों, बूचड़खानों व कब्रिस्तानों की व्यवस्था।
11. सार्वजनिक शौचालयों का प्रबन्ध।
12. घृणित, क्षोभकर तथा आपत्तिजनक व्यापार व व्यवसाय पर प्रतिबन्ध लगाना।
13. आग बुझाने की व्यवस्था।
14. गरीबों व निसहायों के लिए आश्रय स्थल का निर्माण।
15. नगर के विकास को गति प्रदान करने हेतु कारगर व प्रभावी योजनाएं निर्मित करना।

18.5.2 ऐच्छिक कार्य

नगरपालिका के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नांकित है-

1. खतरनाक स्थानों या ईमारतों को नियन्त्रण में लेना या ध्वस्त करना।
2. सड़कों के किनारे वृक्षारोपण करना।
3. सार्वजनिक पार्कों, बागों, पुस्तकालयों, संग्राहलयों, अनाथालयों व स्त्रियों हेतु उद्धार-गृहों का निर्माण व परिरक्षण।
4. सर्वेक्षण करना तथा विभिन्न क्षेत्रों का खाका तैयार करना।
5. सार्वजनिक स्वागत समारोहों, सार्वजनिक प्रदर्शनियों तथा सार्वजनिक मनोरंजन का प्रबन्ध करना।
6. नगरपालिका कर्मचारियों के कल्याण वृद्धि की व्यवस्था करना।
7. अवारा पशुओं के बन्दीकरण या समापन का प्रबन्ध करना।
8. हाटों व बाजारों के लगाने की व्यवस्था करना।
9. प्राथमिक शिक्षा के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के शिक्षा की व्यवस्था करना।
10. सार्वजनिक व सांस्कृतिक हित के दृष्टि से अन्य कार्य करना।

18.6 नगरपालिका के आय के साधन

नगरपालिका अपने कर्तव्यों का पालन ठीक तरीके से कर सके इसके लिए उसके पास वित्तीय साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए नगरपालिका अधिनियमों में ही इनके वित्तीय प्रबन्ध का उल्लेख स्पष्ट रूप से कर दिया जाता है। इसके आय के प्रमुख स्रोतो का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है- अनुदान, कर, गैर-कर स्रोत और लाभकारी व्यवसाय।

1. **अनुदान-** स्थानीय समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर कर दिया जाय। इस मान्यता ने निश्चित रूप से नगरपालिका जैसी स्थानीय स्वशासन की इकाई के दायित्व को बढ़ा दिया लेकिन दायित्व के अनुरूप नगरपालिका की आय नहीं बढ़ पायी है। इसलिए राज्य व केन्द्र सरकारों के द्वारा नगरपालिकाओं के वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनुदान दिया जाता है। यह अनुदान इनकी आय का एक प्रमुख स्रोत होता है।
2. **कर-** नगरपालिका अपनी वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगों से अनेक तरह के कर वसूल करती है। ये कर नगरपालिका के आय के सबसे प्रमुख साधन

होते हैं। नगरपालिका प्रमुख रूप से निम्नलिखित कर आरोपित करती है- सम्पत्ति कर, व्यवसाय पर कर, चुंगी कर, पशु व वाहन कर, जल कर, मनोरंजन कर, प्रकाश कर और शौचालय एवं जल निकासी कर।

3. **गैर-कर स्रोत-** गैर-कर स्रोतों में उन स्रोतो को शामिल किया जाता है जो कर से इतर नगरपालिका के आय के साधन होते हैं। इन स्रोतों में प्रमुख रूप से भवनों सम्बन्धित फीसें, संचार साधनों से आय तथा घृणित व खतरनाक व्यवसाय के लिए लाइसेंस शुल्क आदि को शामिल किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी के द्वारा नगरपालिका के प्रावधानों का उल्लंघन किया जाय तो वह उस पर जुर्माना लगा सकती है। नगरपालिका राज्य सरकार की अनुमति से अपने किसी कार्य को पूरा करने हेतु सरकार या सार्वजनिक क्षेत्र में ऋण भी ले सकती है।
4. **लाभकारी व्यवसाय-** नगरपालिका अतिरिक्त आय प्राप्त करने के उद्देश्य से लाभकारी व्यवसाय भी संचालित कर सकती है। व्यवसाय या उद्यम जो नगरपालिका द्वारा संचालित किये जाते हैं उनमें- मुर्गीपालन, थियेटर, चलचित्र आदि व्यवसायिक संस्थान प्रमुख है।

18.7 नगरपालिका पर नियन्त्रण

संघीय क्षेत्र की नगरपालिकाओं का निर्माण संसद द्वारा निर्मित विशेष विधि तथा राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम से होता है, इसलिए संघ क्षेत्र के नगरपालिका पर केन्द्र सरकार तथा राज्यों के नगरपालिकाओं पर राज्य सरकार का नियन्त्रण होता है। जिस विधि द्वारा नगरपालिका की स्थापना की जाती है, उसी के द्वारा उस पर नियन्त्रण का भी प्रावधान कर दिया जाता है। सरकार नगरपालिका द्वारा किये जाने वाले कार्यों का निरीक्षण कर सकती है। आवश्यक होने पर नगरपालिका के क्रियाकलापों के जांच का आदेश दे सकती है। यदि नगरपालिका के द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से न किया जाय या अपने कार्यों के माध्यम से किसी को व्यक्तिगत लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जाय तो सरकार नगरपालिका से उसका पक्ष पूछती है। यदि उसके बाद सरकार को यह आभास हो जाय कि नगरपालिका को विघटित करना आवश्यक है तो वह उसे भंग कर उसके दायित्वों का निर्वहन करने हेतु किसी को नियुक्त कर सकती है। सरकारेंजो अनुदान नगरपालिकाओं को प्रदान करती है, उसके लिए कार्य भी उन्हीं के द्वारा निश्चित होता है। अर्थात सरकार जिस कार्य के लिए अनुदान देती है नगरपालिका उसका उपयोग उसी कार्य हेतु कर सकती है। कुछ कार्यों को करने से पहले नगरपालिकाओं को राज्य सरकार से अनुमति भी लेनी पड़ती है। राज्य सरकार का अंकेक्षक (Auditor) नगरपालिका के हिसाब-किताब की जांच भी समय-समय पर करता रहता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका आयुक्त तथा अन्य महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति और पदच्युति का अधिकार भी सरकारों के पास होता है। ये अधिकारी तथा कर्मचारी अन्तिम रूप से अपने कार्यों के लिए सरकार के प्रति ही जबाबदेह होते हैं। नगरपालिकाओं पर सरकार के नियन्त्रण को इंगित करते हुए श्री राजेश्वर ने कहा है कि ''स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएं स्वतन्त्र सम्प्रभु संस्थाएं नहीं हैं, बल्कि वे तो सरकार तथा न्यायिक संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित होने वाली संस्थाएं हैं।'

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राचीन पाटलिपुत्र नगर को वर्तमान में किस नाम से जाना जाता है?
2. मध्यकाल (मुस्लिमकाल) में नगर प्रशासन के अधिकारी को कहा जाता था?
3. सबसे पहले नगरपालिका अधिनियम 1842ई0 में किस राज्य के लिए पारित किया गया?
4. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम कब राज्यों का पुनर्गठन कब किया गया था?
5. उत्तर प्रदेश में नगरपालिका की स्थापना के लिए न्यूनतम जनसंख्या कितनी होनी चाहिए?
6. नगरपालिका का विधायी अंग किसे कहा जाता है?
7. नगरपालिका का कार्यकारी अधिकारी होता है।

8. नगरपालिका के कार्यों को कितने भागों में बांटा जा सकता है?

18.8 सारांश

नगरीय प्रशासन के क्षेत्र में नगरपालिकाओं का अस्तित्व भी प्राचीनतम् है। मौर्यकाल में मेगस्थनीज की पुस्तक 'इण्डिका' में पाटलिपुत्र (पटना) का जो विस्तृत उल्लेख मिलता है, वह आधुनिक म्यूनिसिपल व्यवस्था से मिलता-जुलता है। मुस्लिम काल में भी नगर के अधिकारी के रूप में कोतवाल को दण्ड व्यवस्था, पुलिस व वित्तीय क्षेत्र में सर्वोच्चता प्रदान की गयी थी। लेकिन नगरपालिका के विकास की दिशा में ठोस पहल 1842 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में की गयी जबकि बंगाल के जनपदीय नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए नगरपालिका अधिनियम पारित किया गया। किन्तु जनता के व्यापक विरोध के कारण यह अधिनियम वापस ले लिया गया। 1850 ई0 में सम्पूर्ण ब्रिटिश इण्डिया के लिए नगरपालिका अधिनियम बनाया गया। जिसको ऐच्छिक रूप से किसी भी नगर में लागू किया जा सकता था। इसके अनुरूप उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा अन्य प्रदेशों के प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी। नगरीय शासन को सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से 1861ई0 में 'टाउन इम्प्रूवमेंट एक्ट' पारित किया गया। जिसके आलोक में 1861 ई0 में उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों, 1864 ई0 में बंगाल, 1865 ई0 में मद्रास तथा 1867 ई0 में पंजाब प्रान्त में नगरपालिका अधिनियम बनाये गये। 1870 ई0 में लार्ड मेयो ने अपने विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव में भारतीयों की प्रशासनिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए नगरीय शासन के इकाईयों के विकास पर जोर दिया। नगरीय शासन में नगरपालिकाओं को मजबूत स्थिति 1909 ई0 के राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग के संस्तुतियों द्वारा प्रदान करने का प्रयास किया गया।

1947ई 0 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यद्यपि नगरीय शासन के प्रति उपेक्षात्मक रवैया देखने को मिलता है। 1956 ई0 में राज्यों के पुनर्गठन के बाद कई राज्यों ने नगरपालिका अधिनियमों का निर्माण किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरों की समस्याओं के समाधान के लिए साधन जुटाने पर बल दिया गया। नगरीय प्रशासन के दिशा में संवैधानिक प्रयास राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान संसोधन के रूप में किया गया जो असफल सिद्ध हुआ। इससे सीख लेते हुए प्रधानमन्त्री पी0बी0 नरसिंह राव के शासन काल में 74वां संविधान संसोधन पारित किया गया। इस संसोधन विधेयक द्वारा नगरीय स्थानीय स्वशासन को संवैधानिकता प्रदान कर दी गयी है।

नगरपालिका नगरीय क्षेत्रों के लोगों को मूलभूत सुविधाऐं मुहैया कराने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था का रूप धारण कर चुकी है। वर्तमान में नगरीय जीवन को सरल व सुविधापूर्ण बनाने में इसकी भूमिका इस हद तक बढ़ गयी है कि यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि नगरपालिका के बिना उस क्षेत्र के लोगों का जीवन दुष्कर हो जायेगा, विकास अवरूद्ध हो जायेगा और व्यक्तित्व कुंठित हो जायेगा। नगरपालिका वर्तमान मूलभूत आवश्यकताओं शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, बिजली, पानी आदि को सुलभ बनाती है। जिससे नगरीय क्षेत्र के निवासी तनावमुक्त होकर अपने विकास के लिए सतत प्रयास करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर होते रहते हैं।

18.9 शब्दावली

प्रशासन- विधिक आधार पर जनता को शासित करने वाला तन्त्र, नागरिक- ऐसे लोग जिन्हें संविधान द्वारा राजनीतिक अधिकार प्रदान जाता है, जनपदीय- जनपद से सम्बन्धित, एक्ट- अधिनियम, म्यूनिसिपल- नगरपालिका, मैग्नाकार्टा- जनता के हित मे लिया गया बड़ा प्रशासनिक निर्णय, संसाधन- जीवन को सुलभ बनाने के साधन, निर्वाचन- चुनाव, मताधिकार- मत देने का अधिकार

18.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पटना, **2.** कोतवाल, **3.** केवल बंगाल के लिए, **4.** 1956ई0 में, **5.** 20 हजार, **6.** नगर परिषद, **7.** नगर पालिका आयुक्त, **8.** दो भागों में, अनिवार्य कार्य व ऐच्छिक कार्य

18.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 बी0एल0 फाडिया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1996
2. राधाकृष्ण चौधरी व अन्य, भारत में स्थानीय शासन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन्स पटना, 1982
3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
4. डॉ0 मीनाक्षी पवार, स्थानीय स्वायत्त शासन, निकुंज प्रकाशन बड़वानी, मध्यप्रदेश।
5. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
6. प्रो0 एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

18.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राधाकृष्ण चौधरी व अन्य, भारत में स्थानीय शासन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन्स पटना, 1982
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
3. डॉ0 मीनाक्षी पवार, स्थानीय स्वायत्त शासन, निकुंज प्रकाशन बड़वानी, मध्य प्रदेश।
4. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
5. प्रो0 एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 1999

18.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वतन्त्रता पूर्व नगरपालिका के विकास पर एक लेख लिखें।
2. भारत में नगरपालिकाओं के गठन उनकी शक्तियों एवं उसके कार्यों का वर्णन करें।
3. नगरपालिका के आय के साधनों पर प्रकाश डालते हुए इस पर सरकारी नियन्त्रण का भी उल्लेख करें।

इकाई- 19 छावनी परिषद और औद्योगिक नगरियां

इकाई की संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 छावनी परिषद
19.3 छावनी परिषद का संगठन
19.4 छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियां
    19.4.1 अनिवार्य कार्य
    19.4.2 ऐच्छिक कार्य
19.5 छावनी परिषद के आय के स्रोत
19.6 छावनी परिषद पर नियन्त्रण
19.7 छावनी परिषद की वर्तमान प्रासंगिकता
19.8 औद्योगिक नगरियां
19.9 औद्योगिक नगरियों की विशेषताएं
19.10 औद्योगिक नगरियों का संगठन
19.11 औद्योगिक नगरियों की वर्तमान स्थिति
19.12 सारांश
19.13 शब्दावली
19.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
19.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.17 निबंधात्मक प्रश्न

19.0 प्रस्तावना

छावनी शब्द का प्रयोग भारत की लोक भाषा में अस्थायी निवास स्थान के लिए किया जाता था। इसी परिप्रेक्ष्य में सैनिकों के सामरिक चालों हेतु प्रयुक्त अस्थायी आवास को छावनी शब्द से सम्बोधित किया जाता था, लेकिन विगत लगभग 150 वर्षों से इस शब्द का प्रयोग सैनिकों के स्थायी आवासीय क्षेत्र के लिए किया जाता है। छावनी क्षेत्र भारत में प्रायः महत्वपूर्ण शहरों के समीप बसे हैं। जब किसी क्षेत्र में सैनिक निवास करने लगते हैं, तो वहाँ बड़ी संख्या में असैनिक लोग भी बस जाते हैं। छावनी का जन्म सैनिकों के कारण ही हुआ, किन्तु उनकी असैनिक संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, इसलिए वहाँ के लोगो को नागरिक सुविधाएँ देने के उद्देश्य से नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद की स्थापना की गयी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के अनेक भागों में सार्वजनिक उद्योग संस्थानों की स्थापना की गयी। इनकी लागत का लगभग ग्यारह प्रतिशत इस क्षेत्र में लोगों के निवास व सुविधाओं की स्थापना पर खर्च कर दिया जाता है। उद्योगों की स्थापना के कारण उस क्षेत्र विशेष में रोजगार व व्यापार के बढ़े अवसर ने लोगों को चुम्बक की तरह इस क्षेत्र में बसने के लिए आकृष्ट किया, जिसका स्वभाविक परिणाम आबादी बढ़ने के रूप में सामने आया। इससे नगरी के आसपास गन्दे मुहल्ले तथा अनियन्त्रित व अव्यवस्थित मकान बनने लगे, जिनको नियन्त्रित व व्यवस्थित करने के लिए औद्योगिक नगरियों नामक निकाय की स्थापना की गयी।

छावनी क्षेत्र तथा औद्योगिक एरिया के नागरिकों की मूलभूत सुविधाओं को विकसित करने के लिए छावनी क्षेत्र में छावनी परिषद तथा औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक नगरियों नामक नगरीय निकाय की स्थापना की जाती है जो नगरपालिका की भाँति उस छोटे से क्षेत्र के विकास के दायित्व का निर्वहन करती है। ये संस्थाएं भी नगरीय स्वायत्त शासन के इकाईयों की ही लघु रूप होती हैं, जो अपने दायित्वों का लगभग स्वतन्त्र होकर निर्वहन करने का प्रयास करती हैं।

19.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- छावनी परिषद और औद्योगिक नगरियां क्या हैं, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- इनकी स्थापना का उद्देश्य के बारे में जान पायेंगे।
- इनका संगठन कैसे होता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- इनके आय के मुख्य स्रोतें के बारे में जान पायेंगे।
- इनका प्रमुख कार्य क्या हैं, इस बारे में जान पाओगे।

19.2 छावनी परिषद

भारत में शहरों के नजदीक जिस क्षेत्र में सैनिकों के निवास की व्यवस्था होती है वहाँ उनके साथ-साथ उनके दैनिक आवश्यकताओं में सहयोग करने वाले शिविर अनुचर, नौकर या जन-सामान्य भी बस जाते हैं। ऐसे क्षेत्र को सामान्य रूप से छावनी कहते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को कल्याणकारी और नागरिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए एक स्वतन्त्र निकाय की आवश्यकता महसूस की गयी, जिसे दृष्टिगत रखकर 1924 में छावनी अधिनियम पारित कर नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद(Cantoment Board) की स्थापना की गयी, जो अन्य नगरीय निकायों की भाँति ही एक निगम निकाय है जिसे सम्पत्ति अर्जित करने, उसे धारण करने और संविदा में शामिल होने का अधिकार है। वह खुद 'वाद' ला सकती (मुकदमा चला सकती) है और उसके विरूद्ध भी 'वाद' लाया जा सकता है। छावनी परिषद अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगो के स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग करती है। छावनियां वास्तव में वे केन्द्र शासित क्षेत्र हैं जो प्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक नियन्त्रण में होती हैं। इस प्रकार यह स्थानीय शासन के उन निकायो से सर्वथा भिन्न होती हैं जो राज्य सरकार के अधीन हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों का एक सम्मेलन 1948 ई0 में नई दिल्ली में आयोजित किया गया। जिसमें केन्द्रीय सरकार से छावनी परिषद की सीमाओं का निर्धारण तथा छावनी अधिनियम 1924 में संसोधन हेतु सुझाव देने के लिए एक समिति नियुक्त करने की प्रार्थना की गयी। इसलिए एस0के0 पाटिल की अध्यक्षता में केन्द्रीय छावनी समिति नियुक्त की गयी। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार किया कि परिषद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होने के साथ-साथ इसके अध्यक्ष का निर्वाचन भी प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचकों द्वारा किया जाय। समिति का मानना था कि ''सैनिकों में सुरक्षा, अनुशासन और स्वास्थ्य का सन्तोषजनक होना सेना की कार्यकुशलता को बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। अतः छावनियों के प्रशासन को असैनिक बहुमत के हाथों में देने का जोखिम नहीं उठाया जा सकता है।'' समिति की प्रमुख संस्तुतियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. छावनियों के नगारिक प्रशासन का पहले से अधिक लोकतन्त्रीकरण करने के लिए वयस्क मताधिकार की व्यवस्था लागू की जाय।

2. छावनी परिषद नैमी तथा तत्कालिक प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में अपने अधिकारियों को शक्ति प्रदान करें।
3. छावनी परिषद की कार्यकुशलता में बृद्धि तथा संदिग्धता को दूर करने के लिए छावनी अधिनियम को संशोधित किया जाय।
4. छावनी परिषद के क्षेत्राधिकार से उस असैनिक क्षेत्र को निकाल दिया जाय जो सेना के आवश्यकता के दृष्टि से निरर्थक हो।

छावनी परिषद की व्यवस्थाओं के विरूद्ध बढ़ते जनमत को दृष्टिगत रखकर सन् 1953 में छावनी परिषद अधिनियम में संशोधन कर दिया गया। इस संशोधन के बाद भी छावनी प्रशासन का बुनियादी स्वरूप सैनिक प्रकार का ही बना रहा, लेकिन निर्वाचित तत्व को शक्तिशाली बनाने के लिए निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये-

1. प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के छावनी परिषदों के निर्वाचित तथा नामित सदस्यों की संख्या बराबर कर दी गयी। इसके लिए यह निश्चित किया गया कि एक सरकारी सदस्य का स्थान रिक्त रहेगा, जबकि तृतीय श्रेणी के छावनी परिषदों में केवल एक सदस्य नामित तथा अन्य निर्वाचित होते हैं।
2. सीमा दीवारों एवं इमारतों पर नियन्त्रण रखने तथा लाइसेंस देने हेतु असैनिक क्षेत्र समिति की शक्ति को बढ़ा दिया गया। इस समिति में सभी निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं, जिसकी अध्यक्षता परिषद का उपाध्यक्ष करता है और उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।
3. निर्धारण समिति में भी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत तथा परिषद के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता स्थापित होती है। भवन कर इसी द्वारा निर्धारित होता है।
4. परिषद का उपाध्यक्ष ही केन्द्र के समादेश क अधिकारी की अनुपस्थिति में छावनी परिषद के बैठकों की अध्यक्षता करता है।

19.3 छावनी परिषद का संगठन

सेना का मुख्य अधिकारी ही छावनी परिषद का प्रमुख होता है। इस रूप में छावनी क्षेत्र के स्थानीय विषयों के प्रबन्ध का दारोमदार उसी के ऊपर होता है। छावनी परिषद में दो तरह के सदस्य होते हैं, पहला- आधे सदस्यों का चुनाव उस क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है और दूसरा- आधे सदस्य रक्षा मन्त्रालय या सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

इनमें निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल तो प्रायः तीन वर्ष होता है, जबकि पदेन या मनोनीत सदस्य तब तक सदस्य बने रहते हैं जब तक कि वे उस पद पर आसीन है, जिसके कारण उनको सदस्य नामित किया गया है। छावनी बोर्ड के संगठन की तीन श्रेणियां निश्चित की गयी हैं। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

- प्रथम श्रेणी छावनी परिषद जिसकी असैनिक जनसंख्या एक हजार से अधिक है।
- द्वितीय श्रेणी जिनकी असैनिक जनसंख्या 25 सौ से अधिक और 10 हजार से कम है।
- तृतीय श्रेणी की छावनियां जिनकी असैनिक जनसंख्या25 सौ से कम है।

नामित सदस्यों में प्रमुख रूप के निम्नांकित अधिकारी सम्मिलित होते हैं-

- केन्द्र का समादेशक अधिकारी (कमान्डिग आफिसर) अध्यक्ष होता है, इसलिए परिषद में मतदान की स्थिति में पक्ष व विपक्ष में समान मत पड़ने पर उसे निर्णायक मत देने का अधिकार होता है।
- जिलाधीश द्वारा नामित एक प्रथम श्रेणी का दण्डाधीश(मजिस्ट्रेट)।
- छावनी का स्वास्थ्य अधिकारी।
- छावनी का कार्यकारी अभियन्ता।

- केन्द्र के समादेशक अधिकारी द्वारा नामित चार अन्य सैनिक अधिकारी।
- जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य।

19.4 छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियाँ

यद्यपि छावनी परिषद कार्यों की दृष्टि से नगरपालिका की सहराही प्रतीत होती है, किन्तु उसको नगरपालिका से इतर कुछ अतिरिक्त कार्य भी करने पड़ते हैं। छावनी क्षेत्र की सफाई एवं यौन दुराचार का कड़ाई से दमन करना इसका एक प्रमुख उत्तरदायित्व माना जाता है। अन्य नगरीय स्थानीय निकायों की भाँति छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियों को भी दो वर्गो में विभक्त किया गया है- अनिवार्य कार्य और ऐच्छिक कार्य।

19.4.1 अनिवार्य कार्य

छावनी परिषद के प्रमुख अनिवार्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. शुद्ध एवं स्वच्छ जल की व्यवस्था।
2. घृणित एवं क्षोभकर व्यवसायों, उद्यमों एवं परिपाटियों का नियमन।
3. सार्वजनिक स्थानों, मार्गों तथा नालियों की सफाई का प्रबन्ध।
4. सार्वजनिक स्थानों व सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था।
5. जन स्वास्थ्य, सुरक्षा व सुविधा के लिए रास्तों एवं अन्य स्थानों से अवरोधकों एवं प्रक्षेपों का शमन करना।
6. प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
7. चिकित्सालयों की स्थापना व टीकाकरण का प्रबन्ध करना।
8. सड़कों के किनारे व सार्वजनिक स्थानों पर वृक्षारोपण व उनकी देखरेख।
9. जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण।
10. खतरनाक भवनों एवं स्थानों को हटाना व सुरक्षित करना।
11. अग्निशमन का प्रबन्ध करना।
12. शमशान घाटों का अनुरक्षण एवं नियमन।
13. पुलों, पुलियों, मार्गों, काजी हाउसों, हाटों की व्यवस्था, निर्माण व अनुरक्षण।

19.4.2 ऐच्छिक कार्य

छावनी परिषद के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं-

1. स्वास्थ्य के लिए अनुपयुक्त स्थानों को निवास योग्य बनाना।
2. सार्वजनिक स्थानों, तालाबों एवं कुओं का निर्माण।
3. सर्वेक्षण करना।
4. संक्रामक महामारियों के फैलने पर स्थानीय स्तर पर राहत कार्य करना।
5. बिजली का प्रबन्ध।
6. सार्वजनिक परिवहन की व्यवस्था करना।

19.5 छावनी परिषद के आय के स्रोत

छावनी परिषद के आय के प्रमुख स्रोतों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है- करों से आय और अन्य स्रोतों से आय।

1. **करों से आय-** छावनी परिषद भी सामान्य रूप से उन्हीं करों को लगाती है जो नगरपालिका द्वारा लगाये जाते हैं। जैसा कि छावनी परिषद अधिनियम 1924 में कहा गया है कि छावनी परिषद को केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमति से ऐसा कोई भी कर लगाने का अधिकार होता है जो उस समय उस नगरपालिका के द्वारा

लगाया जा रहा हो जिसमें छावनी परिषद अवस्थित है। इस प्रकार छावनी परिषद अपने क्षेत्रान्तर्गत भूमि कर, भवन कर, जलकर आदि वसूल करती है।

2. **अन्य स्रोतों से आय-** उपर्युक्त करों के अतिरिक्त छावनी परिषद के आय का एक प्रमुख स्रोत केन्द्रीय सरकार के रक्षा मन्त्रालय द्वारा उसे दिया जाने वाला अनुदान है। इसके अलावा वह व्यापार आदि तथा रिक्षा पर लाइसेंस शुल्क भी वसूल करती है।

19.6 छावनी परिषद पर नियन्त्रण

छावनी परिषद का अध्यक्ष सेना का उच्च अधिकारी होता है तथा इसके आधा से ज्यादा सदस्य रक्षा मन्त्रालय द्वारा मनोनीत होते है। इसलिए छावनी बोर्डों पर भारत सरकार के रक्षा मन्त्रालय का सीधा नियन्त्रण होता है। जबकि राज्य सरकार से इनका किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं होता है। मनोनीत सदस्यों का बहुमत होने के कारण निर्वाचित सदस्यों का कोई महत्व नहीं रह जाता है, क्योंकि सैनिक अधिकारी जो इस बोर्ड के सदस्य होते हैं वे अपने बहुमत से किसी भी प्रस्ताव को मंजूर या नामंजूर कर सकते हैं। सैनिक अधिकारी पूर्ण रूप से रक्षा मन्त्रालय के अधीन या नियन्त्रण में होते है। इसलिए इनके द्वारा कार्य भी उसी रूप में किया जाता है जिस रूप में केन्द्रीय सरकार का रक्षा मन्त्रालय चाहता है। छावनी परिषद के आय का बड़ा भाग भी रक्षा मन्त्रालय से अनुदान के रूप में ही प्राप्त होता है, इसलिए उसको खर्च भी उसी के निर्देषों के अनुरूप किया जाता है। जिससे रक्षा मन्त्रालय का कठोर वित्तीय नियन्त्रण भी स्थापित हो जाता है।

19.7 छावनी परिषद की वर्तमान प्रासंगिकता

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छावनी परिषद न तो नगरीय शासन के स्वायत्त इकाई के रूप में कार्य कर पा रही है और न ही स्थानीय शासन के प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के प्रतिरूप रूप में। छावनी परिषद को स्वायत्तता प्राप्त हो इसके लिए इस पर रक्षा मन्त्रालय और सेना के प्रभुत्व को कम किया जाना चाहिए। वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग माना जाता है, क्योंकि दुनिया का हर देश आज या तो प्रजातन्त्र को अपना लिया है या इस दिशा में तेजी के साथ बढ़ रहा है। ऐसे में भारत जैसा देश, जिसके रग-रग में प्रजातन्त्र व प्रजातान्त्रिक भावना प्राचीन काल से रची-बसी है, ऐसे में एक गैर-प्रजातान्त्रिक निकाय के रूप में छावनी बोर्ड का अस्तित्व उचित नहीं कहा जा सकता, इसलिए इसको अस्वीकार कर देना चाहिए। इसीलिए सन् 1933 में स्थापित एस0के0 पाटिल समिति ने भी इसके स्वरूप में परिवर्तन की अनुशंसा करते हुए इसमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा सैनिक अधिकारियों के नियन्त्रण को कम करने की बात की थी। कभी-कभी यह कहते हुए इसके अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लगाया जाता है कि छावनी क्षेत्र प्रायः बड़े नगरों के समीप है। ऐसे में नगरों में नगर निगम या नगरपालिका और छावनी क्षेत्र में छावनी बोर्ड जैसी संस्था का होना अनावश्यक है। इस दृष्टि से यह प्रासंगिक होगा कि छावनी बोर्डों का विलय नगर निगम या नगरपालिका में कर दिया जाए। इस बात की सिफारिश करते हुए ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी कहा था कि ''कैन्टोमेन्ट बोर्डों का एक पृथक संस्था के रूप में निरन्तर अस्तित्व एक असंगति है और वे आगे चलकर साथी नगरपालिका के ही अंग बना दिये जायेंगे।''

19.8 औद्योगिक नगरियां

सन् 1947 ई0 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को अपनाया गया। इसलिए निजी उद्योगों के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रो में सार्वजनिक उद्योगों की भी स्थापना की गयी। जिस क्षेत्र में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये गये वहाँ उनमें कार्य (नौकरी) करने वाले लोगों के लिए आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं यातायात आदि मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए नागरिक सुविधाओं का स्थापित किया जाना भी आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप देश के जिन हिस्सों में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये गये, वहाँ नागरिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए औद्योगिक नगरियों की स्थापना की गयी। ये नगरियां

प्रायः ग्रामीण क्षेत्र या विद्यमान नगरों के पड़ोस में स्थापित की जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों के सम्पूर्ण लागत का लगभग ग्यारह प्रतिशत इन औद्योगिक नगरियों की स्थापना पर व्यय किया जाता है, क्योंकि उद्योगों की स्थापना ऐसे क्षेत्र में की जाती है जहाँ सस्ती भूमि, सस्ता कच्चा माल, सस्ते श्रमिक तथा नजदीक ही उत्पादित माल को बेचने के लिए बाजार उपलब्ध हो। ऐसे क्षेत्र प्रायः नागरिक सुविधा के दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े होते हैं। उद्योगों के स्थापना के साथ ही उस क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसर निश्चित रूप से चुम्बक की तरह लोगों को स्थायी या अस्थायी रूप से बसने के लिए आकृष्ट करते है फलस्वरूप उस क्षेत्र की आबादी तेजी से बढ़ती है। जिससे अनेक समस्याएं स्वतः ही प्रस्फुटित हो जाती है। इन समस्याओं में प्रमुख रूप से अनियोजित भवन निर्माण, सड़क, नाली, गन्दगी, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात होती है। इन समस्याओं को दृष्टिगत रखकर उद्योग प्रबन्धन के अन्तर्गत ही एक समिति का निर्माण किया जाता है। जिसमें उद्योग संस्थान के प्रमुख अधिकारी व कर्मचारी शामिल होते हैं। उद्योग संस्थान द्वारा उपलब्ध कराये गये धनराशि का उपयोग कर यह समिति उस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को सुनियोजित जीवन जीने की सुविधाएँ उपलब्ध कराती है।

19.9 औद्योगिक नगरियों की विशेषताएँ

औद्योगिक नगरियां अन्य नगरीय निकायो से अत्यधिक भिन्न होती है जिससे उनकी समस्याएं भी नगर निकायोंसे भिन्न होती हैं। इन विभिन्नताओं को ही औद्योगिक नगरियों की विशेषताओं के रूप में सम्बोधित किया जाता है। इनमें से प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. औद्योगिक नगरियां पूर्ण रूप से नियोजित एवं व्यवस्थित होती हैं, क्योंकि इनकी स्थापना औद्योगिक संस्थान की योजना के अनुरूप ही की जाती है।
2. इन नगरियों पर किया जाने वाला खर्च सार्वजनिक उद्योग संस्थानों के बजट का एक बड़ा हिस्सा होता है, इसलिए इनमें उपलब्ध नागरिक सुविधाएँ अन्य नगरीय निकायों से गुणात्मक दृष्टि से काफी ऊँचे स्तर की होती है। इनमें प्रमुख रूप से पानी, बिजली, सड़क, जल निकासी, चिकित्सा, शिक्षा, बाजार, क्लब, सामुदायिक केन्द्र, क्रीड़ा स्थल, पार्क, सभा-भवन आदि है।
3. औद्योगिक नगरियों के कार्यक्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को उपलब्ध करायी जाने वाली सुविधाओं और सेवाओं का समस्त व्यय उद्योग संस्थान द्वारा वहन किया जाता है।
4. इन क्षेत्रों में उपलब्ध रोजगार व अन्य सेवाएं लोगो को तेजी के साथ आकृष्ट करती है, जिससे समीप के क्षेत्रों में अव्यवस्थित विकास को प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए नागरिक सेवाओं और सुविधाओं के दृष्टि से उस सम्पूर्ण क्षेत्र को दृष्टिगत रखकर विकास योजनाएं निर्मित की जानी चाहिए।
5. सार्वजनिक उद्योग संस्थानों द्वारा स्थापित नगरियां निकटवर्ती क्षेत्रों के साथ अपने क्लिय का अनेक कारणों से विरोध करती है, क्योंकि उनको भय है कि इस प्रकार के विलय से उद्योग का वित्तीय और प्रशासनिक भार अत्यधिक बढ़ जायेगा। परियोजना से सम्बन्ध न रखने वाली जनता की भीड़ बढ़ जायेगी, जिससे औद्योगिक हित प्रभावित होगा और नगरपालिकाओं की राजनीति नगरियों के नागरिक प्रशासन पर भी छा जायेगी।

19.10 औद्योगिक नगरियों का संगठन

औद्योगिक नगरियों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में की जाती है या विद्यमान नगरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में। ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने औद्योगिक नगरियों को प्रमुख तौर पर तीन वर्गों में विभक्त किया है। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

- एकल औद्योगिक नगरियां। जैसे- राउरकेला, भिलाई और जमशेदपुर।
- ऐसी औद्योगिक नगरियां जहाँ एक साथ कई उद्योग स्थापित हो। जैसे- दुर्गापुर।

- छोटी औद्योगिक नगरियां। जैसे- भोपाल के निकट हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड(HEL), बंग्लौर के निकट इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज तथा हिन्दुस्तान एरोनोटिक्स लिमिटेड (HAL)।

औद्योगिक नगरियों का शासन सार्वजनिक उद्योग संस्थान का ही सामान्य प्रशासनिक दायित्व समझा जाता है। इसके लिए इन संस्थानों द्वारा विस्तृत संगठन स्थापित किये जाते हैं। जिसमें नगर प्रशासक (कम्पनी द्वारा नियुक्त अधिकारी) और विभागीय अध्यक्ष आंवटन, अनुरक्षण, उद्यान कार्य, प्रशासनिक अधिकारी, सम्पदा अधिकारी, इंजीनियर तथा अन्य कर्मचारी प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं इन औद्योगिक नगरियों में निर्वाचित तत्वों को प्रायः जानबूझकर शामिल नहीं किया जाता है। इस प्रकार इनका शासन पूर्णरूपेण अधिकारीतन्त्रात्मक (नौकरशाही किस्म का) होता है। औद्योगिक नगरियों के प्रशासनिक ढ़ाँचे में लोकतन्त्र के अभाव को उचित ठहराने के लिए दो तरह के तर्क दिये जाते हैं- प्रथम, यदि इन नगरियों का नागरिक प्रशासन चुने हुए लोकतान्त्रिक निकायों को सौंप दिया जाय तो नागरिक सेवाओं और सुविधाओं के स्तर में गिरावट आ जायेगी साथ ही साथ इन पर राजनीतिक हस्तक्षेप भी बढ़ जायेगा। द्वितीय वर्तमान में ये नगरियां जो सेवाएं व सुविधांए उपलब्ध करा रही हैं वे अत्यन्त उच्चकोटि की है और इनसे सम्बन्धित जनता उससे पूर्णतः सन्तुष्ट है।

19.11औद्योगिक नगरियों की वर्तमान स्थिति

वर्तमान लोकतान्त्रिक युग में भी औद्योगिक नगरियों का शासन अधिकारीतन्त्रीय बना हुआ है। जिसके कारण इसके औचित्य को लेकर ही प्रश्न-चिन्ह लगाया जाता है। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि भले ही औद्योगिक नगरियों द्वारा जुटायी गयी नागरिक सेवाएं और सुविधाएं उच्च कोटि की हैं और स्थानीय जनता उससे भलीभाँति सन्तुष्ट है, लेकिन सुशासन को कभी भी स्वशासन का विकल्प नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शासन में सहभागिता का होना ही जन सामान्य को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक नगरियों के शासन में निर्वाचन की व्यवस्था राजनीतिक गुटबन्दी व विवाद को बढ़ावा देगी और इससे सार्वजनिक उद्योग संस्थान को क्षति या आघात पहुँचेगा, क्योंकि आज भी जिन बड़े नगरों व कस्बों में निर्वाचित स्थानीय शासन स्थापित है, वहाँ भी अनेक सार्वजनिक उद्योग स्थापित हो रहे है, किन्तु इन स्थानीय निकायों से उन्हें कोई नुकसान नहीं हो रहा है। औद्योगिक नगरियों के शासन में लोकतन्त्र नहीं होने के कारण जनता के प्रति उत्तरदायित्व के तत्व का अभाव दिखायी देता है। जबकि जनता के प्रति जवाबदेही का अभाव शासन व प्रशासन में निरंकुशता को बढ़ावा देता है, जिसके कारण शासन प्रशासन अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन समुचित व प्रासंगिक तरीके से नहीं कर पाता है।

सन् 1963ई0 में स्थापित ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति औद्योगिक नगरियों के शासन व प्रशासन की व्यापक जांच करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अन्ततोगत्वा सार्वजनिक उद्योग संस्थानों की औद्योगिक नगरियों को जो वर्तमान में जागीरों के रूप में काम रही है, लोकतान्त्रिक व्यवस्था का अंग बनना पड़ेगा। इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि इन नगरियों को विशेष नगरीय समितियों के रूप में संगठित कर दिया जाय। जिसमें उद्योग प्रमुखों के अलावा निर्वाचित लोगो को शामिल कर नागरिकों के लोक प्रतिनिधित्व की आकांक्षा को सन्तुष्ठ किया जा सके। इसमें आधे सदस्यों को जिनमें अध्यक्ष भी शामिल हो को उद्योग की सिफारिश पर राज्य सरकार नामित करे तो शेष आधे सदस्यों को औद्योगिक नगरी क्षेत्र में निवास करने वाली जनता प्रत्यक्ष रूप से चुने। समिति ने यह भी सिफारिश की कि जो औद्योगिक नगरियां बड़े नगरों और कस्बों क समीप स्थापित हैं, उनके आन्तरिक मामलों का प्रबन्ध जैसा कि प्रचलन में है कम्पनियों के हाथों में ही बना रहे। लेकिन नगर में उपलब्ध सुविधाओं जैसे- सड़कों, परिवहन, बाजारों, चिकित्सालयों, शिक्षा आदि जिनका लाभ कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा लिया जाता है, उनके रख-रखाव के लिए कम्पनी द्वारा समुचित अंशदान दिया जाना चाहिए। समिति के सुझावों को भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के अनुरूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसकी सिफारिश में अध्यक्ष को सरकार द्वारा नामित करने की

अनुशंसा की गयी थी। जबकि अध्यक्ष या सभापति का चुनाव किसी भी संस्था में लोकतान्त्रिक मूल्यों का प्रतीक तथा संरक्षक होता है। इसलिए जो भी निकाय लोकतान्त्रिक होने का दम्भ भरता है उसका अध्यक्ष या सभापति निश्चित रूप से जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. छावनी अधिनियम कब पारित किया गया था?
2. स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों का प्रथम सम्मेलन कब और कहाँ आयोजित किया गया था?
3. केन्द्रीय छावनी समिति का गठन किसकी अध्यक्षता में किया गया था?
4. छावनी परिषद अधिनियम में संशोधन कब किया गया था?
5. सार्वजनिक उद्योग संस्थान के कुल लागत का लगभग कितना प्रतिशत औद्योगिक नगरियों की स्थापना पर व्यय किया जाता है?
6. औद्योगिक नगरियां पूर्ण रूप से ....होती हैं।
7. औद्योगिक नगरियों को कितने वर्गों (श्रेणियों) में विभक्त किया जाता है?
8. ग्रामीण- नगरीय सम्बन्ध समिति की स्थापना कब की गयी थी?

19.12 सारांश

भारत में सैनिकों के सामरिक चालों हेतु प्रयुक्त स्थायी आवास को छावनी परिक्षेत्र कहा जाता है। ये प्रायः महत्वपूर्ण शहरों के समीप बसा होता है। जहाँ सैनिकों के साथ-साथ बड़ी संख्या में असैनिक लोग भी बसे होते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले सैनिक तथा असैनिक लोगों को नागरिक सुविधाएं उपलब्ध कराने वाले नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद की स्थापना की गयी होती है। ये छावनियां पूर्णरूपेण केन्द्र शासित क्षेत्र होती हैं और इस पर भारत सरकार के रक्षा मन्त्रालय का प्रशासनिक नियन्त्रण होता है, इसलिए राज्य सरकार से इनका कोई सम्पर्क नहीं होता है। इसमें प्रतिनिधित्व के तत्व को समाहित करने के लिए एस0के0 पाटिल की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी। जिसने इसे लोकतान्त्रिक बनाने के लिए आधे सदस्यों के निर्वाचन की अनुशंसा की। यह परिषद ही छावनी क्षेत्र में निवास करने वाले समस्त सैनिक तथा असैनिक समुदाय के समस्त नागरिक सुविधांए उपलब्ध कराती है जो नगरपालिका क्षेत्र में नगरपालिका के द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। इसका अध्यक्ष सेना का उच्च अधिकारी होता है तथा इसके आधे से ज्यादा सदस्य रक्षा मन्त्रालय द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इनको आय भी केन्द्र सरकार व रक्षा मन्त्रालय द्वारा दिये जाने वाले अनुदान के रूप में प्राप्त होती है। जिन क्षेत्रों में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये जाते हैं, वे प्रायः ग्रामीण या नगरों के समीपवर्ती होते है। इसमें उद्योग संस्थान के कर्मचारी तथा अनेक गैर-कर्मचारी भी निवास करते हैं। इन क्षेत्रों में मूलभूत नागरिक सुविधाओं की स्थापना के लिए औद्योगिक नगरियों की स्थापना के साथ-साथ कुल औद्योगिक बजट का लगभग ग्यारह प्रतिशत खर्च भी किया जाता है। औद्योगिक नगरियों का शासन सार्वजनिक उद्योग संस्थान का ही सामान्य प्रशासनिक दायित्व माना जाता है। औद्योगिक नगरियों के प्रशासन के लिए सार्वजनिक उद्योग संस्थान के द्वारा नगर प्रशासक नियुक्त किया जाता है तथा उसका सहयोग करने के लिए संस्थान के विभिन्न विभागों के प्रमुखों, अभियन्ताओं व कुछ महत्वपूर्ण कर्मचारियों की एक समिति गठित कर दी जाती है। इसलिए इसका प्रशासन अधिकारीतन्त्रीय स्वरूप का अर्थात लोकतन्त्र के प्रतिकुल माना जाता है।

19.13 शब्दावली

छावनी- सैनिकों के रहने का स्थायी स्थल, परिषद- उद्देश्य विशेष के लिए गठित विशेषज्ञों की समिति, उद्योग- मानव जीवन को सरल बनाने के लिए यन्त्रों अथवा संसाधनों की उत्पादक इकाईयां, संस्थान- राजनैतिक, शैक्षिक

और सांस्कृतिक उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए गठित संस्थान, लोकतन्त्रीकरण- शक्ति का विकेन्द्रीकरण, संशोधन- समयानुकुल परिवर्तन, नामित सदस्य- ऐसे सदस्य जो अपनी विशेषज्ञता या किसी पद विशेष पर आसीन होने के कारण सरकारों या उच्च संवैधानिक संस्थाओं द्वारा नियुक्त किये जाय, दुराचार- आचार संहिता के विपरीत आचरण, ऐच्छिक कार्य- ऐसे कार्य जिनको करना इच्छा पर निर्भर हो, अनिवार्य कार्य- ऐसे कार्य जिनको करना अति आवश्यक हो, संक्रामक- शीघ्रता पूर्वक प्रभावित करने वाली व्यवस्था या परिस्थिति, महामारी- ऐसी बीमारी जो मानवीय समुदाय का बड़े पैमाने पर विनाश करें

19.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1924 ई0 में, **2.** सन् 1948 ई0 में नयी दिल्ली में, **3.** एस0के पाटिल, **4.** 1953 ई0, **5.** लगभग ग्यारह प्रतिशत, **6.** नियोजित व व्यवस्थित, **7.** तीन, **8.** सन् 1963 ई0 में

19.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
3. अमरेश्वर अवस्थी एवं आनन्द प्रकाश अवस्थी (अवस्थी एवं अवस्थी) भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

19.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।

19.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. छावनी परिषद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. छावनी परिषद के संगठन, कार्य एवं शक्तियों का संक्षिप्त उल्लेख करें।
3. 'छावनी परिषद व औद्योगिक नगरियां अप्रजातान्त्रिक संस्थाएं हैं' इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
4. औद्योगिक नगरियों पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई- 20 स्थानीय शासन का संघात्मक रूप

इकाई की संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2 स्थानीय शासन
20.3 संघात्मक शासन
20.4 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा
20.5 भारत के विभिन्न राज्यों में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप
20.5.1 बम्बई(मुम्बई)
20.5.2 कलकत्ता(कोलकता)
20.5.3 मद्रास(चेन्नई)
20.5.4 दिल्ली
20.5.5 हैदराबाद
20.6 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप के दोष
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
20.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.12 निबंधात्मक प्रश्न

20.0 प्रस्तावना

यह इकाई शासन के सबसे निचले स्तर स्थानीय स्वशासन में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित है। वर्तमान युग अतिशय भौतिकता व यान्त्रिक है। ऐसे में निचले स्तर के शासन के लिए भी यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगों को समस्त नागरिक सुविधांए उपलब्ध करा सके। इसके लिए स्थानीय स्वशासन की इकाईयों को भी उपखण्डों में विभाजित कर शासन की शक्तियों को प्रत्यायोजित करने का प्रयास किया जा रहा है।

स्थानीय स्वशासन की ये उपइकाईयां अपने निर्देशक संस्था में मार्ग-निर्देशन में काफी स्वायत्त तरीके से अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही हैं। इनके अस्तित्व का एक बड़ा लाभ यह है कि जनता की समस्याओं का समाधान उसके अत्यन्त निकट ही प्राप्त हो जाता है। जनता के अत्यन्त निकट होने के कारण ये भावनात्मक रूप से उससे जुड़ जाती है और उसके अन्दर एक अजीब से अपनत्व का भाव प्रदर्शित होता है। जनता के दिन-प्रतिदिन के सम्पर्क में होने के कारण ये अधिक उत्तरदायी तरीके से अपने कर्तव्यों का पालन करती हैं।

वर्तमान में स्थानीय स्वशासन के इकाईयों के बढ़ते आकार ने जनता से उसकी दूरी को बढ़ा दिया है। जबकि स्थानीय स्वशासन की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि शासन जनता के दिन-प्रतिदन के सम्पर्क में होना चाहिए। इसलिए जनता से स्थानीय स्वशासन की बढ़ी हुई दूरी को कम करने के लिए महसूस किया गया कि इन संस्थाओं के शक्तियों का ठीक उसी रूप में विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय जिस रूप में किसी संघ राज्य (राष्ट्रीय राज्य) द्वारा अपनी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण अपनी इकाईयों अर्थात राज्यों को कर दी जाती है। इस प्रकार

स्थानीय स्वशासन का एक नया रूप अवतरित हुआ, जिसे स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की संज्ञा से नवाजा जाता है।

यह इकाई स्थानीय शासन के संघात्मक रूप से सम्बन्धित है। जिसमें इस बात का जिक्र करने का प्रयास किया गया है कि बढ़ती हुई मानवीय व सामाजिक जीवन की जटिलताओं ने शासन के सबसे निचले स्तर की इकाईयों के लिए भी नागरिक जीवन की समस्त सुविधाओं की व्यवस्था करना असम्भव बना दिया है। इसलिए इन इकाईयों की भी उप इकाईयां स्थापित कर इनको संघात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया गया है।

20.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- स्थानीय शासन को संघात्मक रूप देने की आवश्यक ता को जान सकेंगे।
- स्थानीय शासन तथा जनता के बीच सम्बन्धों के परिवर्तित रूप को समझ सकेंगे।
- शासन के विकेन्द्रीकरण की बढ़ती उपयोगिता को जान सकेंगे।
- शासन को जनता के लिए प्रासंगिक बनाये रखने के लिए जनता से सम्बन्ध आवश्यक है का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

20.2 स्थानीय शासन

मानव प्रकृति से ही आत्म केन्द्रित होता है। वह इसे कभी पसन्द नहीं करता है कि उसके बारे में निर्णय लेने का अधिकार किसी और को प्राप्त हो। इसलिए मानव सभ्यता के प्रारम्भ या सामूहिक जीवन की शुरूवात से ही स्थानीय शासन की आवश्यकता महसूस की गयी। शासन प्रशासन का प्रारम्भ प्राचीन काल में निचले स्तर से ही प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे विकास के माध्यम से जनपद, राज्य, संघ या वर्तमान में विश्व संघ के निकट पहुँच गया है। स्थानीय शासन शासन के एक अनोखे स्वरूप का प्रतिविम्ब है जिसका आधार 'स्थान' अर्थात सीमित क्षेत्र होता है। इसके छोटे आकार को इसलिए पसन्द किया जाता है क्योंकि इससे शासन जनता के निकट बना रहता है और जनता को शासन में व्यापक तथा सक्रिय सहभागिता प्राप्त होती है। इसलिए स्थानीय शासन के साथ जनमानस का भावनात्मक जुड़ाव स्वाभाविक है। वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की बढ़ती जटिलताओं ने यह असम्भव बना दिया है कि अकेले केन्द्र या राज्य स्तर की सरकारें लोगों के सभी समस्याओं का समाधान कर सकें। ऐसे में स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर ही किया जा सके इसी ध्येय को लेकर स्थानीय स्वशासन की अवधारणा का विकास हुआ। हैरिस ने लिखा है कि ''स्थानीय स्वराज्य या शासन एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत किसी स्थान विशेष के लोग स्थानीय महत्व के सार्वजनिक मामलों के विषय में कुछ दायित्व रखते हैं और उन दायित्वों के निर्वाह के लिए अपने साधन जुटाते हैं।'' स्वतन्त्रता पूर्व गांधी जी ने भी ग्राम स्वराज्य पर बल दिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर करने और शासन में लोगों को सक्रिय सहभागिता देने के नियत से ग्रामीण तथा नगरीय दोनों क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं की व्यापक व्यवस्था की गयी।

20.3 संघात्मक शासन

वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग है जिसमें शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को अधिकतम सहभागिता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है और यह तभी सम्भव है जबकि शासन शक्तियों का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। इसलिए शक्तियों का विकेन्द्रीकरण शासन के सबसे निचले स्तर पर भी करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन मानव समाज के समस्त उद्देश्यों को निचले स्तर की संस्थाओं के द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता, इसलिए शासन की कुछ

शक्तियों को उच्च स्तर की प्रशासनिक संस्थाओं को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार निम्न स्तर व उच्च स्तर के प्रशासनिक संस्थाओं के बीच शक्तियों के विभाजन को संघवाद या संघात्मक शासन के रूप में संबोधित किया जाता है। लोक कल्याणकारी राज्य के अस्तित्व में आने के बाद राज्य या सरकार का दायित्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। आज किसी भी स्तर के शासन के लिए यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह जनता के समस्त अपेक्षाओं को पूर्ण कर सकें। इसलिए वर्तमान में शासन के प्रत्येक स्तर पर दायित्वों के विभाजन की नीति को अपनाया जाने लगा है। कहा जाता है कि समाज संघात्मक है, इसलिए सत्ता भी संघात्मक होनी चाहिए।

20.4 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा

स्थानीय शासन की अवधारणा 'स्थानीयता के सिद्धान्त' पर आधारित है। अर्थात 'स्थानीय शासन' शब्द प्रशासन की ऐसी व्यवस्था की ओर संकेत करता है, जिसका आकार छोटा अर्थात क्षेत्र सीमित हो। प्रजातन्त्र के अनुरूप जनता को शासन में सक्रिय एवं व्यापक भागीदारी तभी प्राप्त हो सकती है जबकि स्थानीय शासन का आकार व क्षेत्र सीमित हो। किन्तु वर्तमान नगरीय शासन स्थानीयता के नियम का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण भारतीय नगरों का आकार व क्षेत्र तेजी के साथ बढ़ता जा रहा है। स्थानीय प्रशासन का आकार जैसे-जैसे बढ़ रहा है वैसे-वैसे शासन भी जनता से दूर होता जा रहा है। परम्परागत नगरीय प्रशासन के ढ़ाँचे में जनता की सक्रिय भागीदारी एक कपोल कल्पना बनती जा रही है। इस प्रकार स्थानीय शासन का उद्देश्य ही निष्फल होने लगा है, क्योंकि जनता कि सक्रिय प्रशासनिक भागीदारी (प्रजातन्त्र) ही स्थानीय शासन का मूल आधार है।

स्थानीय शासन के अनिवार्य एवं अति आवश्यक गुण शासन में जनता की सक्रिय भागीदारी, जन शिकायतों का तत्परता पूर्वक निवारण, शासन को जनता के निकट बनाये रखने तथा जन आवश्यकताओं को जनादेश के अनुरूप पूरा करने के लिए वर्तमान समय में बड़े नगरों के शासन को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से अनेक छोटे-छोटे क्षेत्रों में बांट दिया जाता है। नगरीय शासन की शक्तियों का दो स्तरों पर विभाजन स्थानीय शासन का संघात्मक रूप कहा जाता है। सम्पूर्ण नगरीय प्रशासन में जहाँ शक्ति या सत्ता का केन्द्रीकरण होता है, वहाँ स्थानीय लघु क्षेत्रों की प्रशासनिक इकाईयों के स्तर पर शक्ति या सत्ता का विकेन्द्रीकरण रहता है और जनता की प्रशासनिक भागीदारी स्थानीय नगर प्रशासन में बनी रहती है। सत्ता का यह विकेन्द्रीकरण ही स्थानीय शासन का संघात्मक रूप है।

भारत के प्रमुख विशाल नगरों में नगर प्रशासन का द्विस्तरीय ढ़ाँचा स्थापित किया गया है। जिसे नगरीय प्रशासन का संघात्मक रूप या नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। इस संघात्मक व्यवस्था में प्रत्येक बड़े नगर को अनेक लघु प्रशासनिक क्षेत्रों में बांट कर प्रत्येक क्षेत्र में स्थानीय शासन की एक लघु इकाई स्थापित कर दी जाती है। यह लघु प्रशासनिक इकाई नागरिकों के निकट होती है, जिससे जनता के दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करना सरल व सम्भव हो जाता है। जनता के निकट होने के कारण इसके द्वारा अपने दायित्वों का निर्वहन भी अधिक सजगता से किया जाता है। इन लघु प्रशासनिक इकाईयों के मध्य सहयोग व समन्वय स्थापित करने के लिए सम्पूर्ण नगर क्षेत्र की एक मुख्य नगरीय प्रशासनिक इकाई होती है। इन दोनों स्तरों की नगरीय संस्थाओं के बीच शक्तियों के विभाजन का आधार संविधिक हो सकता है या कभी-कभी नगरपाल स्वयं अपने आदेश से ऐसी व्यवस्था कर सकता है जिसका आधार विधिक होता है।

जिस प्रकार बड़े आकार, विशाल जनसंख्या व विधिवता से परिपूर्ण राष्ट्रीय राज्यों में शासन को कार्यकुशल व जनता के हितोपयोगी बनाने के लिए शासन शक्ति का स्पष्ट रूप से विभाजन केन्द्र तथा उसकी इकाईयों के मध्य कर दिया जाता है और इन दोनों स्तर की सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र होती हैं। ठीक उसी प्रकार से आज नगरों के बढ़ते हुए आकार ने यह आवश्यक बना दिया है कि नगरीय संस्थाओं की शक्तियों का विभाजन भी नगर के स्थानीय व केन्द्रीय प्रशासनिक इकाईयों के मध्य कर दिया जाय। इसलिए भारत के प्रत्येक बड़े नगर में

शक्तियों का विभाजन प्रशासन की लघु इकाईयों व उनकी केन्द्रीय सत्ता के बीच स्पष्ट रूप से कर दिया गया है, जिसमें कम महत्व व नितान्त स्थानीय महत्व के विषयों से सम्बन्धित दायित्व लघु इकाईयों को तो महत्वपूर्ण व सम्पूर्ण नगर से सम्बन्ध रखने वाले विषयों की शक्ति, केन्द्रीय नगरीय प्रशासनिक इकाई को सौंप दी जाती है।

लघु प्रशासनिक इकाई (क्षेत्रीय कार्यालय) का मुख्य दायित्व जनता की दिन-प्रतिदिन की शिकायतों को सुनना व उसके निवारण की यथोचित व्यवस्था करना, नगर करों की जमा प्राप्त करना होता है। इस प्रावधान का मुख्य उद्देश्य जनता से निकट सम्बन्ध रखते हुए उनकी समस्याओं के बारे में शीघ्र निर्णय लेना व उनको क्रियान्वित करना होता है। इसके साथ-साथ ये लघु प्रशासनिक इकाईयां स्थानीय शासन की प्रशासनिक चौकी के रूप में केवल उन्हीं कार्यकारी कार्यों का सम्पादन करती है, जो विशेष रूप से उन्हें सुपुर्द किये जाते हैं। इन इकाईयों का गठन करते समय यह प्रयास किया जाना चाहिए कि स्थानीय मामलों से सम्बन्धित निर्णयों में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित हो।

मुख्य प्रशासनिक इकाई के लिए जनता के दिन-प्रतिदिन के समस्याओं से तारतम्य स्थापित करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए यह क्षेत्रीय लघु प्रशासनिक इकाईयों के माध्यम से जनता तक अपनी पहुँच बनाने का प्रयास करती है। लघु प्रशासनिक इकाईयां जनता की जिन समस्याओं या आवश्यकताओं का निस्तारण या पूर्ति नहीं कर पाती है। उनको नगर निगम के मुख्य प्रशासनिक इकाई द्वारा किया जाता है। लघु प्रशासनिक इकाईयां अपने दायित्वों के निर्वहन में लापरवाह व निरंकुश न हो जाय, इसके लिए वह इनको नियन्त्रित व निर्देशित करते हुए आवश्यकतानुसार आदेश व निर्देश देती रहती है।

इस प्रकार बड़े आकार वाले नगरों में शासन की शक्तियों का लघु प्रशासनिक इकाई व मुख्य प्रशासनिक निकाय के मध्य(द्विस्तरीय) विभाजन को स्थानीय शासन का संघात्मक रूप कहा जाता है। इसमें स्थानीय शासन को दृष्टिगत रखकर शासन व जनता के बीच निकटता को कायम रखने का प्रयास किया जाता है। जिससे शासन प्रशासन लोकतन्त्र के अनुरूप बना रहे। शासन की शक्तियों का दो स्तरों पर विभाजन होने के कारण जनता को दोनों ही स्तरों पर शासन में सहभागिता प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों स्तरों पर जन भागीदारी लोकप्रिय शासन की स्थापना करती है।

20.5 भारत के विभिन्न राज्यों में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बढ़ते औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के कारण विभिन्न प्रमुख नगरों की जनसंख्या और आकार बढ़ने लगा था। इसलिए नगर प्रशासन को सफल बनाने के लिए इन नगरों के प्रशासन में संघात्मक व्यवस्था लागू की गयी। विभिन्न प्रमुख नगरों में स्थापित इस संघात्मक व्यवस्था का उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है-

20.5.1 बम्बई(मुम्बई)

बम्बई नगर प्रशासन को प्रशासनिक सुविधा व जनता के हितोपयोगी बनाये रखने के लिए 17 क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक क्षेत्र का एक क्षेत्रीय कार्यालय तथा क्षेत्राधिकारी बनाया गया है, जिसको अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सभी नागरिक समस्याओं का समाधान करने तथा नागरिक सुविधाओं हेतु साधन जुटाने के लिए पर्याप्त स्वायत्तता व अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस क्षेत्रीय कार्यालय में क्षेत्राधिकारी के अतिरिक्त निगम के अन्य विभिन्न विभागों जैसे- जल, लोक-स्वास्थ्य, सफाई, प्राथमिक शिक्षा आदि से सम्बन्धित कर्मचारी होते हैं। इन कर्मचारियों को रखने का सबसे प्रमुख उद्देश्य यह है कि, नागरिकों के दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का निस्तारण शीघ्रता पूर्वक किया जा सके। इन कार्यालयों के स्थापना का एक बड़ा लाभ यह है कि जन सामान्य को अपनी समस्याओं या शिकायतों के लिए लम्बी दूरी तय करके निगम के मुख्य कार्यालय तक नहीं जाना पड़ता है, बल्कि इनका समाधान क्षेत्रीय कार्यालय स्तर पर ही कर दिया जाता है। मुम्बई में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण पूर्णतः

प्रशासकीय कार्य है, इसलिए क्षेत्रीय स्तर के नगर प्रशासन से नागरिकों एवं पार्षदों को सम्बन्धित नहीं किया गया है। नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण जहाँ प्रशासन को जनता को नजदीक लाता है, वहीं यह नगर निगम के कार्यभार को भी कम करता है, जिससे नगरीय प्रशासन अधिक कार्यकुशल तरीके से अपने दायित्वों का निर्वहन करने में सफल साबित होता है।

20.5.2 कलकत्ता (कोलकाता)

कलकत्ता में नगर शासन का विकेन्द्रीकरण 'कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम 1951' के द्वारा किया गया है। अर्थात भारत के अन्य नगरों के विपरीत कलकत्ता में नगर शासन का विकेन्द्रीकरण केवल प्रशासकीय कृत्य नहीं है। इस अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण नगर को चार या पांच निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए चार या पाँच पौर समिति स्थापित करने का प्रावधान है, इसलिए वर्तमान में कलकत्ता में बीस पौर समितियां स्थापित हैं। इन समितियों के दायित्वों के निर्वहन के लिए पाँच पार्षदों तथा पुर (नगर क्षेत्र) के निवासियों में से पार्षदों द्वारा निर्वाचित तीन व्यक्तियों को शामिल किया जाता है। इन समितियों के द्वारा उन समस्त दायित्वों या कर्तव्यों का निर्वहन किया जाता है जो निगम द्वारा इनको प्रदत्त की जाती हैं। ये पौर समितियां किसी मद पर एक हजार रूपये से अधिक खर्च नहीं कर सकती हैं। इनके द्वारा सड़कों का नामकरण, स्नान व धुलाई के लिए स्थान एवं सन्तरण कुण्डों की व्यवस्था, वृक्षारोपण व उनका अनुरक्षण, उद्यानों एवं क्रीड़ा स्थलों का निर्माण, उद्यानों तथा सार्वजनिक स्थानों पर संगीत की व्यवस्था, खेल के सामान की आपूर्ति तथा अनुरक्षण की व्यवस्था, सफाई एवं प्रकाश का प्रबन्ध तथा जन्म-मरण के पंजीकरण के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति आदि कार्यों को किया जाता है। यद्यपि पौर समिति का अपना कोई क्षेत्र स्तरीय प्रशासनिक अंग नहीं होता है, इसलिए इसको अपने निर्णयों के क्रियान्वयन के लिए नगर निगम के कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

20.5.3 मद्रास (चेन्नई)

मद्रास में प्रशासनिक व राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के लिए 'मद्रास नगरपालिका अधिनियम 1919' को 1961 में संशोधित किया गया। इस संशोधन द्वारा सम्पूर्ण नगर को दस मण्डलों में विभाजित कर दिया गया है। प्रत्येक मण्डल में दस नगर निर्वाचन क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नगर 100 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित है, जिसके लिए 100 पार्षदों का चुनाव किया जाता है। प्रत्येक मण्डल में एक कार्यालय स्थापित होता है, जिसका मुखिया सहायक नगरपाल अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त इन कार्यालयों में तकनीकी, अभियन्त्रण और प्रशासनिक कर्मचारी होते हैं जो मण्डल स्तर के स्थानीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। मण्डलीय कार्यालय के प्रमुख सहायक नगरपाल तथा तकनीकी एवं अभियन्त्रण कर्मचारियों को नगरपाल द्वारा अनेक शक्तियां प्रदान की जाती है। जैसे- स्वास्थ्य, सफाई, तकनीकी व अभियन्त्रण आदि।

मद्रास नगर प्रशासन की शक्तियों का मण्डल स्तर पर विकेन्द्रीकरण करने के अलावा एक केन्द्रीय समिति का भी प्रावधान किया गया है। जिसमें निगम का अध्यक्ष, उप-निगमाध्यक्ष तथा प्रत्येक मण्डल समिति द्वारा अपने में से निर्वाचित एक सदस्य सम्मिलित होता है। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि निर्वाचित सदस्य मण्डल समिति का अध्यक्ष न हो। संविधि द्वारा ही केन्द्रीय समिति तथा मण्डल समितियों के शक्तियों का विभाजन कर दिया गया है।

20.5.4 दिल्ली

दिल्ली में सन् 1957 ई0 में नगर निगम की स्थापना से पूर्व आठ नगरपालिकाएं कार्यरत थीं। जिन्हें नगर निगम की स्थापना के बाद भी क्षेत्रीय कार्यालय के रूप में बने रहने दिया गया। नगर निगम की स्थापना के परिणामस्वरूप दिल्ली में नगर प्रशासन के केन्द्रीयकरण का सूत्रपात हुआ। परिणाम स्वरूप नगर निगम का कार्य-क्षेत्र बढ़ने के कारण जन समस्याओं से सम्बन्धित कार्यों में अनावश्यक विलम्ब होने लगा, इसलिए दिल्ली नगर प्रशासन के व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 1962 ई0 में एक समिति की नियुक्ति की गयी। समिति को मुख्य रूप से इस बात पर विचार करना था कि ''निगम के कार्यों के परिचालन में विकेन्द्रीकरण को कैसे प्रभावी बनाया जाय जिससे

कार्य को शीघ्रातिशीघ्र निपटाया जा सके।'' समिति ने अपने प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया कि विकेन्द्रीकरण के द्वारा कुछ शक्तियां और कार्य उन क्षेत्रीय समितियों को सौंप दिये जाने चाहिए जो पहले से विद्यमान है। स्वयं समिति ने लिखा था कि ''...........क्षेत्रों में लेखांकन की कोई व्यवस्था नहीं है, क्योंकि लेखा विभाग पूर्णतः केन्द्रीकृत है। इसी प्रकार शिक्षा विभाग भी केन्द्रीकृत है। पूर्ति के मामले में भी क्षेत्र बहुत कुछ मुख्यालय पर निर्भर है। निर्माणशालाओं हेतु लाइसेंस के आवेदन पत्रों को मुख्यालय ही स्वीकार करता तथा निपटाता है, भवनों के लिए आवेदन-पत्रों को स्वीकार तो मुख्यालय में किया जाता है, किन्तु उनकी छानबीन क्षेत्रों में होती है। क्षेत्रीय कार्यालयों को लगभग सभी मामलों में मुख्यालय में स्थित विभागों के प्रवर अधिकारियों पर आश्रित रहना पड़ता है। क्षेत्रीय स्तर पर तालमेल तथा क्षेत्रीय अधिकारी के साथ सम्पर्क बहुत ही क्षीण है।''

समिति के द्वारा नगर प्रशासन के विकेन्द्रीकरण को दृष्टिगत रखकर क्षेत्रीय कार्यालयों को निम्नलिखित कार्यों को करने का अधिकार एवं शक्तियां देने की संस्तुति की गयी

1. नागरिक सेवाओं के अनुरक्षण से सम्बन्धित कार्य। जैसे- जल का वितरण, नगर क्षेत्र की सफाई, शाखा मलनालियों का रखरखाव, निगम के भवनों, सड़कों तथा उद्यानों का अनुरक्षण आदि।
2. क्षेत्रीय कार्यालयों को ही नगरपालिका से सम्बन्धित दिन-प्रतिदिन की स्थानीय सेवाओं का अनुरक्षण। जैसे- बाल कल्याण केन्द्र, टीकाकरण केन्द्र, औषधालय, छोटे चिकित्सालय, पाठशालाएं, सामाजिक एवं शारीरिक शिक्षा के केन्द्र इत्यादि।
3. निर्माणशालाओं, भोजन की दुकानों तथा भण्डारों के लिए लाइसेंस देना।
4. अनुरक्षण कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक सामग्री का समुचित भण्डार रखना।
5. नरपालिका करों, उपकरों, किरायों एवं शुल्कों का निर्धारण व वसूली।
6. अतिक्रमण (अनाधिकार प्रवेश) को हटाना।
7. क्षेत्रीय कार्यालय में कार्यरत कर्मचारियों के सेवा अभिलेख का अनुरक्षण तथा उनके वेतन का भुगतान।
8. वे सभी कार्य जो क्षेत्रीय स्तर पर सुविधा पूर्ण तरीके से किये जा सके और जिनके लिए उच्च अधिकारियों द्वारा शक्तियों का प्रयोग या नीति निर्धारित करने की आवश्यकता न हो।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि क्षेत्र समिति का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वह अपने क्षेत्रान्तर्गत समस्त नागरिक सुविधाऐं जुटाये। इसके लिए क्षेत्रीय कार्यालय में एक सहायक नगरपाल तथा उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए भवन निर्माण, जलापूर्ति, जल निकास, स्वास्थ्य, प्रसूति एवं बाल कल्याण, प्रकाश, शिक्षा, कर, लेखा, उद्यान, लाइसेंस आदि से सम्बन्धित कर्मचारी भी होते हैं। जिनकी चरित पंजिका भी सहायक नगरपाल द्वारा ही लिखी जाती है।

दिल्ली नगर निगम में प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के अतिरिक्त राजनीतिक विकेन्द्रीकरण भी किया गया है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय के लिए एक समिति स्थापित की गयी है। जिसमें उस क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित सभी नगर निर्वाचन क्षेत्रों (म्यूनिसिपल बार्डों) के पार्षद सम्मिलित होते हैं। क्षेत्रीय सहायक नगरपाल इस समिति का सचिव होता है। इस समिति को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं-

- क्षेत्र के बजट प्रस्ताव पर विचार करना तथा उसे मुख्यालय को अग्रप्रेषित करना।
- वह क्षेत्र के संग्रहण (वसूली) प्राप्ति तथा व्यय सम्बन्धी लेखपत्रों पर विचार करती है।
- वह क्षेत्र में चिकित्सा तथा शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना, नालियों, शौचालयों तथा हाटों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रस्तावों पर विचार करना तथा उपयुक्त अधिकारियों के विचार हेतु संस्तुतियां करना।

- वह अपने क्षेत्राधिकार में स्थापित विभिन्न विभागों के क्रियावन्वयन की मासिक तथा त्रैमासिक रिपोर्टो पर विचार करती है तथा निर्णय लेती है या आवश्यकतानुसार उपयुक्त अधिकारियों के विचार हेतु संस्तुतियांकरती है।
- अपने कार्यक्षेत्र में स्थित संस्थाओं को अनुदान देने के सम्बन्ध में निगम के अनुदान समिति को परामर्श देना।
- किसी ऐसे विषय की जांच करना जिसे निगम ने उसके पास भेजा है और उसके सम्बन्ध में रिपोर्ट व सलाह देना।
- नगरपाल को दिल्ली नगरपालिका अधिनियम के प्रशासन से सम्बन्धित किसी मामले की रिपोर्ट, योजनाएं, प्राक्कलन, लेखा विवरण तथा योजना आदि प्रस्तुत करने का आदेश देना है। किन्तु दिल्ली विद्युत पूर्ति व्यवसाय तथा दिल्ली परिवहन व्यवसाय पर यह नियम लागू नहीं होता है, अर्थात ये दोनों अपवाद हैं।
- क्षेत्रीय सहायक नगरपाल द्वारा संविधि के तहत प्रदत्त अधिकार के आधार पर सम्पत्ति के निबटान या पट्टे पर दी जाने वाली भूमि के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाही के सम्बन्ध में प्राप्त रिपोर्ट पर विचार करना।
- क्षेत्र में 25 हजार रूपये तक की लागत से सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के प्राक्कलन व योजनाओं को स्वीकृत करना, बशर्ते उनके लिए अधिकृत बजट में प्रावधान किया गया हो। इन कार्यों में बिजली, परिवहन, जल व्यवस्था तथा मल निकास सम्बन्धी कार्य सम्मिलित नहीं होंगे।

दिल्ली नगर निगम द्वारा क्षेत्रीय सहायक नगरपालों के अधीन काम करने वाले नौ क्षेत्रों को तीन इकाईयों में संगठित किया गया है। प्रत्येक इकाई में तीन-तीन क्षेत्रीय कार्यालय सम्मिलित किये गये हैं। प्रत्येक इकाई को एक उप-नगरपाल के अध्यक्षता में रखा गया है। इस उपनगरपाल को अपने अधीन स्थापित तीनों क्षेत्रीय कार्यालयों का व्यापक निरीक्षण तथा परिवीक्षण करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

20.5.5 हैदराबाद

हैदराबाद में नगर प्रशासन को विकेन्द्रित करने के लिए नगर निगम को छः मण्डलों (हलकों) में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मण्डल कार्यालय एक सहायक नगरपाल के नियन्त्रण में कार्य करता है। प्रत्येक मण्डल कार्यालय में एक सहायक अभियन्ता, सहायक स्वास्थ्य चिकित्साधिकारी तथा सहायक नियोजन अधिकारी होता है। इन सभी अधिकारियों को नागरिक सेवाओं की व्यवस्था एवं उनके अनुरक्षण का अधिकार दिया गया है। ये तकनीकी अधिकारी अपने विभागाध्यक्षों के निमन्त्रण व निर्देशन में कार्य करते हैं। हैदराबाद में नगरीय शासन का विकेन्द्रीकरण पूर्णरूपेण प्रशासकीय कार्य है, इसलिए मण्डलीय स्तर के नगर प्रशासन में जनता को भागीदार नहीं बनाया गया है।

20.6 स्थानीय शासन के संघात्मक व्यवस्था के दोष

भारत में स्थानीय शासन की जो द्विस्तरीय प्रणाली (संघात्मक व्यवस्था) स्थापित की गयी है स्वाभाविक रूप से उसमें भी कुछ ऐसे दोष देखने को मिलते है, जो प्रायः प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के प्रत्येक योजना में देखने को मिलते है। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1. शक्तियों के इस विकेन्द्रीकरण में नागरिकों की भूमिका नाममात्र की या नगण्य है।
2. विकेन्द्रित शक्तियों एवं उनके क्रियान्वयन पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि क्षेत्रीय या निम्न स्तर की संस्थाए केवल संस्तुति करने वाली निकाय मात्र बनकर रह गयी है।

3. क्षेत्रीय अधिकारी तथा निगम के कर्मचारियों में भी सम्बन्ध तनावपूर्ण होता है, क्योंकि तकनीकी व वृत्तिक कर्मचारी निगम के मुख्यालय में विराजमान अपने-अपने विभागाध्यक्षों के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में काम करते हैं और क्षेत्रीय अधिकारी (सहायक नगरपाल) से कहा जाता है कि वह उन्हें काम बतलाये और सेवा के लिए उत्प्रेरित करें, जबकि उन पर उसका कोई निश्चित प्रशासकीय नियन्त्रण नहीं होता है। इसलिए निगम के कर्मचारी क्षेत्रीय अधिकारियों की परवाह नहीं करते हैं, जिससे स्थानीय निकाय के कार्यों व दायित्वों के निर्वहन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।
4. इस संघीय व्यवस्था में क्षेत्रीय स्तर पर कार्यालयों व कर्मचारियों की व्यवस्था निगम के व्यय को अनिवार्य रूप से बढ़ा देती है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रीय कर्मचारियों के विरूद्ध आम शिकायत यह भी है कि वे क्षेत्रीय कार्यालय में उपस्थित रहने के बजाय मुख्यालय के अपने अधिकारियों की गणेश परिक्रमा (खुशामद) में लगे रहते हैं।
5. इस विकेन्द्रीकरण में कभी-कभी नागरिकों का कोई छोटा सा गुट क्षेत्रीय कार्यालय के कर्मचायिों से सांठगाठ करके क्षेत्रीय प्रशासन पर वर्चस्व स्थापित कर लेता है। इस प्रकार यह सम्भावना बढ़ जाती है कि वह अपने हितों को पूरा करने लगे और सामाजिक हितों को क्षति पहुँचाये। ऐसी स्थित नगर प्रशासन के सुचारु संचालन में व्यवधान उत्पन्न करने लगती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सत्ता अथवा शक्ति का विकेन्द्रीकरण चाहे वह राजनीतिक हो या प्रशासकीय, उसमें गुण और दोष दोनों होते हैं, इसलिए उसका अंधानुकरण नहीं किया जाना चाहिए। नगरीय शासन में एकरूपता की आवश्यकता होती है, जिसके लिए केन्द्रीकृत शासन होता है, जबकि क्षेत्रीय या स्थानीय समस्याओं के शीघ्र निस्तारण तथा शासन को जनता के निकट बनाये रखने के लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक होता है। अतः केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण के बीच सामंजस्य का होना आवश्यक है, जिससे प्रशासन में एकरूपता के साथ-साथ उसमें लोकतान्त्रिक मूल्यों का समावेश किया जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. क्या मानव प्रकृति से आत्म-केन्द्रित होता है?
2. संघात्मक शासन में शक्तियों का विभाजन कितने स्तरों पर होता है?
3. स्थानीय शासन में शक्तियों का विभाजन किस शासन के अनुरूप होता है?
4. स्थानीय शासन के संघात्मक रूप में नगरीय शासन की शक्तियां किसमें निहित होती है?
5. स्थानीय शासन की अवधारणा किस सिद्धान्त पर आधारित है?
6. मुम्बई नगर निगम के प्रशासन को कितने क्षेत्रों में विभाजित कर प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण किया गया है?
7. कलकत्ता नगर शासन का विकेन्द्रीकरण किस अधिनियम के द्वारा किया गया है?
8. मद्रास में राजनीतिक व प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के लिए 'मद्रास नगरपालिका अधिनियम 1919' को कब संशोधित किया गया था?
9. दिल्ली में 1957 ई0 में नगर निगम की स्थापना के पूर्व कितनी नगरपालिकाएं कार्यरत थीं?
10. नगर शासन के क्षेत्रीय कार्यालय का मुख्य अधिकारी क्या कहलाता है?

20.7 सारांश

वर्तमान में औद्योगीकरण व मानव जीवन की बढ़ती हुई भौतिक आवश्यताओं ने लोगों को चुम्बक की तरह नगरों की ओर आकर्षित किया है। जिसके कारण कस्बा नगरों में तथा नगर महानगर में परिवर्तित होने लगे हैं। महानगरों का भी आकार बढ़ा है, इसलिए अकेले नगर निगम कार्यालय के लिए यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह जनता की समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इसलिए कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली व हैदराबाद में नगरीय

शासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप स्थापित किया गया है। विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप देने के लिए नगर शासन को नगर निगम के मुख्य कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच विभाजित कर दिया गया है। इससे नगरीय शासन का द्विस्तरीय ढ़ाँचा स्थापित हो गया है। कुछ नगरों में प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण ही किया गया है तो कुछ में प्रशासकीय के साथ-साथ राजनीतिक विकेन्द्रीकरण कर क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यों में जनता को भी सहभागी बनाने का प्रयास किया गया है।

20.8 शब्दावली

संघात्मक- एक ऐसा ढ़ाँचा जहाँ राज्य या निचले स्तर की संस्था अपनी स्वायत्तता के साथ केन्द्र या उच्च स्तर की संस्था का हिस्सा हो, भौतिक- सांसारिक या दृष्य जगत से सम्बन्धित, प्रत्यायोजित- किसी उच्च संस्था या अधिकारी द्वारा अपनी शक्तियों का अधीनस्थों को हस्तान्तरण, कर्तव्य- जो करने योग्य हो या किया जाना चाहिए, सामाजिक- समाज का या समाज के हित में, आत्मकेन्द्रित- जो सिर्फ अपने बारे में सोचे, स्थानीय- जो किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित हो, समन्वय- दो विरोधी व्यवस्थाओं के मध्य का मार्ग या सहयोग, प्रशासकीय- प्रशासन से सम्बद्ध, राजनीतिक- राजनीति से सम्बद्ध, पार्षद- नगर निगम या नगरपालिका के निर्वाचन क्षेत्र (वार्ड) का निर्वाचित प्रतिनिधि

20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हाँ, **2.** दो स्तरों पर, **3.** प्रजातन्त्र, **4.** लघु और मुख्य प्रशासनिक इकाई में, **5.** स्थानीयता, **6.** 17 क्षेत्रों में, **7.** कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम 1951, **8.** 1961 ई0 में, 8. आठ, **10.** सहायक नगरपाल

20.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
2. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

20.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
2. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में स्थानीय प्रशासन के संघात्मक रूप का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।
2. भारत के विभिन्न प्रमुख नगरों में नगर प्रशासन के संघात्मक रूप या नगरीय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर प्रकाश डालिये।
3. दिल्ली नगर निगम में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का विस्तृत उल्लेख कीजिये।

इकाई- 21 नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण

इकाई की संरचना

21.0 प्रस्तावना
21.1 उद्देश्य
21.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति
21.3 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता
21.4 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की विधियाँ
    21.4.1 संस्थागत नियंत्रण
    21.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण
    21.4.3 तकनीकी नियंत्रण
    21.4.4 वित्तीय नियंत्रण
21.5 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं
21.6 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन
21.7 सारांश
21.8 शब्दावली
21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
21.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.12 निबंधात्मक प्रश्न

21.0 प्रस्तावना

स्थानीय शासन राज्य सरकार की सृष्टि है। राज्य के व्यवस्थापिका या विधायिका द्वारा पारित अधिनियमों के आधार पर इसका निर्माण किया जाता है। स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, अपितु केन्द्रीय या राज सरकार का ही एक आवश्यक और अभिन्न अंग होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय शासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल नागरिकों को प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, अपितु उन्हें शासन करने का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य सरकार के द्वारा ही स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय, समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनर्रावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत नियंत्रण का अर्थ, औचित्य एवं भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ, नियंत्रण की सीमाएं एवं नियंत्रण का मूल्यांकन पर भी विचार-विमर्श किया जायेगा।

21.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति के बारे में ज्ञान कर सकेंगे।
- साथ ही भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियों की व्याख्या करने में सक्षम हो पायेंगे तथा
- भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण कीसीमाओं का सविस्तार वर्णन कर पायेंगे।

21.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

नियन्त्रण प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। नियंत्रण का उद्देश्य ऐसे तंत्र की स्थापना करना होता है जो समय-समय पर अधीनस्थों के वास्तविक व्यवहार का निरीक्षण करता रहे और उसके आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करे। पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण प्रशासन एवं प्रबन्ध न को लोकतान्त्रिक रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। नियंत्रण के अलावा प्रबन्धन के अन्य कार्य हैं- नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, निर्देशन आदि। प्रबन्धन में नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि यह गलतियाँ सुधारने तथा सुधारात्मक कदम उठाने में मदद करता है। आधुनिक संकल्पना यह है कि नियंत्रण, भविष्य को देखने जैसा कार्य है जबकि पहले नियंत्रण को गलती को सुधारने वाला कार्य समझा जाता था। प्रबन्धन में नियन्त्रण का अर्थ है- मानक घोषित करना, वास्तविक कार्यक्षमता को मापना तथा सुधारात्मक कार्यवाही करना। नियंत्रण संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन कार्य के निष्पादन को निर्देशित करता है। नियंत्रण कार्य में निष्पादन के स्तर निर्धारित किए जाते हैं, वर्तमान निष्पादन को मापा जाता है। इसका पूर्वनिर्धारित स्तरों से मिलान किया जाता है और विचलन की स्थिति में सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। नियंत्रण का क्षेत्र उस क्षमता या परिधि को प्रदर्शित करता है, जो किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी में होती है। अर्थात एक अधिकारी एक समय में कितने अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। इसे प्राय: 'नियंत्रण विस्तृति', 'प्रबन्ध का क्षेत्र', 'पर्यवेक्षण का क्षेत्र' या 'सत्ता का क्षेत्र' भी कहा जाता है। नियन्त्रण का क्षेत्र, संगठन की संरचना, उद्देश्य, कार्य प्रकृति, पर्यवेक्षक की क्षमता तथा अधीनस्थों के सहयोग इत्यादि पर निर्भर करता है।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-

निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है।

नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिएनियंत्रण आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेहतर सम्भव है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय निकायों का बहुआयामी कार्य, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

21.3 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यक्ता

शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित अनुच्छेदों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(पी) से 243(जेडजी) तक किया गया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित संस्थाओं के तीन प्रकार हैं- नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम। जनसंख्या के आधार पर ये तीन वर्ग हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अनुच्छेद- 243 थ, ने प्रत्येक राज्य के लिए ऐसी इकाइयां गठित करना अनिवार्य कर दिया है। नगरीय संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की बारहवीं अनुसूची मेंनगरीय संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। 74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राज्य विधानमंडल द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान किये जाएगें जो स्वशासन से जुड़ी संस्थाओं को उनके कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक हों। फलस्वरूप 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243 ब, के अनुसार 18 विषय हैं, जिन पर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है ।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है । केन्द्र अथवा राज्य जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय, समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्रअथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय संस्थाओं का बहुआयामी कार्य, निरंकुश

होने की आशंका, अनुदानों का सही उपयोग, विविध सेवाओं पर अंकुश, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण हैं जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है। जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेह्तर सम्भव है।

21.4 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की विधियाँ

राज्य सरकारों द्वारा नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। विविध अधिनियमों द्वारा स्थापित होने के कारण नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण व्यवस्था में एकरूपता का अभाव है, फिर भी कतिपय आयामों में समानता है। सभी राज्यों में नियंत्रण का आधार निर्मित अधिनियम है, वहीं नियंत्रण का दायित्व सरकार सरकार के कार्यकारी विभागों पर होता है। नगरीय निकायों पर नियंत्रण इसकी विविध इकाईयों के परिप्रेक्ष्य में ज्यादा महत्वपूर्ण है। अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता के कारण नगरीय निकायों पर नियंत्रण आवश्यक है।

भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

21.4.1 संस्थागत नियंत्रण

नगरीय व्यवस्था पर विविध संस्थाएं भिन्न-भिन्न माध्यमों से नियंत्रण रखती है। इनमें व्यस्थापिका की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। स्थापना से लेकर भंग करने तक का अधिकार विधायिका को प्राप्त है। नगरीय निकायों के द्वारा किये जानेवाले कार्यों एवं निर्णयों पर केन्द्रीय या राज्य सरकार के नियमों एवं अधिनियमों का पर्याप्त प्रभाव रहता है और विरोध की दशा में केन्द्र या राज्य सरकार के नियमों को प्राथमिकता दी जाती है। संस्थागत नियंत्रण के माध्यम निम्न हैं-

1. **व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण-** सामान्यतः नगरीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय सरकारों की विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में नगरीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। अधिनियमों के द्वारा स्थानीय नगरीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। नगरीय स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात् स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। नगरीय स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मंडलों में निहित है। इस प्रकार अंतिम सत्ता व्यवस्थापिका में ही निहित है।
2. **आकार, संरचना एवं चयन सम्बन्धी नियंत्रण-** स्थानीय शासन की संरचना उसके आकार एवं चयन तथा शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। नगर पंचायत, नगर

पालिका परिषद् तथा नगर निगम के आकार राज्य सरकार के दिशा निर्देशों के अनुरूप होता है। निकायों में सदस्यों की संख्या के निर्धारण का अधिकार भी राज्य सरकार के पास है।

3. **कार्य सूची पर नियंत्रण-** शहरी निकायों के विविध स्तरों पर कार्य सूची का निर्धारण राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप हीं समितियों का संचालन भी होता है।
4. **कर्मचारियों पर नियंत्रण,चयन, भर्ती, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण, सेवा शर्ते-** नगरीय संस्थाओं के विविध स्तरीय कर्मचारियों का चयन, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्तों का निर्धारण राज्य सरकार करती है। उदाहरण के लिए नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम के प्रशासकों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। साथ ही जिन कार्यों को निकायों से संदर्भित किया है उन विभागों के विकास खंड या जिला स्तरीय अधिकारी नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम के साथ कार्य करते हैं। नगर पंचायत अधिकारी/अधिशासी अधिकारी राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो सामान्यतः राज्य असैनिक या सामान्य सेवा (पी0सी0एस0) संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। वह प्रशासनिक कार्यों को करता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। वहीं आयुक्त नगर निगम का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है।
5. **कागज, अभिलेखों एवं संपत्ति पर नियंत्रण-** नगरीय संस्थाओं के समस्त अभिलेखों एवं संपत्ति पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है। राज्य सरकार कभी भी अभिलेख मांग सकता है और इसकी जांच भी कर सकता है।

21.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण संरचना

प्रशासनिक नियंत्रण का उद्देश्य ऐसी नीति और निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोकना है जो सम्बन्धित संस्था के प्राथमिक लक्ष्य और उद्देश्य के विरुद्ध हो। प्रशासनिक नियंत्रण मुख्यतः गैरसरकारी सदस्यों के विरुद्ध होता है। यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। यह नियंत्रण विविध माध्यमों द्वारा होता है, जो निम्नलिखित हैं-

1. **निलंबन एवं भंग करने का अधिकार** इस अधिनियम में प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है, किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है। परन्तु विघटन के पूर्व नगरपालिका को उचित सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। तत्समय प्रवृत विधि में किए गए किसी संशोधन का प्रभाव किसी स्तर पर किसी नगरपालिका के विघटित करने का नहीं होगा जो ऐसे संशोधन के पूर्व कार्य कर रही है जब तक कि प्रावधानों के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि का अवसान नहीं हो जाता है। साथ ही शक्ति और संस्था के दुरुपयोग होने पर राज्य सरकार संस्था के विविध इकाईयों को निलंबित कर सकती है अथवा भंग भी कर सकती है। प्रत्येक इकाई का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है, किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।
2. **प्रस्तावों का निलंबन एवं निरस्तीकरण-** नगरीय संस्थाओं के प्रस्तावों पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार राज्य सरकार को है। वह प्रस्तावों को निलंबित अथवा निरस्त भी कर सकती है। नगरीय संस्थाओं के विविध स्तरों पर प्रस्तावों के सम्बन्ध में फैसला राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही अग्रेतर कार्यवाही होती है।
3. **सदस्यों एवं पदाधिकारियों को पदमुक्त करना-** यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है।

4. **अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन-** अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन भी राज्य सरकार द्वारा ही होता है। सम्बन्धित संस्थाएं अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके जन प्रतिनिधियों को पदच्युत कर सकती है।
5. **सामान्य निर्देशों का प्रसारण-** अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन से सम्बन्धित सामान्य निर्देश राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाता है। और भी स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में राज्य सरकार कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है।
6. **निरीक्षण एवं जांच-** निरीक्षण, दौरे एवं व्यक्तिगत भ्रमण या परियोजना की गतिविधियों का नियमित रूप से देखरेख करना ही 'निरीक्षण' है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नगरीय निकाय के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी एकत्रित किया जाता है। निरीक्षण के द्वारा प्राप्त जानकारी का सही विवरण करने से, यह जानकारी परियोजना के उपलब्धियों को सुधारने के लिए आगे निर्णय लेने में काम आती है।

21.4.3 तकनीकी नियंत्रण

स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारीयों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार विविध तकनीकी नियंत्रण के माध्यमों का भी उपयोग करती है, जो निम्न हैं-

1. **योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन-** इस प्रकार, जो विकास योजनाएं बनाई जाती हैं वे राज्य सरकार को भेजी जायेंगी। अतः शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर अत्यधिक उत्तरदायित्व हैं। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। राज्य सरकार विविध योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन द्वारा भी इन पर नियंत्रण रखती है।
2. **सामयिक कर्मचारी बैठक-** सामयिक कर्मचारी बैठक द्वारा भी राज्य सरकार इन पर नियंत्रण रखती है। बैठकों का कार्य वृत्त, उनकी कार्यवाही आदि राज्य सरकार द्वारा अंतिम तौर पर अनुमोदित होती है। समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है।
3. **प्रतिवेदन की मांग-** प्रतिवेदन की मांग राज्य सरकार द्वारा की जा सकती है। सरकार इस सम्बन्ध में उचित निर्देश देने का अधिकार रखती है।
4. **नगरीय निकाय एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति-** समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। नगरीय निकाय एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति राज्य सरकार द्वारा इन पर नियंत्रण का परिचायक है।
5. **तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन से सम्बन्ध रखना-** नियंत्रण व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन का भी पूरा ख्याल रखती है।

21.4.4 वित्तीय नियंत्रण

लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही

पनपती है। 74वें संशोधन के पूर्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे, परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे, क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती, यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल एक सीमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। राज्य सरकार नगरीय संस्थाओं पर विविध माध्यमों से वित्तीय नियंत्रण रखती है, इनमें प्रमुख हैं-

1. **आय की व्यवस्था-** नगरीय निकायों के पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग का गठन करता है, जो पंचायतों के साथ-साथ नगर पालिकाओं के लिए भी होगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागु करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अलावा वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ती कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। साथ ही केन्द्रीय वित्त आयोग भी राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरुरी उपाय सुझाएगा।
2. **बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख-** स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है, इसलिए राज्य सरकार इन्हें वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है तथा मानकों के अनुसार इनसे कार्य की अपेक्षा भी करती है। राज्य सरकार इसलिए बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख भी करती हैं।
3. **बजट के सिद्धान्तों का उल्लेख-** नगरीय व्यवस्था में बजट की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। बजट एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय का विवरण है। बजट उपलब्ध संसाधनों के आकलन करने की प्रक्रिया है तथा पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर संगठन के विभिन्न गतिविधियों के लिए आवंटित करने की प्रक्रिया भी है। यह संसाधनों के आवंटन में प्रतिस्पर्धा की प्राथमिकताओं, निष्पक्षता तथा सामाजिक न्याय के मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। अपनी वित्तीय भूमिकाओं को छोड़कर बजट द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं। बजट, नियंत्रण के रूप में कार्य करता है तथा यह विभिन्न विभागों में कार्यों के मूल्यांकन का माध्यम है। यदि कोई विभाग लक्ष्य से दूर है तो इसे बजटीय प्रस्तावों में सूचित किया जा सकता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। बजटीय योजना तथा कार्यान्वयन विभिन्न विभागों को एक साथ लाने में मदद करते है तथा उनमे समन्वय स्थापित करते हैं। यह धन का सार्वजनिक उत्तरदायित्व तय करता है। यह सरकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक योजनाबद्ध दृष्टिकोण है, जो वृहद् संसाधनों को संगठित करने की मांग करता है
4. **लेखा-** लेखा परीक्षा का उद्देश्य यह होता है कि लेखा परीक्षा के बाद व्यक्ति/संस्था/तन्त्र/प्रक्रिया के बार में एक राय या विचार व्यक्त किया जाय। लेखांकन का उद्देश्य तभी सफल होता हैं जबकि वे विश्वसनीय हो।

लेखांकन विवरणों की विश्व सनीयता को अंकेक्षण सुनिश्चित करता हैं आज के आर्थिक परिवेश में, सूचना व जवाबदेही की भूमिका पहले से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। लेखा परीक्षा यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि दी गयी सूचना वैध एवं विश्वसनीय है। इससे उस तन्त्र के आन्तरिक नियन्त्रण का भी मूल्यांकन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त संविधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधानमंडल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा।

5. **अंकेक्षण-** किसी भी संस्था के वितीय विवरणों/वित्तीय सूचनाओं की स्वतंत्र जाँच करके उस पर राय व्यक्त करना अंकेक्षण कहलाता है। किसी भी व्यवसाय के जीवित रहने के लिए उसकी कार्यक्षमता बढ़ाने तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए लेखांकन अनिवार्य है। अंकेक्षण का सबसे व्यापक अर्थ किसी व्यक्ति, संस्था, तन्त्र, प्रक्रिया, परियोजना या उत्पाद का मूल्यांकन करना है। अंकेक्षण प्रक्रिया में वे सभी कार्य आते हैं जो अंकेक्षण सिद्धान्तों के अन्तर्गत किसी जाँच के दौरान अपनाये जाते है। अंकेक्षण मानदण्डों के अनुसार क्रियाएं निश्चित की जाती हैं। अंकेक्षण प्रविधि में उन उपायों को सम्मिलित करते हैं, जिन्हें लेखा परीक्षण के लिए आवश्यक साक्ष्य के रूप में एकत्रित करके लेखा पुस्तकों में लिखे व्यवहारों की शुद्धता जाँच के लिए अपनाते हैं। इसमें भौतिक परीक्षण, पुष्टिकरण, पुर्नगणना, मूल प्रपत्रों की जाँच, रिकार्ड से मिलान, सहायक रिकार्ड की जाँच, पूछताछ करना, क्रमानुसार जाँच करना, सम्बन्धित सूचना से किसी मद का सह-सम्बन्ध बैठाना, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण आदि शामिल हैं।

21.5 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

भारत 29 राज्यों और सात केन्द्र शासित प्रदेशों का कार्यक्षेत्र है। बढ़ती आबादी एवं भारत के विभिन्न शहरों में शहरीकरण के साथ, नगर निगमों की स्थापना आवश्यक सामुदायिक सेवाएं, जैसे- स्वास्थ्य केन्द्र, शैक्षणिक संस्थान और आवास, संपत्ति कर जैसे अन्य मामलों में सहायता प्रदान करने के लिए की गई है। आम आदमी के लाभ के लिए स्थापित की गई विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी निष्पादन और एक बेहतर एवं योजनाबद्ध शहर के निर्माण के लिए नगर निगम राज्य सरकार के साथ हाथ से हाथ मिलाकर कार्य करता है।

नगरीय निकायों पर नियंत्रण के विविध माध्यमों की सूची काफी लम्बी और प्रभावोत्पादक है, तथापि व्यवस्था में नियंत्रण के ये साधन कार्यकुशलता एवं प्रभाववांछित स्तर तक नहीं छोड़ पाए हैं सादिक अली समिति और अन्य ने भी इस ओर इशारा किया है। नगरीय संस्थाओं पर न की सीमायें निम्नवत हैं-

1. नियंत्रण के साधन नकारात्मक प्रतीत होते है । नियंत्रण का उद्देश्य समुचित मार्ग दर्शन ना होकर दंडात्मक लगता है।
2. बार-बार शक्तियों का उपयोग करने से सार्वजानिक धन एवं शक्ति का दुरूपयोग होता है और नगरीय निकायों पर से जनता का विश्वास उठने लगता है।
3. नियंत्रण और पर्यवेक्षण की शक्तियां राज्य स्तर पर केंद्रीकृत हो गयी हैं। अतः तुरंत कार्यवाही करना सम्भव नहीं हो पाता।
4. कई बार सरकारें अपने वैधानिक अधिकारों का उपयोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करती है, जिससे पक्षपात प्रदर्शित होता है। लेकिन समयाभाव एवं अनिच्छा के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता।
5. अंकेक्षण की प्रक्रिया भी काफी धीमी और अनुपयोगी सिद्ध हुई है।
6. निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ भी राज्य सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है।

7. दोषी अधिकारियों के खिलाफ कारवाई करने का अधिकार निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिया गया है, जिससे अक्सर इसमे त्रुटि एवं गलत धारणाएं विकसित हो जाती है।
8. नियंत्रण के साधन रचनात्मक एवं सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। अक्सर यह उत्साह ठंडा प्रतीत होता है।
9. राज्य सरकार के स्तर पर ऐसी संस्था का पूर्णतः अभाव है जो नगरीय संस्थाओं की समस्याओं पर विचार कर उचित सलाह दे सके।
10. इसके अतिरिक्त रचनात्मकता की कमी, राज्य सरकार एवं नगरीय निकायों में खीचतान आदि ढेर सारे ऐसे कारण हैं जो नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की सीमाएं दर्शाती हैं।

21.6 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को विविध समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय ना होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है। स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीत्यिों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंत:मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए।

आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है। यह सत्य है कि राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों ना हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए

रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिएनियंत्रण की आवश्यकता होती है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं अपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय संस्थाओं का बहुआयामी कार्य, निरंकुश होने की आशंका,अनुदानों का सही उपयोग, विविध सेवाओं पर अंकुश, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. शासन का कौन सा अंग नगरीय निकायों से सम्बन्धित कानूनों में कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है?
2. संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना किसके द्वारा की जाती है?
3. एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय के विवरण को क्या कहा जाता है?
4. नगरीय संस्थाओं को कितने विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है?
5. नगरपालिका परिषद का कार्यकाल क्या है?

21.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिएनियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। राज्य सरकारों द्वारा नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण ज्यादा महत्वपूर्ण है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनप सकती है। नगरीय निकाय व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। और भी किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

21.8 शब्दावली

संविधान- कानूनों का संग्रह, देश का सर्वोच्च कानून, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, अध्यादेश- विधान मंडल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून, उपबंध- प्रावधान, स्वैच्छिक संगठन- ऐसा गैर-सरकारी संगठन जिसका उद्देश्य समाज सेवा हो

21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवस्थापिका, **2.** राज्य सरकार, **3.** बजट, **4.** 18 विषयों पर, **5.** 5 वर्ष

21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।

21.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. अरुण कुमार शर्मा, 1995, भारत में स्थानीय शासन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

21.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. नियंत्रण का अर्थ एवं नियंत्रण की तर्कसंगति का मूल्यांकन कीजिए
2. भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
3. भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का विश्लेषण कीजिए।

इकाई- 22 नगरीय शासन के आय के साधन

इकाई की संरचना

22.0 प्रस्तावना
22.1 उद्देश्य
22.2 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था- एक परिचय
22.3 नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के साधन
22.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया
    22.4.1 बजट के घटक या अवयव
    22.4.2 बजट के प्रकार
22.5 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था एवं राज्य वित्त आयोग की भूमिका
22.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का आकलन
22.7 सारांश
22.8 शब्दावली
22.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
22.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
22.12 निबंधात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र का सैद्धांतिक अर्थ प्रायः जनता केशासन से लगाया जाता है। लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक लोकतान्त्रिक शक्तियों का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचें।

सभ्यता के विकास के साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाईके रूप में अंगीकार किया गया है। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास(बन्दरगाह का नगर) और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। भारत में नगरीय शासन प्रणाली को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा मिल गया।

वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है जिसके बिना प्रशासनिक निर्णयों को क्रियान्वित करना असम्भव है। नगरीय शासन व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। प्रस्तुत इकाई में शहरी स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है।

22.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था के बारे में जान सकेंगे।
- आप नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के स्रोत के बारे में भी जान सकेंगे।
- नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया के बारे में भी आपको ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था में राज्य वित्त आयोग की भूमिका, नगरीय स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण एवं आर्थिक एवंवित्तीय परिदृश्य का आकलन भी कर पाएंगे।

22.2 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था- एक परिचय

लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचे। भारत के सम्पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सत्ता के एकाधिकारवादी प्रवृति की आलोचना करते हुए शासन के लोकतन्त्रीकरण और लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण की बात की थी। गाँधी जी भारत की विविधता और विशालता को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि इस देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसका स्वरुप बहुलवादी और समावेशी हो, इसीलिए उन्होंने हमेशा भारत में शासन के तीसरे स्तर अर्थात स्थानीय स्वशासन की दिशा में बात की।

शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विविध प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी।

भारत में नगरीय शासन प्रणाली को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा मिल गया है। शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में 1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। अधिनियम पर राष्ट्रपति की सहमति 20 अप्रैल 1993 को प्राप्त हुई। भारत सरकार ने 01 जून, 1993 जिस तारीख से उक्त अधिनियम लागू हुआ, को अधिसूचित किया। नगरपालिका सम्बन्धी नया भाग IX-क को अन्य चीजों के अतिरिक्त तीन प्रकार की नगर पालिकाओं को व्यवस्था करने के लिए संविधान में शामिल किया गया है, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में मार्गस्थ के लिए नगर पंचायतें, छोटे आकार के शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद और बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिकाएं, नगरपलिकाओं की नियत अवधि, राज्य निर्वाचन आयोग की नियुक्ति, राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति और मेट्रोपोलिटन एवं जिला योजना समितियों का गठन/राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों ने अपना निर्वाचन आयोग गठित किया है। नगर निकायों का चुनाव झारखंड और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में पूरा किया जा चुका है।

शहरी क्षेत्रों में प्रशासन के लिए निम्नलिखित विविध प्रकार की नगरीय संस्थाओं का गठन किया गया है- नगर निगम, नगरपालिका, नोटिफाईड एरिया समिति, टाउन एरिया समिति, छावनी बोर्ड, टाउनशिप, पोर्ट ट्रस्ट और विशिष्ट उद्देश्य अभिकरण।

नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को मूलभूत नागरिक सुविधाएं, यथा- स्वच्छ पेयजलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण आदि उपलब्ध कराया जाना इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है। नगरीय संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की बारहवीं अनुसूची में नगरीय संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। जब तक नगरीय निकायों के पास वित्त की व्यवस्था नहीं होगी तब तक ये शहरी विकास की योजनाओं को न तो उचित रूप से निर्माण कर पाएंगी और न ही क्रियान्वयन। किसी भी स्थानीय संस्था की सफलता के लिए इसके वित्तीय स्रोतों की मजबूती को सामान्य रूप से स्वीकार किया गया है। 74वें संशोधन के पूर्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे, क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था ।सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल एक सीमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है । अतः यह जरुरी हो जाता है कि ये संस्थाएं स्वयं के साधनों का विकास कर आत्मनिर्भर बनें।

22.3 नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के साधन

लोकतंत्र की संकल्पना को यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में शहरी स्थानीय स्वशासन व्यवस्था एक ठोस कदम है। इस व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वतः ही प्रदान रहती है।

1993 में संविधान में 73वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा 74वें संशोधन द्वारा नगरीय निकायों को अनुच्छेद- 243 के तहत स्थानीय स्वशासन निकाय का संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। इस प्रकार केन्द्र व राज्य के बाद स्थानीय पंचायती राज संस्थाएं संविधान की 11वीं अनुसूची तथा नगरीय निकाय 12वीं अनुसूची में उल्लेखित कार्य संपादन करने वाली तृतीय स्तर की सरकार बन गई है। भारत में नगरीय निकायों को इतिहास ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा 29 सितम्बर 1688 में मद्रास नगर निगम की स्थाना के साथ प्रारम्भ होता है। सन् 1726 में बम्बई और कलकत्ता में नगर निगमों या महापालिकाओं की स्थापना की गई । 1920 तक भारत के हर नगर में नगरपालिका की स्थापना हो चुकी थी। 1992 तक नगर निकाय स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्य कर रहे थे। नगर शब्द का इतना अधिक महत्व है कि उन्नीसवीं सदी तक नगर में रहनेवाला नागरिक कहलाता था। जैसे- कि सिटी का निवासी सिटीजन, नागरिकता अर्थात् सिटीजनशिप, आदि।

73वें एवं 74वें संविधान संशोधन द्वारा प्रशासकीय अधिकार एवं कर्तव्य निर्धारित किए जाने के साथ ही राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या 20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय

स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायत ग्राम पंचायत थी उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सडक़, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई, आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। राज्य वित्त आयोग द्वारा राज्य एवं स्थानीय निकायों के वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या की गई एवं राज्य सरकारों से स्थानीय निकायों को राज्य के करों के हिस्से के अन्तरण व अनुदान का प्रावधान किया गया। केन्द्रीय वित्त आयोग की सिफारिश पर केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदान तथा राज्य वित्त आयोग की सिफारिश पर राज्य सरकार की संचित निधि से कर राजस्व में मिलने वाले हिस्से के कारण पंचायती राज संस्थाओं एवं नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति मजबूत हुई। संविधान की 12वीं अनुसूची के अनुच्छेद- 243, डब्लू के अंतर्गत नगरीय निकायों के जो 18 कार्य बताए गए हैं, राज्य सरकारों का दायित्व बनता है कि इन 18 कार्यों को नगरीय निकायों को सौंपे तथा विभाग के बजट आनुपातिक हिस्सा भी उपलब्ध करवाएं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और अन्य कुछ राज्यों ने नागरिकों की कठिनाइयों को दूर करने एवं करों की वसूली बढ़ाने के लिए नगरीय निकायों द्वारा वसूले जानेवाले करों, उपकरों, को समाप्त कर दिया है वे उसके बदले नगरीय निकायों को क्षतिपूर्ति अनुदान देती हैं, जैसे कि चुंगी, यात्राकर व स्टाम्प ड्यूटी आदि। इससे उनके राजस्व में वृद्धि हुई है।

1993 में 74वें संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में भाग- 9 ए जोड़ा गया है। इस भाग का शीर्षक नगरपालिकाएं है तथा जिसके प्रावधानों का उल्लेख अनुच्छेद- 243- पी से 243- जेड-जी में है। इसके अतिरिक्त संविधान में 12वीं अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद- 243 W से सम्बन्धित है। नगरपालिकाएं संविधान के अधिकार क्षेत्र में आ गई अर्थात इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकारें नई नगरपालिका प्रणाली अपनाने को बाध्य हो गई। इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवन और मजबूती प्रदान करना है ताकि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में अपना कार्य प्रभावी रूप से कर सकें। इस अधिनियम के तहत प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन का प्रावधान है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और मध्यम शहरों के लिए नगर परिषद की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा, जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत संक्रमणशील और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसँख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। वही बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है।

समय-समय पर विविध समितियों ने पंचायती राज व्यवस्था के वित्त के बारे में विश्लेषण किया है। 1951 में नियुक्त स्थानीय वित्त जाँच समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्थानीय संस्थाओं के लिए आरक्षित रखे जाने वाले विभिन्न विषयों पर सुझाव दिए थे। इस समिति का मत था कि गृह कर, आबाद भूमि कर और चूल्हा कर तथा सामान्य स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी उप कर आदि को अनिवार्य घोषित किया जाए। कर जांच आयोग (1953-54) ने आरक्षित रखे जाने वाले करों के बारे में सुझाव दिया कि भूमि एवं भवनों पर कर, सड़कों पर चलने वाले वाहनों पर

कर, पशुओं एवं नौकाओं पर कर, सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर आदि को स्थानीय सरकार का आय का साधन बनाया जाए। इस आयोग के बाद बलवंत राय मेहता समिति (1958) ने भी व्यापक सुझाव दिए।

संविधान के अनुच्छेद- 243 (म) में यह उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद 243 (झ) के अधीन गठित वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और निम्नलिखित विषयों पर अपनी सिफारिशें राज्यपाल को देगा-

उन सिद्धान्तों की बाबत जो निम्नलिखित को शासित करेगें-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के शुद्ध आगमों का नगरपालिकाओं और राज्यों के बीच वितरण जो इस भाग के अधीन उनके बीच किए जाने हैं तथा सभी स्तरों पर ऐसे आगमों के सम्बद्ध अंशों का नगरपालिकाओं के बीच आवंटन;
2. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों का अवधारणा जो नगरपालिकाओं को समनुदेशित किए जा सकेंगे या उनके द्वारा विनियोजित किए जा सकेंगे;
3. राज्य की संचित निधि में से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान;
4. नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक उपाय;
5. किसी अन्य विषय की बाबत जो राज्यपाल द्वारा नगरपालिकाओं के ठोस वित्त पोषण के हित में वित्त आयोग को निर्दिष्ट किया जा सकेगा। राज्यपाल इस अनुच्छेद के अधीन आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश और इसके बारे में की गई कार्यवाही का स्पष्टीकरण ज्ञापन राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवायेगा।

74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राज्य विधान-मण्डल द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान किये जाएगें जो स्वशासन से जुड़ी संस्थाओं को उनके कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक हों नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, नगरपालिका तथा नगर पंचायत। नगर पंचायत जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायत ग्राम पंचायत थी उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सड़क, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई, आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। अनुच्छेद- 243 (ब) यह कहता है कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधान विधि बनाकर नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकता है, जो वह उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे और ऐसी विधि में नगरपालिका को ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जैसी उसमे विनिर्दिष्ट की जाए, निम्नलिखित के बाबत उपबंध किए जा सकेगें-

- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना;

- ऐसे कार्यों को करना और ऐसी योजनाओं का क्रियान्वित करना जो उन्हें सौपी जाएँ, जिनके अंतर्गत वे योजनायें भी हैं जो बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के सम्बन्ध में हैं।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, नगर पालिका तथा नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक-लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायतें, ग्राम पंचायतें थीं, उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सड़क, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। ऐसी विधि द्वारा समितियों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार दिए जा सकते हैं जो उनको प्रदत्त उत्तरदायित्वों को कार्यान्वित करने के लिए योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे जिसके अंतर्गत बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध बातें भी हैं।

12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(ब) के अनुसार 18 विषय हैं, जिन पर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है- नगरीय योजना जिसके अंतर्गत शहरी योजना भी है; भूमि उपयोग का विनिमय और भवनों का संनिर्माण; आर्थिक और सामाजिक विकास की योजना; सड़कें और पुल; घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जल प्रदाय; लोक स्वास्थ्य स्वच्छता, सफाई और कूड़ा-करकट प्रबन्ध; अग्निशमन सेवाएँ; नगरीय वानकी, पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्धि; समाज के दुर्बल वर्गों के जिनके अंतर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मंद व्यक्ति हैं के हितों का संरक्षण; गन्दी बस्ती सुधार और उन्नयन; नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे- पार्क, उद्यान, खेलों के मैदानों की व्यवस्था; सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्य परक पहलुओं की अभिवृद्धि; शव गाड़ना और कब्रिस्तान, शवदाह और श्मशान और विद्युत शवदाह; कांजी पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण; नगरीय निर्धनता को कम करना; जन्म-मरण सांखिकी जिसके अंतर्गत जन्म और मृत्यु का रजिस्ट्रीकरण है; लोक सुख-सुविधाएँ जिसके अंतर्गत पथ प्रकाश, पार्किंग स्थल, बस स्टाफ और जन सुविधाएँ हैं; वधशालाओं और चर्मशोधनशालाओं का विनियमन।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद- 243 (म) के अनुसार राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा निम्नलिखित शक्तियां प्रदान कर सकता है-

- ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन रहते हुए ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें, उद्ग्राहित, संगृहीत और विनियोजित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है;
- ऐसे प्रयोजनों के लिए और ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन रहते हुए राज्य सरकार द्वारा उद्ग्रहित ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें कोई नगरपालिका समनुदेशित कर सकेगा;
- नगरपालिकाओं के लिए राज्य की संचित निधि में से ऐसी सहायता अनुदानों के लिए उपबंध;
- नगरपालिका द्वारा या उनकी ओर से प्राप्त सभी धनों के जमा करने के लिए ऐसी निधिओं का गठन तथा ऐसी निधियों में से धन का प्रत्याहरण करने के लिए भी उपबंध जो उस विधि में विनिर्दिष्ट की जाएँ।

22.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

बजट एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा अगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है। इस प्रकार बजट वह अस्त्र है, जिसके द्वारा सरकार या संस्थाओं के कार्य पर नियंत्रण रखा जा सकता है। शहरी निकायों के लिए बजट उसके एक वित्तीय वर्ष के कार्यक्रम का दस्तावेज होता है। शहरी निकायों का कोई भी व्यय बिना बजट के अनुमोदन के नहीं हो सकता है। इस प्रकार बजट शहरी निकायों के लिए एक ऐसा प्रस्ताव होता है जिसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय तथा वित्त उपलब्ध कराने वाले साधनों की विवरणी होती है। अतैव शहरी निकायों के सभी कार्यों एवं प्राप्तियों का आकलन बजट में किया जाता है।

शहरी निकायों को प्रभावशाली रूप में काम करने तथा अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधन की जरूरत होती है। शहरी निकायों को उन आवश्यक संसाधन को एकत्र करने के लिए एक प्रक्रिया के माध्यम से इजाजत लेती है और वह प्रक्रिया बजट होता है। इस प्रकार संसाधन को जुटाने एवं अपने व्ययों को पूरा करने के लिए शहरी निकायों को बजट तैयार करना आवश्यक होता है। बजट से शहरी निकायों को निम्नवत लाभ होता है-

1. शहरी निकायों को आर्थिक नीतियों को पालन करने में सहूलियत होती है।
2. शहरी निकायों में संभावित आर्थिक विकास का अनुमान भी बजट से लगाया जा सकता है।
3. विगत वर्ष में प्राप्त आय एवं किए गए व्यय का वास्तविक स्थिति का पता चलता है।
4. आगामी वर्ष में प्राप्त होने वाले आय एवं होने वाले व्यय का अनुमान लग जाता है।
5. शहरी निकायों में कार्यान्वित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रगति मालूम होता है।
6. कर लगाने में सहूलियत होती है।
7. शहरी निकायों को अपना कार्य करने में सहयोग मिलता है।
8. शहरी निकायों को अपना राजस्व जुटाने में आसानी हो जाती है।
9. आय-व्यय घटाने एवं बढ़ाने में सहयोग मिलता है तथा
10. उनकी आर्थिक स्थिति आसानी से मालूम हो जाती है।

इस प्रकार बजट से शहरी निकायों को आर्थिक विकास की प्रगति को आसानी से देखा जा सकता है। प्राकृतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर किसी भी देश के लिए एक वित्तीय वर्ष के लिए एक निश्चित अवधि तय की जाती है। हमारे देश में भी वित्तीय वर्ष की अवधि 01 अप्रैल से 31 मार्च तय की गई है। उल्लेखनीय है कि इस अवधि को सर्वप्रथम 1867 में अपनाया गया था। इसके पूर्व यह अवधि 01 मई से 30 अप्रैल तक होती थी। 1967 में प्रशासनिक जांच आयोग ने वित्तीय वर्ष के अवधि की शुरुआत पहली अप्रैल के स्थान पर पहली नवंबर को करने का सुझाव दिया था, लेकिन कुछ कठिनाइयों के कारण सरकार ने इसे स्वीकार नहीं कर पाई। फलत: वर्तमान में वित्तीय वर्ष 01 अप्रैल से 31 मार्च तक की अवधि ही प्रचलन में है तथा इसी अवधि के लिए बजट बनाने का प्रावधान है और बनाया जाता है।

22.4.1 बजट के घटक या अवयव

सामान्यत: किसी भी बजट के दो मुख्य घटक होते है, पहला प्राप्तियां और दूसरा व्यय। पंचायत तैयार किए जाने वाले बजट का भी ये मुख्य घटक होते हैं-

1. **प्राप्तियां-** यह बजट का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले आय को रखा जाता है। उल्लेखनीय है कि पंचायतों को वर्तमान में अपना कोई आय का स्रोत नहीं

है, उन्हें केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा फंड प्राप्त हो रहे हैं। वर्तमान में पंचायत को चार स्रोतों से वित्तीय सहायता प्राप्त हो रहे हैं- पिछड़ा क्षेत्र अनुदान फंड(बीआरजीएफ), वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग तथा मनरेगा। बजट के प्राप्तियां पक्ष को दो भागों में विभाजित किया जाता है- एक राजस्व प्राप्तियां एवं दूसरा पूंजीगत प्राप्तियां।

- **राजस्व प्राप्तियां-** इसमें वैसे आय के स्रोत को शामिल किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में कोई भुगतान नहीं करना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि राजस्व प्राप्तियों से पंचायत के देयताओं में न तो वृद्धि होती है न ही परिसंपत्तियों में कमी आती है। इसी कारण राजस्व प्राप्तियों को आर्थिक क्रियाओं का प्रतिफल माना जाता है। इसके भी दो भाग होते है। पहला कर कर से प्राप्त आय तथा दूसरा गैर-कर आय। कर से प्राप्त आय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से प्राप्त आय का प्रदर्शित किया जाता है, जबकि गैर-कर आय में सेवाओं के बदले में लगाए गए कर एवं शुल्क को सम्मिलित किया जाता है।
- **पूंजीगत प्राप्तियां-** इसमें वैसे प्राप्तियों को शामिल किया जाता है, जिससे पंचायत की देयताओं में बढ़ोतरी होती है तथा परिसंपत्तियों में कमी आती है। जैसे- ऋण की वापसी, निवेश से प्राप्त आय आदि। उल्लेखनीय है कि ग्राम पंचायत हाट, बाजार, मेला आदि से राजस्व की उगाही कर सकते है लेकिन अभी यह प्रावधान व्यावहारिक रूप में नहीं है।

2. **व्यय-** बजट का दूसरा प्रमुख पक्ष व्यय होता है, व्यय। इसमें वैसे सभी व्ययों को शामिल किया जाता है, जो पंचायत द्वारा एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं सेवाओं पर व्यय किया जाता है। इसे लोक व्यय भी कहा जाता है। बजट के व्यय पक्ष को दो भागों में बांटा जाता है। पहला राजस्व व्यय एवं दूसरा पूँजीगत व्यय।

22.4.2 बजट के प्रकार

बजट विविध प्रकार के हो सकते हैं-

1. **पारंपरिक बजट-** बजट के प्रारंभिक स्वरूप को पारंपरिक बजट कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी व्ययों पर नियंत्रण करना होता है।
2. **पूंजी बजट-** इस प्रकार के बजट में केवल पूंजीगत प्राप्तियों एवं व्ययों को ही शामिल किया जाता है।
3. **निष्पादन बजट-** जब कार्य या परिणाम या लक्ष्यों को प्राप्ति के आधार पर बजट बनाया जाता है, तो उसे निष्पादन बजट कहा जाता है। इसमें आय-व्यय के लेखा-जोखा होने के साथ कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।
4. **परिणाम बजट-** इस प्रकार के बजट में भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण गुणवत्ता को ध्यान में रख कर किया जाता है। कार्य निष्पादन हेतु निर्धारित राशि को सही समय, सही गुणवत्ता तथा सही मात्रा में उपलब्ध कराने की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है, उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट सबसे पहले 2005 में बना था।
5. **शून्य आधारित बजट-** ऐसे बजट में प्रस्तावित व्ययों के प्रत्येक मदों को एक नई मद मानकर प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात प्रत्येक मद को शून्य मान कर उसे मूल्यांक्ति किया जाता है तथा सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन या समीक्षा गहनता से की जाती है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट की शुरुआत सर्वप्रथम 1986-87 के बजट से किया गया था।
6. **जेंडर बजट-** जब बजट को लिंग-विशेष के आधार पर तैयार किया जाता है, तो उसे जेंडर बजट कहा जाता है। सामान्यत: इस प्रकार के बजट में महिलाओं के लिए अलग से रणनीति तैयार की जाती है। उनके

विकास, कल्याण और सशक्तीकरण से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए एक निश्चित धन राशि की व्यवस्था की जाती है। शहरी निकायों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे शहरी निकायों को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है, ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव शहरी निकायों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त संविधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधान-मण्डल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा। राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग का गठन करेगा जो पंचायतों के साथ-साथ नगरपालिकाओं के लिए भी होगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागू करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अलावे वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ती कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय वित्त आयोग भी राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरूरी उपाय सुझाएगा।

22.5 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था एवं राज्य वित्त आयोग की भूमिका

राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग का गठन करेगा जो पंचायतों के साथ-साथ नगरपालिकाओं के लिए भी होगा। राज्य वित्त आयोग देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद- 243 (आई) के दिशा निर्देशों के अनुसार स्थापित किए गए हैं। राज्य में वित्त आयोग में आमतौर पर अध्यक्ष, सदस्य सचिव तथा अन्य सदस्य शामिल हैं। राज्य का राज्यपाल 73वें संशोधन प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक 05 वर्ष के समाप्ति पर नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा। वित्त आयोग निम्नलिखित विषय में राज्यपाल की अपनी सिफारिश करेगा-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों की प्रदान की जा सकें,
2. राज्य की संचित निधि में नगरीय निकायों के लिए सहायता अनुदान,
3. नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।

राज्य वित्त आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित वित्त आयोग से अनुदान प्राप्त होता है। राज्य वित्त आयोग पंचायतीराज और नगरीय निकायों के लिये वित्तीय प्रबन्ध एवं आवंटितराशि के बंटवारे के लिये सिफारिश देता है। आयोग पंचायतीराज एवं नगर निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा कर इसमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देता है। साथ ही पंचायत व नगर निकाय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कर, ड्यूटी, राजस्व आदि के संग्रहण के

लिये भी सिफारिशें देता है। यह वित्तीय मुद्दों के सम्बन्ध में राज्य और केंद्रीय सरकारों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।

संवैधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधानमंडल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागु करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अतिरिक्त वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ति कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। साथ ही केन्द्रीय वित्त आयोग भी राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरुरी उपाय सुझाएगा।

22.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का आकलन

स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरपालिका के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि नगरपालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि ‘स्थानीय वित्त जाँच समिति’ को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त है तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पुरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

इसके अतिरिक्त स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं राजनीतिक दलों के शक्ति परीक्षण की प्रयोगशाला बन गयीं हैं। स्थानीय संस्थाओं की सफलता बहुमत के बजाय आम सहमति और व्यापक समन्वय की भावना पर आधारित हैं। लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा सहमति स्थापित करने के स्थान पर दलीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है जो भले ही तत्कालीन दलीय हितों की पूर्ति करे, लेकिन वैचारिक दलीय प्रतिस्पर्धा के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के द्वारा सामुदायिक विकास और सहयोग लाने की भावना धूमिल होती है। अतः स्थानीय स्वशासन और विकेंद्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और

सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है। वित्तीय साधनों की कमी जनप्रतिनिधियों को प्रदान की गयी निम्न-सुविधाएँ और निम्न वेतनमान, निकम्मा कर्मचारी वर्ग, राज्य सरकार का अतिशय हस्तक्षेप, राजनीतिज्ञों का आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप, व्यापक भ्रष्टाचार आदि नगरीय प्रशासन की कतिपय समस्याएं हैं। फ्रेडरिक विलियम विल्सन, जो एक समय 'द पायनियर' के संपादक थे, के अनुसार " यह असम्भव है कि कोई व्यक्ति भारत की निर्वाचित नगरपालिकाओं, नगर निगमों तथा जिला परिषदों की दशा तथा स्थिति का सर्वेक्षण करें और उसके परिणामों से संतुष्ट हो जाए। इस समय भारत में नगरीय जीवन का जो रूप दृष्टिगत हो रहा है वह ऐसा नहीं है, जिस पर भारतीय देश भक्त गर्व कर सकें।''

अक्सर यह देखा गया है कि नगरीय निकाय खासकर छोटे नगरीय निकाय अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले करों जैसे कि सम्पत्ति कर, समेकित कर, जलकर आदि की दरों में वृद्धि से परहेज करते हैं। निर्वाचित प्रतिनिधि चाहे महापौर हो या वार्ड सदस्य सभी को हमेशा यह भय बन रहता है कि ऐसा करने से उनके विरोधियों को उनकी आलोचना व निन्दा करने का एक हथियार मिल जाएगा तथा वे अपने मतदाताओं में अलोकप्रिय हो जाएंगे और उनका अगली बार चुनाव जीतना कठिन हो जाएगा। अनेक उम्मीदवार व राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणा-पत्र में विकास का वादा करने की बजाय अपने कार्यकाल में करों में वृद्धि नहीं होने देने का वादा करते हैं। इस प्रकार के घोषणाओं को चुनावी आचार संहिता के विरुद्ध माना जाना चाहिए। इस प्रकार नगरीय निकायों का सालाना व्यय बजट तो बढ़ता रहता है, किन्तु स्वयं के कर राजस्व में वृद्धि न हो पाने के कारण छोटे नगरीय निकायों वित्तीय संकट से जूझते रहते हैं, यहाँ तक कि वे विद्युत पूर्ति कम्पनियों को बिजली के बिल भुगतान करने की स्थिति में भी नहीं रहते हैं। भारत की अनेक राज्य सरकारों ने नगरीय निकायों द्वारा नागरिकों को प्रदत्त सेवाओं के व्यय की भरपाई हेतु कर, उपकर, शुल्क, किराया आदि की दरें तय करने के लिए म्युनिसिपल राजस्व विनियामक आयोग स्थापना एक अच्छा कदम है। इस आयोग द्वारा निर्धारित टैरिफ वृद्धि से नगरीय निकायों के राजस्व में वृद्धि होगी तथा वित्तीय स्थिति मजबूत होगी। हर राज्य में विनियामक का गठन करके उसे क्रियाशील किया जाना चाहिए। अभी हाल में ही छत्तीसगढ़ सरकार के नगरीय प्रशासन व विकास विभाग ने नगरीय निकायों के सम्पत्ति कर से मिलनेवाले राजस्व में वृद्धि करने के उद्देश्य से सम्पत्ति कर में 50 प्रतिशत की वृद्धि की अधिसूचना जारी की। छत्तीसगढ़ के अधिकांश नगर निकायों में सत्तारूढ़ कांग्रेसदल को खुश होना चाहिए था कि राज्य सरकार द्वारा सम्पत्ति कर में वृद्धि की इस घोषणा से कर वृद्धि का उन पर दोषारोपण नहीं होगा तथा सशक्त वसूली से वे राजस्व में अच्छी-खासी वृद्धि कर सकेंगे। किन्तु कांग्रेस पार्टी के नगरीय निकाय पदाधिकारियों द्वारा सम्पत्ति कर में वृद्धि का विरोध किया जा रहा है तथा कहा जा रहा है कि वे बढ़े दर से कर वसूली नहीं करेंगे बल्कि जरूरत हुई तो 25 प्रतिशत से तक करेंगे। इससे कांग्रेस शासित नगरीय निकायों को ही राजस्व क्षति होने वाली है क्योंकि भाजपा शासित नगरीय निकायों ने राज्य शासन के निर्णय को सहजता से स्वीकार कर लिया है। छोटे नगरीय निकायों के कर एवं गैर-कर राजस्व दोनों के ही जुटाने के स्रोत सीमित होते हैं, इसलिए वे राजस्व समस्या से जूझते रहते हैं। कुल मिलाकर उन्हें राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुशंसित राज्य सरकार से अन्तरण व केन्द्र से अनुदान का सहारा रहता है। नगरीय निकायों के आय तथा राजस्व के स्रोत विभिन्न प्रकार के है। जैसे कर, सेवा के लिए ली जाने वाली फीस, सरकारी अनुदान जुर्माने आदि ये सभी प्रत्यक्ष कर है। अप्रत्यक्ष कर में चुंगी, टर्मिनल टेक्स, वाहनकर आदि टेक्स आते है। इन करों में से चुंगी कर देश के सभी राज्यों में समाप्त हो गया है, जबकि सीमा कर केन्द्र शासन के अधीन चला गया, नगरीय निकाय यह कर अब नहीं लगा सकती है। जहाँ यह कर प्रभाव शाली है, केन्द्र सरकार की अनुमति बिना नहीं लगाया सकता है। प्रत्यक्ष कर में गृह कर तथा व्यक्तियों पर लगाये गए कर प्रमुख हैं। नगरीय निकाय की आय का प्रमुख साधन गृह कर या सम्पत्ति कर है। ग्रेट ब्रिटेन इस कर से, अपने राजस्व का 50 प्रतिशत भाग एकत्रित करता है। अमेरिका में यह कर इन निकायों का प्रमुख आय का साधन है। भारत में जिस प्रदेश में चुंगी कर नहीं लगाया जाता, उन प्रदेशों में दी गयी सेवा के बदले लिए जाने वाले करों में

जल कर, सफाई कर, प्रकाश कर, सीवर टेक्स और शिक्षा पर लिए जाने वाले कर आते हैं। हमारे प्रदेश की नगरीय निकायों की आय के ये प्रमुख स्रोत हैं। अन्य करों में व्यवसाय पर लगाये गए कर, हैसियत कर आदि हैं। सेवा पर लिए जाने वाले करों से सेवा में हुए व्यय की प्रतिपूर्ति की जाती है, ऐसे कर निकाय के राजस्व नहीं बढ़ाते हैं। इन करों के अतिरिक्त नगरीय निकायों को शुल्कों से आय प्राप्त होती है। जैसे- निकाय द्वारा संचालित स्कुलों से प्राप्त होने वाली फीस और वभिन्न अनुज्ञप्तियों से प्राप्त होने वाली आय है। नगरीय निकायों को समय समय पर सरकार से अनुदान भी मिलता है। यह अनुदान देते समय दो बातों को ध्यान में रखा जाता है। प्रथम यह कि निकाय नीति एवम प्रशासन से सबंधित अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सके, दूसरा यह कि निकायों में अपने राजस्व स्रोतों का विकास करने में अरुचि पैदा न हो।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरीय निकायों के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरीय निकायों को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त हैं तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार क्योकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पुरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में नगरीय शासन प्रणाली को किस संविधान संशोधन अधिनियमद्वारा संवैधानिक दर्जा मिला?
2. किसे प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है?
3. राज्य वित्त आयोग का गठन कौन करता है?
4. भारत में नगरीय निकाय की शुरुआत कब हुई?
5. 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243 (ब) के अनुसार कितने विषय हैं जिनपर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है?

22.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात हो गया होगा कि नगरीय निकाय व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनोंके प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान

अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत नगरीय निकायों को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं, तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए।

अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरातनहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी, बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाएं।

22.8 शब्दावली

संविधान - किसी सरकार के मूलभूत कानून और सिद्धान्तों की लिखित या अलिखित व्यवस्था,

बजट- एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा आगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है।

कटौती प्रस्ताव- अनुदानों की मांग पर चर्चा के दौरान किसी मांग की राशि कम करने के लिए प्रस्ताव लाया जा सकता है, ऐसे प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहते हैं।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

22.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा, **2.** वित्त, **3.** राज्यपाल, **4.** 1688 में मद्रास नगर निगम की स्थापना के साथ, **5.** 18 विषय

22.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005 भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. बामेश्वर सिंह, 2000,भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।
4. चन्द्र प्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

22.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. इकबाल नारायण, 1975, राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा।

22.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में नगरीय निकायों की वित्त व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।

2. भारत में नगरीय निकायों के आय के स्रोत क्या हैं?

3. नगरीय निकायों की बजट प्रक्रिया का मूल्यांकन कीजिए।

4. नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण कीजिए।

5. नगरीय निकायों की वित्तीय व्यवस्था में राज्य वित्त आयोग की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 23 शासनिक ढ़ाँचा: नगरीय स्थानीय प्रशासन

इकाई की संरचना

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन का परिचय
23.3 भारत में नगरीय स्थानीय शासन का प्रशासनिक ढ़ाँचा
    23.3.1 नगर पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा
    23.3.2 नगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा
    23.3.3 नगर निगम या महानगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा
23.4 नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध
23.5 नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं चुनौतियों का समाधान
    23.5.1 चुनौतियों का समाधान
23.6 सारांश
23.7 शब्दावली
23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
23.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.11 निबंधात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है, जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। सरल शब्दों में नगरीकरण को एक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा एक क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या नगरों तथा कस्बों में संकेन्द्रित हो जाती है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा द्वारा तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा द्वारा पारित और 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत एवं 01 जून, 1993 से प्रवर्तित 74वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय नगरीय शासन के सम्बन्ध में संविधान में भाग- 9- क नये अनुच्छेदों (243 त से 243 य छ तक) एवं 12वीं अनुसूची जोड़कर संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की आवश्यकता होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों ना हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। हमारे देश में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दो गुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में नगरीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे से परिचय कराना है। इसमें नगर पंचायत, नगरपालिका, नगर निगम आदि नगरीय निकायों के प्रशासनिक ढ़ाँचा, नगरीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध तथा नगरीय प्रशासन की चुनौतियाँ आदि मुद्दों पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में नगरीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- साथ ही आप नगरीय निकायों की प्रशासनिक संरचना के बारे में जान सकेंगे।
- आप विविध स्तर पर सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे तथा
- नगरीय प्रशासन की चुनौतियों एवं समाधान से भी आप अवगत होंगे।

23.2 भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन का परिचय

राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। प्रशासन लोक कल्याणकारी राज्य में 'पालने से शमशान' तक व्यक्ति के साथ होता होता है। आज की बढ़ती हुई जटिलताओं का सामना करने में व्यक्ति एवं समुदाय अपनी सीमित क्षमताओं और साधनों के कारण स्वयं को असमर्थ पाते हैं। स्थिति यह है कि प्रशासन के अभाव में हमारा अपना जीवन, मृत्यु के समान भयावह और टूटे तारे के समान असहाय लगता है। हम उसे अपने वर्तमान का ही सहारा नहीं समझते, वरन् एक नयी सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विश्व के निर्माण का आधार मानते हैं। प्रशासन की आवश्यकता सभी निजी और सार्वजनिक संगठनों को होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। उसे प्रत्येक जनसमुदाय की सामान्य इच्छाओं की पूर्ति में सलग्न व्यवस्था माना जा सकता है।

लोकतंत्र की संकल्पना को यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में शहरी स्थानीय स्वशासन व्यवस्था एक ठोस कदम है। लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण भागीदारी के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओ तक लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेन्द्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचे। विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में सन् 1992 में हुए 73वें एवं 74वें संविधान द्वारा ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन को स्थापित कर उन्हें मजबूत बनाने की मंशा को एक ऐतिहासिक कदम के रूप में जाना जाता है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल

देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है।

शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यो को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में 1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। अधिनियम पर राष्ट्रपति की सहमति 20 अप्रैल 1993 को प्राप्त हुई। भारत सरकार ने 1 जून, 1993 जिस तारीख से उक्त अधिनियम लागू हुआ, को अधिसूचित किया। नगरपालिका सम्बन्धी नया भाग IX- क, को अन्य चीजों के अतिरिक्त तीन प्रकार की नगरीय निकायों की व्यवस्था करने के लिए संविधान में शामिल किया गया है, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में मार्गस्थ के लिए नगर पंचायतें, छोटे आकार के शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद और बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिकाएं, नगरपलिकाओं की नियत अवधि, राज्य निर्वाचन आयोग की नियुक्ति, राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति और मेट्रोपोलिटन एवं जिला योजना समितियों का गठन राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों ने अपना निर्वाचन आयोग गठित किया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित अनुच्छेदों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(पी) से 243(जेड जी) तक किया गया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित संस्थाओं के तीन प्रकार हैं- नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम।

- नगर पंचायत, ऐसे क्षेत्र के लिए जो ग्रामीण क्षेत्र से नगर क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है,
- नगर परिषद, छोटे नगर क्षेत्र के लिए, तथा;
- नगर निगम, बड़े नगर क्षेत्र के लिए।

अनुच्छेद-243(थ) ने प्रत्येक राज्य के लिए ऐसी इकाइयां गठित करना अनिवार्य कर दिया है। किंतु यदि कोई ऐसा नगर क्षेत्र है जहाँ कोई औद्योगिक स्थापन नगरपालिका सेवाएं प्रदान कर रहा है या इस प्रकार प्रदान किए जाने का प्रस्ताव है तो क्षेत्र का विस्तार और तथ्यों पर विचार करने के पश्चात राज्यपाल उसे औद्योगिक नगर घोषित कर सकेगा। ऐसे क्षेत्र के लिए नगरपालिका गठित करना अनिवार्य नहीं होगा। नगरीय शासन से सम्बन्धित 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के अस्तित्व में आने से निचले स्तर तक अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। संविधान के इस संशोधन अधिनियम से नगरीय स्वायत्त संस्थाओं को विशेष दर्जा प्राप्त हो गया है। साथ ही स्थानीय प्रशासन की प्रशासन का तीसरा स्तर माना जाने लगा है, जबकि दो अन्य स्तर हैं- केन्द्र स्तर एवं राज्य स्तर। नगरीय निकाय ऐसी संस्थायें हैं, जिनकी निश्चित सेवाएं एवं नियामक कार्य हैं। इन्हें आगे अनिवार्य एवं विवेकाधीन दायित्वों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नगरीय निकाय विकास एवं जन-कल्याण से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों एवं योजनाओं से सम्बन्धित हैं। नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को मूलभूत नागरिक सुविधाएं, जैसे- स्वच्छ पेयजलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण, आदि उपलब्ध कराया जाना, इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं, पहला, बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। प्रत्येक राज्य में नगर पंचायत, नगर पालिका परिषद् तथा नगर निगम का गठन किया जाएगा। नगर पंचायत का गठन उस क्षेत्र के लिए होगा, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है। नगर पालिका परिषद् के सम्बन्ध में छोटे नगरीय क्षेत्रों के लिए किया जाएगा, जबकि बड़े नगरों के लिए नगर निगम का गठन होगा। तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगर पालिका के क्षेत्र में एक या अधिक वार्ड समितियों का गठन

होगा। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और मध्यम शहरों के लिए नगर परिषद् की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत संक्रमणशील, और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसँख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। वहीं बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या10 हजार से भी कम थी। संविधान में 12वीं अनुसूची में नगर पालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद 243 डब्ल्यू से सम्बन्धित है।

नगरीय स्थानीय शासन व्यवस्था के तीनों स्तर पर संरचना निम्नवत होती है:

संस्था का नाम	**राजनीतिक प्रतिनिधि**	**प्रशासनिक अधिकारी**
नगर निगम	महापौर	आयुक्त
नगरपालिका	अध्यक्ष	अधिशासी अधिकारी
नगर पंचायत	अध्यक्ष	अधिशासी अधिकारी/ नगर पंचायत अधिकारी

23.3 भारत में नगरीय स्थानीय शासन का प्रशासकीय ढ़ाँचा

भारत के विभिन्न राज्यों में नगरीय स्थानीय संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है, तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। शहरी स्थानीय निकायों के कार्यो पर प्रशासकीय नियंत्रण के साथ-साथ नगरीय क्षेत्रों में अवस्थापना सुविधाओं के विकास एवं विस्तार हेतु विभिन्न योजनाओं/कार्यक्रमों के माध्यम से आवश्यक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराये जाने हेतु राज्यों में नगर विकास विभाग का गठन किया गया। नगर विकास विभाग द्वारा उक्त कार्यों के अतिरिक्त शहरों में स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण तथा नदियों/झीलों में प्रदूषण नियंत्रण आदि का कार्य भी किया जा रहा है। राज्यों में नगरीय स्थानीय निकाय से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वयन के लिये राज्य स्तर से लेकर नगर पंचायत स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व शहरी विकास विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव, शहरी विकास इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं।

पदसोपान में यह व्यवस्था सामान्यतः निम्नवत होती है-

मंत्री, शहरी विकास

↓

प्रमुख सचिव, शहरी विकास

↓

सचिव, शहरी विकास

↓

विशेष सचिव
↓
संयुक्त सचिव
↓
उप सचिव
↓
अनु सचिव
↓
अनुभाग अधिकारी

सामान्यतः निदेशालय स्तर पर निदेशक, शहरी विकास के अधीन अपर निदेशक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, संयुक्त निदेशक, प्रशासनिक अधिकारी तथा प्रकाशन अधिकारी आदि के पद स्वीकृत होते हैं और यह समस्त अधिकारी निदेशक, शहरी विकास के सामान्य नियंत्रण में विभागीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। निदेशालय स्तर पर निदेशक, शहरी विकास विभागाध्यक्ष का कार्य देखते हैं और यह व्यवस्था निम्नवत होती है-

निदेशक, शहरी विकास (विभागाध्यक्ष)
↓
अपर निदेशक
↓
संयुक्त निदेशक
↓
मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी
↓
प्रशासनिक अधिकारी

23.3.1 नगर पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। बिहार नगरपालिका अधिनियम 2007 में यह प्रावधान किया गया है कि जिन ग्राम पंचायतों की आबादी बारह हजार से ऊपर जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं, उसे छोटा शहरी क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत कर नगर पंचायत का दर्जा दिया जा सकता है। नगर पंचायत घोषित होने पर वहाँ नगर विकास एवं आवास विभाग के नियंत्रणाधीन विभिन्न वार्डों का गठन किया जायेगा। सामान्यतः नगर पंचायत का गठन उस क्षेत्र के लिए होता है, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है। नगर पंचायतें नगरीय निकाय व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं।

नगर पंचायत एक प्रशासनिक इकाई होती है, जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र होता है और इसकी जनसंख्या भी अंकित होती है। एक नगर पंचायत में प्रायः एक नगर पंचायत अधिकारी प्रशासनिक अधिकारी होता है, व इसके ऊपर नगर पंचायत परिषद का नियंत्रण होता है। नगर पंचायत अधिकारी/अधिशासी अधिकारी राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो सामान्यतः राज्य असैनिक या सामान्य सेवा (पी0सी0एस0) संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। वह प्रशासनिक कार्यों को करता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। नगर पंचायत अपने कार्यों के लिए या तो अपने मानव संसाधन का इस्तेमाल करता है या नगर पंचायत में कार्यरत कर्मचारी नगर विकास विभाग के संवर्ग से होते हैं, या फिर वो अन्य किसी विभाग से नगर पंचायत में तैनात किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार नगर पंचायत के अधीन काम करने के

लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करती है, जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई नगर पंचायत पने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

23.3.2 नगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

भारत में, एक नगर पालिका अक्सर एक शहर के रूप में जाना जाता है। यह न तो एक ग्राम और न ही बड़े शहर के बराबर होता है, वरन उनके बीच का होता है। एक नगर पालिका 20 हजार या उससे अधिक लोगों को मिलाकर बनता है, लेकिन अगर यह 05 लाख से अधिक जनसंख्या वाला हो जाता है तब एक निगम बन जाता है। नगरपालिका एक प्रशासनिक इकाई होती है, जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र होता है और इसकी जनसंख्या भी अंकित होती है। आमतौर पर यह एक शहर, कस्बे या गांव, या उनमें से छोटे समूह रूप में होता है। एक नगरपालिका में प्रायः एक महापौर प्रशासनिक अधिकारी होता है, व इसके ऊपर नगर परिषद या नगरपालिका परिषद का नियंत्रण होता है। प्रायः नगरपालिका अध्यक्ष ही प्रशासनिक अध्यक्ष होता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 243 (द) के अनुसार खण्ड (2) में उपबंधित उपबंध के सिवाय किसी नगरपालिका में सभी स्थान नगरपालिका क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये व्यक्तियों द्वारा भरे जाएंगे। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा जिसे 'वार्ड' कहा जाएगा। अर्थात नगरपालिका के सभी सदस्यों का चुनाव उस नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा सीधे-सीधे किया जाएगा। इसके लिए प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में; अर्थात वार्डों में बांटा जाएगा। नगरपालिका अध्यक्ष के चुनाव पद्धति का निर्धारण राज्य विधानमंडल द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका में निम्नलिखित लोगों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी किया जा सकता है-

1. नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाला व्यक्ति किन्तु उसे नगरपालिकाओं की बैठकों में मत का अधिकार नहीं होगा।
2. लोकसभा या राज्य विधानमंडल के वे सदस्य जो उस चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हों, जिसमें नगरपालिका का पूरा अथवा कुछ भाग आता हो।
3. राज्यसभा या राज्य विधानपरिषद के वे सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत हों।

उपरोक्त सभी नियमों के रहते हुए भी राज्य का विधानमंडल विधि बनाकर नगरपालिका के निर्वाचन की रीति विहित करेगा। नगरपालिकाओं के सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा निर्वाचित होंगे। राज्य विधानमंडल अपनी विधि द्वारा निम्नलिखित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व के लिए प्रावधान कर सकता है-

- नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्ति,
- लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभा और विधान परिषद के सदस्य, तथा;
- संविधान के अनुच्छेद- 243-ध, के अंतर्गत गठित वार्ड समितियों के अध्यक्ष।
- अध्यक्षों को निर्वाचन विधानमंडल द्वारा निर्मित उपबंध के अनुसार किया जायेगा।

तीन लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले नगरपालिका क्षेत्र में आने वाले दो या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियां बनाना आवश्यक है। विधान-मण्डल वार्डों का गठन, क्षेत्र तथा सदस्यों के चुनाव की विधि तय करेगा। विधान-मण्डल अन्य समितियों का भी गठन कर सकता है। ऐसी नगरपालिका जिसकी जनसँख्या तीन लाख या उससे अधिक है, प्रादेशिक क्षेत्र के भीतर एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियों का गठन किया जाएगा। (अनुच्छेद- 243 ध) इसके अतिरिक्त राज्य का विधान-मण्डल वार्ड समिति की संरचना, भौगोलिक क्षेत्र

और समिति में स्थान भरने की प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधान बना सकता है। राज्य का विधान-मण्डल वार्ड समिति के गठन के अतिरिक्त समितियों के गठन के लिए भी किसी भी तरह का प्रावधान बना सकता है। प्रादेशिक वार्ड समिति के क्षेत्र के भीतर किसी वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला किसी नगरपालिका का सदस्य उस समिति का सदस्य होगा, जहाँ कोई वार्ड समिति एक वार्ड से मिलकर बनी है, वहाँ नगरपालिका में उस वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य या दो या दो से अधिक वार्ड से मिलकर बनी है, वहाँ नगरपालिका में उस वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य जो वार्ड समिति द्वारा निर्वाचित किया गया है, उस समिति का अध्यक्ष होगा।

74वें संशोधन अधिनियम में प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है। परन्तु विघटन के पूर्व नगरपालिका को उचित सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। नगरपालिका को अपने कार्यों को निष्पादित करने के लिए पर्याप्त मानव संसाधनों की जरूरत है। नगरपालिका परिषद के कार्यों को निम्न तरीकों से निष्पादित किया जाता है, कार्यकारी इकाई नगरपालिका आयुक्त द्वारा संचालित की जाती है। नगरपालिका आयुक्त राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो पी0सी0एस0 संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। आयुक्त, रोजाना के प्रशासनिक कार्यों को कराता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। आयुक्त को अधिकारियों की एक टीम द्वारा सहायता प्रदान करता है, जो नगरीय स्थानीय निकाय से सम्बन्धित होती है, जिसका कार्यकाल नगरीय स्थानीय निकाय में काफी लंबा रहा हो। नगरपालिका अपने कार्यों के लिए या तो अपने मानव संसाधन का इस्तेमाल करता है या नगरपालिका में कार्यरत कर्मचारी नगर विकास विभाग के संवर्ग से होते हैं, या फिर वो अन्य किसी विभाग से नगर पालिका में तैनात किए जा सकते हैं। नगरपालिका में और सम्बन्धित संवर्ग में तैनात कर्मचारी नगर विकास विभाग के होते हैं। अपने संवर्ग से सम्बन्धित अन्य विभागों से कर्मचारियों की तैनाती नगरपालिका में होती होती है। उदाहरण के लिए नगर स्वास्थ्य अधिकारी, चिकित्सा स्वास्थ्य विभाग द्वारा तैनात किया जाता है। नगर पालिका आयुक्त ज्यादातर पी0सी0एस0(प्रांतीय सिविल सेवा) संवर्ग से सम्बन्धित होता है और उसकी प्रतिनियुक्ति नगरपालिका में मानी जाती है। इसके अतिरिक्त सरकार नगरपालिका के अधीन काम करने के लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करती है, जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई नगरपालिका अपने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

23.3.3 नगर निगम या महानगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

भारत उनतीस राज्यों और सात केन्द्र शासित प्रदेशों का एक संघीय ढ़ाँचा है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार कर स्थापित किया गया है। बढ़ती आबादी एवं भारत के विभिन्न शहरों में शहरीकरण के साथ, नगर निगमों की स्थापना आवश्यक सामुदायिक सेवाएं जैसे स्वास्थ्य केन्द्र, शैक्षणिक संस्थान और आवास, संपत्ति कर जैसे अन्य मामलों में सहायता प्रदान करने के लिए की गई। शहर के प्रशासन में नगर निगम बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है एवं इसका नेतृत्व नगर निगम आयुक्त द्वारा किया जाता है, जिसके पास समस्त कार्यकारी अधिकार होते हैं। भारत में नगर निगम, पंचायती राज व्यवस्था के निगम अधिनियम,1835 के तहत गठित है एवं, प्रत्येक जिले अथवा शहर के छोटे से छोटे गांव अथवा कस्बे में आवश्यक सेवाएं प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। राज्य में एक केन्द्रीय महत्व का स्थान रखते हुए नगर निगम लोगों की दैनिक समस्याओं का समाधान करता है एवं उन्हें सुविधाजनक सेवाएं प्रदान करता है। देश के चार महानगरों में सबसे बड़े निगम हैं। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई में से मुंबई नगर निगम सबसे बड़ा है। इन

चार महानगरों में देश की बहुत बड़ी आबादी ही नहीं रहती है, बल्कि ये चारों महानगर देश के प्रशासनिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र भी हैं।

नगरीय स्थानीय शासन व्यवस्था के पदसोपान क्रम में नगर निगम शीर्षस्थ संस्था है। सर्वोच्च इकाई होने के कारण इसका मुख्य कार्य राज्य एवं नगर निगम के निवासियों में एक कड़ी का है। आम आदमी के लाभ के लिए स्थापित की गई विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी निष्पादन और एक बेहतर एवं योजनाबद्ध शहर के निर्माण के लिए नगर निगम राज्य सरकार के साथ हाथ से हाथ मिलाकर कार्य करता है। 1992 के अधिनियम के अनुसार सभी राज्यों ने अपने नगरपालिका अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये हैं भारत में एक नगर निगम एक स्थानीय सरकार के रूप में 02 लाख या उससे अधिक की जनसंख्या के एक शहर का प्रशासन करता है। शहरी स्थानीय व्यवस्था के तहत, यह राज्य सरकार के साथ सीधे संपर्क रखता है, हालांकि यह प्रशासनिक दृष्टि से जिले के अधीन ही आता है व उसी में स्थित होता है। भारत में ब्रिटिश काल में ही मुंबई, कोलकाता एवं चेन्नई में नगर निगम स्थापित हो गए थे, जबकि दिल्ली में संसद के 1958 के एक अधिनियम द्वारा नगर निगम की स्थापना की गयी। आज दिल्ली नगर निगम एक शहर व नगर निगम है, जो दिल्ली के कुल नौ जिलों में कार्यरत है। यह दिल्ली में कार्यरत तीन नगरपालिकाओं में से एक है। शेष दो हैं- नई दिल्ली नगर पालिका और दिल्ली छावनी बोर्ड। दिल्ली नगर निगम विश्व की सबसे बड़ी नगर पालिका संगठन है, जो कि अनुमानित 137.8 लाख नागरिकों को नागरिक सेवाएं प्रदान करती है। देश के अन्य राज्यों में भी जनसंख्या के आधार पर नगर निगमों की स्थापना की गयी है। राज्यों ने 74वें संशोधन को यथानुरूप आवश्यक परिवर्तन भी कए है तथा नगरीय शासन प्रणाली को साकार बनाया है।

सामान्यतः नगर निगम का सर्वोच्च निर्वाचित पदाधिकारी महापौर (मेयर) कहलाता है। नगर निगम के समस्त सदस्य पहली बैठक में महापौर एवं उप-महापौर का चयन करते हैं। इनका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। महापौर नगर निगम परिषद् और मेयर इन कौंसिल के मुखिया होता है। शहर के प्रथम नागरिक के रूप में उसका ऊंचा ओहदा भी होता है। नगर निगम परिषद में महापौर, उप महापौर और वार्डों के अन्य पार्षद शामिल होते हैं। महापौर, उप-महापौर एवं अन्य पार्षद को मिलाकर बनाई गई एक स्थायी उच्चाधिकार समिति के माध्यम से 'नगर निगम परिषद' कार्य करती है। निगम अध्यक्ष कार्य करने में असमर्थ हो तो महापौर कभी भी विशेष सम्मेलन बुला सकते हैं। अपने कार्यालय के अमले पर महापौर का प्रशासकीय नियंत्रण होता है। महामारी या आपदा की स्थिति में ऐसे काम के लिए निर्देश दे सकते हैं, जो तत्काल जरूरी हो। कई मामलों में मेयर को मेयर इन कौंसिल अपने अधिकार भी सौंप सकती है। मेयर अपनी कैबिनेट यानी मेयर इन काउंसिल का गठन करते हैं। अधिकांश राज्यों में तीन लाख से अधिक आबादी वाले नगर निगमों में महापौर परिषद् सीधे तौर पर 15 लाख रुपए तक की लागत के कार्यों के लिए मंजूरी दे सकती है। तीन लाख से कम आबादी वाले शहरों के लिए यह सीमा 10 लाख रुपए तक है।

नगर निगम का प्रशासनिक मुखिया आयुक्त होता है, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। वह अधिकारों से संपन्न होता है तथा शासन से मिलने वाले आदेशों और निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी इन्हीं की होती है। महापौर, एम0आई0सी0 या निगम परिषद् द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी नगर निगम आयुक्त की रहती है। महापौर अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले कार्य का प्रस्ताव बनाकर नगर निगम आयुक्त को भेजते हैं। आयुक्त द्वारा प्रस्ताव के मुताबिक उस पर अमल प्रक्रिया शुरू की जाती है। अब किसी-किसी राज्य में शासन ने आयुक्त को अधिकारिता के मुताबिक जिलाधिकारी या शासन को सीधे प्रस्ताव भेजने की छूट भी दे दी है। शासन कानून में नगर निगम की जिम्मेदारियों के रूप में अनिवार्य व विवेकाधीन कर्तव्यों का उल्लेख है। हालांकि अधिनियम में यह भी साफ किया गया है कि इन कर्तव्यों का पालन नहीं करने पर निगम के किसी पदाधिकारी या पार्षद से क्षतिपूर्ति नहीं मांगी जा सकती या उनके खिलाफ अदालत में कोई वाद दायर किया जा सकता है। मुखिया होने के नाते नगर निगम की जिम्मेदारियों को पूरा करवाना महापौर का दायित्व है। नगर निगम

कमिश्नर को पांच लाख तक के कार्यों की स्वीकृति का वित्तीय अधिकार प्राप्त है। इससे अधिक राशि के प्रस्तावों के लिए उन्हें महापौर परिषद से अनुमोदन प्राप्त करना होता है।

उपायुक्त या संयुक्त नगर आयुक्त आयुक्त के अधीन काम करते हैं और उनके द्वारा सौंपे गए दायित्वों को पूरा करने की जिम्मेदारी इन्हीं की है। कुछ अधिकारी राज्य प्रशासनिक सेवा के भी होते हैं। मुख्य नगर लेखा परीक्षक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, मुख्य नगर स्वास्थ्य अधिकारी, पशु चिकित्सा अधिकारी, अधिशासी अभियंता, कर निर्धारण अधिकारी, जन-सम्पर्क अधिकारी, उद्यान अधिकारी आदि नगर निगम के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी हैं।

सामान्यतया आयुक्त नगर निगम का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी नगर निगम की नीतियों और निर्देशों को कार्यान्वित करता है और नगर निगम के सभी कार्यों और विकास योजनाओं के शीघ्र निष्पादन हेतु आवश्यक कदम उठाता है।वह महापौर के सामान्य अधीक्षण और नियंत्रण तथा अन्य पदाधिकारियों और कर्मचारी पर नियंत्रण रखता है, नगर निगम से सम्बन्धित सभी कागजात एवं दस्तावेजों को सुरक्षित रखता है तथा अन्य सौंपे गए कार्यों को पूरा करता है। उसे जिला परिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार है। वह बैठक में विचार-विमर्श कर सकता है तथा कोई प्रस्ताव रख सकता है, परन्तु मतदान में भाग नहीं ले सकता है।

23.3.3.1 नगर निगम या महानगर पालिका की भूमिका एवं कार्य

नगर निगम राज्य सरकार के साथ विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समन्वय से काम करता है। भारत में नगर निगम के सभी अधिनियम निगम के कार्यों, शक्तियों और जिम्मेदारियों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं।

1. **अनिवार्य कार्य-** कुछ अनिवार्य कार्य हैं। जैसे- शुद्ध और पौष्टिक पानी की आपूर्ति, निर्माण और सार्वजनिक सड़कों का रखरखाव, प्रकाश और सार्वजनिक सड़कों का पानी, सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नाली की सफाई, आक्रामक, खतरनाक एवं अप्रिय ट्रेडों और आजीविकाओं या व्यवहारों का नियमन, प्राथमिक स्कूलों की स्थापना एवं रखरखावय सार्वजनिक अस्पतालों का रख-रखाव या समर्थन, जन्म व मृत्यु का पंजीकरणय सार्वजनिक गलियों, पुलों एवं अन्य स्थानों पर अवरोधों को दूर करना, सड़कों का नामकरण एवं मकानों का क्रमांकन्आदि।
2. **विवेकाधीन कार्य-** कुछ विवेकाधीन कार्य इस प्रकार हैं। जैसे- सार्वजनिक पार्कों, बागीचों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों, आराम घर, कुष्ठरोगी घर, अनाथालयों, महिलाओं के लिए वृद्धाश्रमों व बचाव घरों का निर्माण एवं रखरखाव, सड़क के रखरखाव के साथ उसके किनारों व अन्य स्थानों पर पेड़ों का रोपण, निम्न आय वर्ग के लिए आवास, सर्वेक्षणों का आयोजन, सार्वजनिक स्वागत, सार्वजनिक प्रदर्शनियों एवं सार्वजनिक मनोरंजन का आयोजनय नगर पालिका द्वारा परिवहन सुविधाओं का प्रावधान, नगर निगम कर्मचारियों के कल्याण के लिए संवर्धन नगर पंचायत/निगम/पालिका के अन्र्तगत नगर के विभिन्न भाग/वार्ड से एक-एक सदस्य भी चुने जाते है। नगर के एक-एक भाग/वार्ड की जनसंख्या लगभग एक ग्राम पंचायत के बराबर हो जाती है। आंध्र प्रदेश, दिल्ली, मुंबई जैसे कई राज्यों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के अपनाए जाने से भारत में पूरी तरह से विकसित ई शासित नगर निगम हैं। ये राज्य ई शासन के माध्यम से इस क्षेत्र में नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने में उत्कृष्ट रहे हैं।

   स्थानीय नगरीय संस्थाओं के कार्यों को सुचारू रूप से सम्पादित करने के लिए 74वें संविधान संशोधन के तहत विभिन्न योजना समितियों की स्थापना की गई है। इनमें से जिला योजना समिति और महानगर योजना समिति प्रमुख है। 'महानगर क्षेत्र' से तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है, जिसकी जनसँख्या दस लाख या उससे अधिक है जो एक या एक से अधिक जिले और एक या अधिक नगरपालिकाओं या पंचायतों का अन्य निकटस्थ क्षेत्र जिसे राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। सम्पूर्ण

महानगर क्षेत्र के विकास योजना प्रारूप को तैयार करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक महानगर योजना समिति गठित की जाती है।

23.4 नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय ना होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय निकाय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतःमन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए।

लेकिन स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक दूसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पाई है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वही प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के वाजिब सलाहों को भी नजरअंदाज करते हैं। जिसके कारण विकास की संभावना प्रभावित होती है। यदि राजनीतिक दल व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य में स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है, परन्तु क्रियान्वयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच पाता जो वास्तव में जरूरतमंद हो। जार्ज मेथ्यु ने भी कहा है कि देश में पंचायती राज के प्रभावकारी ढंग से लागू होने के मार्ग में एक शत्रु नौकरशाह हैं जो पंचायती राज के अधीन काम करना अपनी तौहीन समझते हैं, और नेताओं के साथ इनकी मिलीभगत हैं। वही पीटर रोनाल्ड डिसूजा जो 73वें संविधान को लोकतंत्र की दूसरी हवा कहते हैं, उनके अनुसार पंचायती राज में ग्रामीण विकास

की मुख्य समस्या नौकरशाहों की क्षमता व संख्या में कमी भी है। ये बाते नगरीय प्रशासन पर भी यथावत लागू होती हैं।

23.5 नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं चुनौतियों का समाधान

स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। नगरीय स्थानीय प्रशासन की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है। यथा वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण, स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि-आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। प्रायः प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इनसंस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए। स्थानीय स्वशासन और विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त

करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है।

अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरातनहीं बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी, बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाए।

नगरीय जनता के विकास के लिए केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है। लेकिन नगरीय निकायों की कार्यप्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों कें कारण इन योजनाओं का लाभ उन व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पाता है, जो वास्तव में जरूरतमंद है, इस चुनौतियों के पीछे प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित तंत्रों के कारण दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है।

स्थानीय विकास की मुख्य समस्या यह भी है कि किसी भी स्थानीय योजना का निर्माण एवम् उसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत हितों, स्वार्थों को मद्देनजर रखकर किया जाता है, इसके साथ ही संसाधनों का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, इत्यादि गंभीर समस्याएं हैं जो विकास कार्य में बाधा डालती है।

नीति-निर्माण तथा समन्वय के स्तर पर भी ध्यान ना देने से विकास कार्य शिथिल पड़ जाते हैं। विकास की योजनाओं के निर्माण का कार्य एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयां आती हैं एवं विकास यथोचित नहीं हो पाता है। वास्तव में यह प्रत्यक्ष अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि सम्बन्धों के अभाव के कारण विभागीय तनाव, मनमुटाव, ईर्ष्या

की भावना का विकास होता है। जिससे आपसी सहयोग व समन्वयन का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। साथ ही लालफीताशाही में वृद्धि के कारण विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में अनावश्यक विलम्ब होता है और कभी-कभी विकासात्मक योजनाओं की फाइलें लंबित रह जाती है। उदाहरण के लिए भवन निर्माण, रोड निर्माण आदि हेतु प्रस्तुत पत्र यदि जिला परिषद् या महानगरपालिका में भेजा जाता है तो महीनों तक परिलंबित पड़ी रह जाती है। इस प्रकार की प्रवृति घुसखोरी, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। अधिकारियों व पदाधिकारियों के बीच सम्बन्धों में तनाव, मनमुटाव या ईष्या जैसी भावनाओं के कारण ग्रामीण विकास असफल रहता है। इस प्रकार के सम्बन्धों से विकास की योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

23.5.1 चुनौतियों का समाधान

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता, केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति, विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। अब यह कहना आवश्यक हों गया है कि शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबावदारियों के सक्रियता से निभाने का प्रयास करें। अधिकारियों एवं आम जनता को योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में सहयोग देना चाहिए, ताकि ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन को सहयोग मिल सके। विकासात्मक कार्यों को करने के लिए प्रशासकों एवं विशेषज्ञों को स्वतंत्रता होने से वे अपने अनुभवों एवं कार्यकुशलता के आधार पर कार्य कर सकेगें। प्रशासन को सम्बन्धित समस्या के वास्तविक आकड़े व तथ्य प्रशासन को प्राप्त कराने में सम्बन्धित व्यक्ति को सहयोग प्रदान करना चाहिए। साथ ही विकास कार्यों का नियोजन, क्रियान्वयन एवं उसका मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए, जिससें पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा। इसके अतिरिक्त नागरिक घोषणा-पत्र के अनुसार कार्यों का निष्पादन आवश्यक है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रस्तावित फाइलों की यथोचित कार्यवाही के साथ एक निश्चित अवधि के अंदर पूर्ण करना चाहिए। नगर से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के समुचित समाधान के लिए वैसे तो प्रत्येक हितभागी की अपनी-अपनी जिम्मेदारियां हैं, परन्तु नागर समाज संगठन के अन्तर्गत ही गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका बहुत अहम व सुस्पष्ट है। पूर्व से ही स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास हेतु प्रयासरत रहे हैं परन्तु पिछले दो दशकों से नगरीय विकास के मुद्दों पर भी कुछ संस्थाएं कार्य कर रही हैं शहरी विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाना नगर निकाय व विभागों की संयुक्त जिम्मेदारी है, लेकिन नगर निकाय व विभागों के बीच कार्यों व जिम्मेदारियों का स्पष्ट बॅटवारा होना चाहिए। नगर विकास जैसे मुद्दों पर सरकार, निकाय, गैर-सरकारी संगठन एवं नागरिकों के परस्पर समन्वयन व सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगरपालिकाओं की बाध्यकारी स्थापना के सम्बन्ध में संविधान संशोधन कौन सा है?
2. बड़े नगर क्षेत्र के लिए कौन सा नगरीय निकाय स्थापित किया गया है?
3. नगरपालिका का कार्यकाल कितना निर्धारित किया गया है?
4. दिल्ली में नगर निगम की स्थापना कब हुई?
5. नगर निगम का सर्वोच्च्व निर्वाचित पदाधिकारी कौन होता है?

23.6 सारांश

भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। नगर निगम, नगर पालिका एवं नगर पंचायत नगरीय निकाय व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। नगरों में प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित तंत्रों के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है। नगरीय प्रशासन अपनी विविध संरचनाओं में नया एवं सकारात्मक परिवर्तन लाकर अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है।

23.7 शब्दावली

संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, संविधान संशोधन- संविधान के उपबंधों में आंशिक या पूर्ण परिवर्तन, ढ़ाँचा- संरचना, अधिनियम- कानून, निकाय- संगठन ,व्यवस्था अध्यादेश- विधान-मण्डल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून

23.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 74वां संशोधन अधिनियम् 1992, **2.** नगर निगम, **3.** 05 वर्ष, **4.** 1958, **5.** महापौर (मेयर)

23.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिश्चंद्र शर्मा , 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन जयपुर।

23.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गवर्नेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. अरुण कुमार शर्मा, 1995, भारत में स्थानीय शासन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली।

23.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
2. भारत में नगर पंचायत के प्रशासनिक ढ़ाँचे की समीक्षा कीजिए।
3. नगरपालिका के प्रशासनिक ढ़ाँचे का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. नगर निगम क्या है? इसके प्रशासनिक ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
5. नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।
6. नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं उसके समाधान का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 24 भारत में स्थानीय शासन की प्रगति का मूल्यांकन

इकाई की संरचना

24.0 प्रस्तावना
24.1 उद्देश्य
24.2 भारत में स्थानीय स्वशासन- एक परिचय
  24.2.1 पंचायती राज
  24.2.1 शहरी स्वशासन
24.3 पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव
24.4 स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ
24.5 स्थानीय स्वशासन एवं जन आकांक्षाएं
24.6 स्थानीय स्वशासन प्रणाली को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने हेतु सुझाव
24.7 सारांश
24.8 शब्दावली
24.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
24.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
24.12 निबंधात्मक प्रश्न

24.0 प्रस्तावना

विश्व की सबसे बड़ी लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था भारत की प्रमुख विशेषता है। लोकतन्त्र मूलतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। स्थानीय स्वायत्त शासन के चार मूल कारण हैं- पहले, स्थानीय स्वायत्त शासन में स्थानीय लोगों की समस्या का समाधान किया जाता है। इसमें स्थानीय संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। दूसरे, स्थानीय संस्थाएं लोगों की राजनीतिक समझ को परिपक्व बनाती हैं अर्थात लोग स्वयं अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं और अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर ध्यान देते हैं। तीसरे, सत्ता का विकेंद्रीकरण तभी सम्भव है जब स्थानीय संस्थाएं निचले स्तर तक विद्यमान हों, क्योंकि केन्द्र या राज्य सरकार के लिए सुदूर गांव की समस्या का तत्काल हल निकालना सम्भव नहीं होता है। अतः स्थानीय समस्या का निदान वहीं के लोगों द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। चौथे एवं सबसे महत्वपूर्ण तथ्य, यदि स्थानीय संस्थाएं लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं तो स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना तथा समझ का विकास देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वरूप को मजबूत बनाता है।

लोकतंत्र का सैद्धान्तिक अर्थ प्रायः जनता के शासन से लगाया जाता है लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक, लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से

किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचें। भारत के सम्पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सत्ता के एकाधिकारवादी प्रवृति की आलोचना करते हुए शासन के लोकतांत्रीकरण और लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण की बात की थी। गाँधी जी भारत की विविधता और विशालता को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि इस देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसका स्वरुप बहुलवादी और समावेशी हो। इसीलिए उन्होंने हमेशा भारत में शासन के तीसरे स्तर अर्थात स्थानीय स्वशासन की दिशा में पंचायती राज संस्थाओं के स्थापना की बात की। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में 08 प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। भारत में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

24.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय स्वशासन की भारत में प्रगति के बारे में जान सकेंगे।
- आप पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- आपको स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ तथा जन आकांक्षाएं का भी आपको ज्ञानप्राप्त होगा।

24.2 भारत में स्थानीय स्वशासन- एक परिचय

गाँवों एवं शहरों के विकास के बिना देश के विकास की कल्पना अधूरी है। हमारे देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पंचायतों एवं शहरी स्थानीय निकायों की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरु ने कहा था कि "यदि हमारी स्वाधीनता को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनना है तो पंचायतो को जितनी अधिक शक्ति मिले, जनता के लिए उतना ही लाभदायक है।" इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए देश में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से मृतप्राय स्थानीय निकाय संस्थाओं को जीवन प्रदान किया गया तथा संवैधानिक दर्जा दिए जाने की वजह से झका अस्तित्व भी सुरक्षित हो गया। वित्तीय रूप से सशक्त तथा स्वावलंबी होने पर ही स्थानीय निकायों का विकास में सशक्त एवं प्रभावी योगदान सुनिश्चित करना सम्भव है। जनसहभागी लोकतंत्र के सशक्तिकरण की दिशा में यह कारगर प्रयास है। लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से ये 'स्वशासन की इकाईयां' राजनीतिक एवं आर्थिक प्रजातंत्र को धरातल पर लाती हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के समय से ही स्थानीय शासन के महत्व को समझा जाने लगा था। प्रशासन की इकाई जिला स्थापित की गई थी एवं इसकी प्रशासन व्यवस्था जिलाधिकारी के अधीन थी। वर्ष 1882 में लार्ड रिपन के शासन के कार्यकाल में स्थानीय स्तर पर प्रशासन में लोगों को सम्मिलित करने के कुछ प्रयास किए गए एवं जिला बोर्डों की स्थापना की गई। राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा महत्व दिए जाने एवं ब्रिटिश शासन द्वारा लोगों को अपने प्रशासन में सम्मिलित करने के लिए 1930 एवं 1940 में अनेक प्रान्तों में पंचायती राज सम्बन्धी कानून बनाए गए। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि संविधान के प्रथम प्रारूप में पंचायती राज व्यवस्था का कोई उल्लेख नहीं था। महात्मा गाँधी के दबाव के फलस्वरूप इसे संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद- 40 में स्थान दिया गया।

ब्रिटिश शासन के समय से ही पंचायतें स्थानीय शासन के रूप में कार्य करती रही हैं। परन्तु यह कार्य सरकारी नियंत्रण में होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों और शहरों में नगरपालिकाओं द्वारा स्थानीय स्वशासन का कार्य किया जाता था। स्वतंत्र भारत में इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया और भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 40 ने इसकी पुष्टि इस प्रकार से की है- राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनकी ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो। परन्तु इस प्रयास में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लोकतांत्रिक स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया गया। इन कमियों को राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में उजागर किया गया और पुनः इनके संवैधानिक समाधान के लिए प्रयास किया गया।

भारतीय संसद द्वारा पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के लिए ऐतिहासिक कदम उठाते हुए भारतीय संविधान में 73वां तथा 74वां संशोधन 1992 में किया गया। संविधान का 73वां संशोधन अधिनियम 25 अप्रैल, 1993 से तथा 74वां संशोधन अधिनियम 01 जून, 1993 से लागू हो गया है। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज तथा नगर पालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है।

24.2.1 पंचायती राज

भारत गांवों का देश है। गांवों की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति एवं प्रगति निर्भर करती है। महात्मा गांधी के अनुसार, यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जाएगा। भारत के संविधान निर्माता भी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे, अतः देश के विकास एवं उन्नति को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण शासन व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। संविधान के अनुच्छेद- 40 के अंतर्गत पंचायती राज व्यवस्था को राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अंतर्गत रखा गया है। वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस आधारभूत अवधारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन सम्बन्धी कार्यों में हाथ बटाऐं तथा स्वयं पर राज्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। देश के राजनीतिक भविष्य एवं भावी राजनीतिक चाल का निर्धारण संघीय व्यवस्था में बैठे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ की अपेक्षा, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान पंचायती राज संस्थाएं ही करती हैं। पंचायती राज प्रणाली भारतीय शासन प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है। पंचायती राज की शुरूआत से भारतीय राजनीति का व्याकरण बदलने लगा है। शासन प्रक्रिया धीरे-धीरे सरकारों के एकाधिकार से निकल रही है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। भारत की विविधता और कार्य की व्यापकता के चलते, लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण एक स्वागत योग्य कदम है। इसने देश में एक मूल क्रांति का सूत्रपात किया है। संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों से इसे संवैधानिक दर्जा मिला और ऐतिहासिक रूप से समाज के वंचित और शासन प्रणाली से अलग-थलग पड़े वर्गों को शामिल करने का ढ़ाँचा उपलब्ध हुआ। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पंचायतों के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसे संसद के दोनों सदनों से पारित होने के बाद 20 अप्रैल 1993 को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और 24 अप्रैल 1993 से यह सम्पूर्ण देश में प्रभावी हुआ। पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में नया भाग- IX शामिल किया गया और और ग्यारहवीं अनुसूची में उनके अधिकारों का उल्लेख किया गया।

सरकार ने देशभर की पंचायतों में आधी सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने का फैसला किया है। इससे शासकीय परिदृश्य में क्रमिक परिवर्तन आएगा। पंचायतों का अस्तित्व सदियों से चला आया है। पंचायतें गांवों के सामान्य मामलों को देखने के अलावा कुछ शासकीय और न्यायिक शक्तियों का उपयोग करती रही हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान और उससे पहले भी, पंचायतें प्रशासन की धुरी, सामाजिक जीवन का केन्द्र, और सर्वोपरि सामाजिक एकता का केन्द्र बिन्दु रही हैं। भारत के प्रांतीय गवर्नर-जनरल सर चार्ल्स मेटकाफ ने पंचायतों का वर्णन करते हुए इन्हें छोटे-छोटे गणराज्य तक कह डाला था। लेकिन सामंतवादी सरकार के राजस्व वसूली के निर्मम

तरीकों ने इस संस्थाओं का विनाश कर दिया। गांधीजी पंचायतों के बड़े हिमायती थे। उन्होंने पंचायतों को ग्राम गणराज्य की उपाधि दी। उनका तर्क था कि सच्चा स्वराज गांवों को सशक्त बनाने से ही सम्भव है, गांधी जी का स्वप्न था, ''प्रत्येक गांव सर्वशक्ति संपन्न गणराज्यहोगा। यहाँ के जीवन का स्वरूप पिरामिड जैसा नहीं होगा जहाँ शिखर का बोझ सबसे निचले स्तर पर होता है बल्कि यह किसी सागर की गोलाई की तरह होगा जिसके केन्द्र में होगा प्रत्येक व्यक्ति, जो सदा गांवों की भलाई के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की तत्पर होगा।''

24.2.2 शहरी स्वशासन

74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भारतीय संविधान में भाग 9 ए जोड़ दिया। इस भाग का शीर्षक नगरपालिकाएं है तथा जिसके प्रावधानों का उल्लेख अनुच्छेद- 243- पी से 243- जेड- जी में है। इसके अतिरिक्त संविधान में 12वीं अनुसूची भी जोड़नी पड़ी। इस अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद- 243 डब्ल्यू से सम्बन्धित है, इसी अधिनियम ने नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा दिया। नगरपालिकाएं संविधान के अधिकार क्षेत्र में आ गई, अर्थात इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकारें नई नगरपालिका प्रणाली अपनाने को बाध्य हो गई। इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवन और मजबूती प्रदान करना है ताकि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में अपना कार्य प्रभावी रूप से कर सकें। इस अधिनियम के तहत प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन का प्रावधान है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और माध्यम शहरों के लिए नगर परिषद की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा, जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत संक्रमणशील, और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसंख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता, आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करें। वहीं बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है।

24.3 पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव

21वीं शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य तीव्रतर विकास की होड़ लगी है। विकास के इस दौड़ में कुछ राष्ट्रीय राज्यों ने प्रगति की है तो कुछ इस दौड़ में अन्य की तुलना में पिछड़ते जा रहे हैं। किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। ये निम्नानुसार हैं-

1. कृषि, जिसके अंतर्गत कृषि विस्तार भी आता है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबंदी और भूमि सुधार।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जलविभाजक क्षेत्र का विकास।
4. पशुपालन, डेयरी उद्योग और कुक्कुट पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी।
7. लघु वन उपज।
8. लघु उद्योग, जिनके अंतर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी हैं।
9. खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण आवासन।
11. पेय जल।
12. ईंधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अंतर्गत विद्युत का वितरण है।
15. अपारंपरिक उर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।
18. तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता जिनके अंतर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।
24. परिवार कल्याण।
25. महिला और बाल विकास।
26. समाज कल्याण जिसके अंतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।
27. दुर्बल वर्गों और विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।
28. सार्वजानिक वितरण प्रणाली।
29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

भारत में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन विधेयक के लागू हो जाने केबाद प्रमुख राज्यों में 5-6 बार या अधिक स्थानीय निकायों के चुनाव संपन्न हो चुके हैं। ग्रामीण स्थानीय निकाय के चुनाओं 30 लाख नए जन प्रतिनिधि चुने जा चुके है जिनमे लगभग 10 लाख महिलाएं शामिल हैं। इतनी सारी महिलाओं का अपनी गतिविधियों को चूल्हे-चौके तक सीमित न रखकर गाँव से लेकर जिले तक की विकास प्रशासन में भागीदारी एक सुखद आश्चर्य से कम नहीं है। बलवंतराय मेहता समिति से लेकर 73वें संविधान संशोधन तक विभिन्न समितियों के माध्यम से इन पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता के बारे में कई उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। लगभग छह दशक पूर्व स्थापित पंचायती राज व्यवस्था डगमगाने लगी तो इसी संशोधन ने उसे पुनः सबलता प्रदान की। 73वें संशोधन से लेकर 2017 तक महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने में पाया गया कि पंचायती राज में चुनकर आई महिलायें में बदलाव देखा गया, जो इस प्रकार है-

1. आरक्षण के कारण महिलाओं की विकास प्रक्रिया में हस्तक्षेप में वृद्धि हुई है। उन्होंने अपने अधिकारों व अवसरों का लाभ उठाया है।
2. शिक्षा के क्षेत्र में रुचि अधिक हुई, ताकि राजनीतिक सहभाग में सक्रिय बन सके।
3. सामाजिक व आर्थिक सुधार व बदलाव आये हैं।
4. स्वयं के कार्य में आत्मनिर्भरता में विकास हुआ है। पिछड़े-वर्ग की महिलाओं को भी इस आरक्षण के कारण राजनीतिक क्षेत्रों में कदम रखने का अवसर प्राप्त हुआ है।

पंचायती राज व्यवस्था से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। महिलाओं में एक नयी जागृति, अधिकारों के प्रति जागरूकता, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस आया है। परन्तु महिलायें आरक्षित स्थानों पर ही चुनाव मैदान में आती हैं। सामान्य वर्ग की सीटें पुरुषों के लिए ही आरक्षित मान लिया जाता है। निर्वाचित महिलाओं की भूमिका व भविष्य उनकी सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि से प्रभावित है। महिलाओं की पंचायत में बढ़ती इस भागीदारी को पहचानते हुए पंचायती राज संस्थाओं की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी, प्रतिनिधित्व तथा कार्य निष्पादन को और बढ़ाने के लिए पंचायती राज मंत्रालयपंचायत महिला एवं युवा शक्ति अभियानको वर्ष 2007-08 से कार्यान्वित कर रहा है। महिलायें नीति-निर्माण से लेकर क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में सहभागिता कर सकती हैं, जिससे एक सशक्त समाज व देश के निर्माण में सहयोग प्राप्त होगा। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति ने भी अपना प्रतिनिधित्व अच्छी-खासी दर्शायी है, साथ ही समाज के गरीब तबके को भी इन संस्थाओं में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। इन प्रतिनिधित्व के सारे आयामों ने स्थानीय निकायों को एक नयी दिशा दी है।

लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं को भारतीय संविधान मेंस्वशासन की इकाई की अवधारणा का उल्लेख एक सही कदम है, किन्तु ध्यान देने की बात है कि यह इकाई राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक इकाई भी है। इस सन्दर्भ में ग्राम सभा को एक कृषि औद्योगिक समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है। जी0वी0के0 राव समिति की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि विकास कार्यों में गांव के लोगों का स्वैच्छिक सहयोग स्वावलम्बन की दिशा में पहला कदम होगा। आज भारत के अधिकतर राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था लागू है। इस व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम पंचायत होती है। संविधान के 73वें व 74वें संशोधन के अनुसार ये संस्थायें मोटे तौर पर निम्न विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगी- कृषि विकास, जल/पेयजल, ग्रामीण आवास, सड़क शिक्षा तथा स्वास्थ्य।

73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन को लागू हुए दो दशकसे ज्यादा समय व्यतीत हो गया है। इसमे कोई शक नहीं है कि इन संशोधनों ने स्थानीय स्वशासन को नया जीवन प्रदान करने के साथ-साथ इनको निश्चितता एवं मजबूती प्रदान की है। इन संशोधनों से पूर्व इनकी कार्यक्षमता पूरी तरह से राज्य पर ही निर्भर थी। राज्यों में चुनाव के दौरान 'जनता को सीधी सत्ता' देने की बात अवश्य की जाती थी, परन्तु स्थानीय निकाय को अधिकार देने की कौन कहे? इनके चुनाव भी समय पर सम्पन्न नहीं हो पाते थे। लेकिन 73वें एवं 74वें संशोधन ने स्थानीय निकाय का कार्यकाल सुनिश्चित कर वित्तीय आबंटन हेतु राज्य वित्त आयोग तथा चुनाव हेतु राज्य चुनाव आयोग की स्थायी व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त इन संस्थाओं में महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के समूह जैसे- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को आरक्षण के माध्यम से जगह दिया ताकि उनकी भागीदारी स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित हो सके।

राज्यों के पंचायत अधिनियमों में ऐसा प्रावधान है कि ग्राम सभा की इस जिम्मेदारी को निभाना है कि ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम में श्रमदान हेतु लोगों को प्रेरित किया जाए। निःसंदेह इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं के स्तर पर एक गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता होगी। सभी राज्यों के पंचायती राज संस्थाओं की

कार्यकारिणी में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। कुछ राज्यों (बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड) में महिलाओं के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान लागू है।

संविधान संशोधन होने से सही अर्थों में दूसरे गणराज्य का मार्ग प्रशस्त हुआ, क्योंकि इसने केवल पंचायतों को प्रभावशाली संस्था बनाने का ही प्रयास नहीं किया बल्कि इन्हें शासन का तीसरा चरण भी बनाया। संशोधन का सबसे क्रांतिकारी बदलाव यह है कि इसमें महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

पंचायतों की नई पीढ़ी को सवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं और यह सबसे निचले स्तर पर शासन में आमूलचूल परिवर्तन लाना चाहती है फिर भी अनुसूचित जाति और अन्य वंचित वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण से राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक किस्म' के क्रांतिकारी बदलावों के लिए द्वारा खुले हैं। पंचायतों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को प्रभावशाली भूमिका सौंपकर पंचायतों की नई पीढ़ी ने उनके प्रतिनिधत्व और भागीदारी की सुविधा प्रदान की है। इस तरह वे लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को और आगे ले गए हैं। हमारे जैसे जातिवादी, अर्द्ध सामन्ती और वर्गीकृत समाज में आरक्षण के प्रभाव के बारे में किसी ने भी पंचायती की नई पीढ़ी के लाभार्थियों के लिए किसी चमत्कार की उम्मीद नहीं की थीं।

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। देश को आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर किया है तथा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में की उपस्थिति ने ग्रामीण एवं शहरी जनता को जागरुकता प्रदान की है। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था की उपब्धियां इस प्रकार हैं- जन सहभागिता, अधिकारों के प्रति चेतना, आर्थिक विकास, महिलाओं की सहभागिता, राजनीतिक जागरूकता, लोकतंत्र का विकास तथा कार्य संपादन में शीघ्रता।

पंचायत सशक्तिकरण एवं जवाबदेही प्रोत्साहन योजना (पीईएआईएस) वर्ष 2005-06 से पंचायती राज मंत्रालय द्वारा लागू एवं कार्यान्वित की गई है। इसके तहत् राज्य सरकारों को अनुच्छेद- 243 (जी) के अंतर्गत उसकी 11वीं अनुसूची के साथ पठित संवैधानिक औपचारिकता को पूरा करने के लिए पंचायतों के कार्य, कोष एवं पदाधिकारी विकसित करने के लिए राज्य सरकारों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इस योजना का उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं को पर्याप्त रूप से सशक्त करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करना और पंचायतीराज संस्थाओं को जवाबदेही की ओर लाने की व्यवस्था करना है। इसके अतिरिक्त देश में ग्राम पंचायतों, मध्यवर्ती पंचायतों एवं जिला पंचायतों में शासन की गुणवत्ता सुधार के लिएकेन्द्र सरकार ने सभी पंचायतों को ई-सक्षम करने के लिए, ई-पंचायत मिशन मोड परियोजना नामक एक परियोजना आरम्भ की है, जो उनके कार्यकरण को और अधिक कुशल एवं पारदर्शी बनाएगी। ई-पंचायत का उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं को आधुनिकता, दक्षता, उत्तरदायित्व का प्रतीक बनाना एवं सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रति वृहत् ग्रामीण आबादी को अभिप्रेरित करना है। इस परियोजना का नेतृत्व केन्द्र द्वारा और कार्यान्वयन राज्यों द्वारा किया जा रहा है। ई-पंचायत द्वारा पंचायतों के लिए राष्ट्रीय पंचायत निर्देशिका, पंचायतों की सामाजिक जनसांख्यिकीय प्रोफाइल, ऑनलाइन परिसंपत्तियों के पंचायतों की परिसंपत्ति निर्देशिका, पंचायत लेखांकन, योजना का ऑनलाइन कार्यान्वयन और निगरानी, शिकायत निवारण, सामाजिक अंकेक्षण, मांग प्रबन्ध न प्रशिक्षण जैसी सेवाएं प्रदान करना सम्भव हो पाया है।

24.4 स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता ,केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति ,विकास योजनाओं की सफलता में सहायक,

भ्रष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं।

लोकतंत्र की सबसे निचली इकाई पंचायत है। स्थानीय शासन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। पंचायत हमारी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता, सुदृढ़ता और सुव्यवस्था तथा लोकतंत्र का रक्षा कवच है। किसी भी समुदाय, समाज व राष्ट्र की समृद्धि एवं उन्नति संस्थाओं की कार्यप्रणाली का प्रतिफल होता है। पंचायत सर्वमान्य संस्था के रूप में प्राचीनकाल से ही भारतीय जन-मानस में प्रतिष्ठित रही है। स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

पंचायती राज एवं नगरीय निकायों की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है। यथा- वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण, स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि-आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। पंचायतों के जिम्मे कृषि, लघु सिंचाई, पेयजल, निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा स्वास्थ्य और सफाई जैसे काम हैं, लेकिन कार्यकारिणी और वित्त व्यवस्था सौंपे बिना पंचायतें भला कैसे प्रभावी हो सकती हैं?

स्थानीय स्वशासन में विकेंद्रीकरण के माध्यम से विकास की गति में वृद्धि होगी, परियोजनाएं शीघ्र पूरी होंगी और लोगों की विकास कार्यों में भाग लेने की चेतना में वृद्धि होगी, परन्तु इसके साथ ही कुछ संभावित त्रुटियां भी इस व्यवस्था के अंतर्गत निहित हैं। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जो लोक्तांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया है, वह केन्द्र को कमजोर बना सकती है। जाति, धर्म, वर्ण और लिंग की उपेक्षा करके यह समाज के सभी वर्गों की समानता के आधार पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय दिलाने की प्रक्रिया में बाधा बन सकती है। पूर्व में हम यह अनुभव कर चुके हैं कि क्षेत्रीय राजनीतिज्ञ स्थानीय संगठनों के कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में, इसे रोक पाना बहुत कठिन काम है। हमारे देश में मुद्रा व शक्ति का जो दुरुपयोग किया जा रहा है, उसे पंचायती राज की सफलता हेतु रोकना होगा। यह प्रक्रिया राज्य के अल्पसंख्यकों के संरक्षण में बाधा बन सकती है। यद्यपि, सभी राजनैतिक दल अल्पसंख्यकों का समर्थन प्राप्त करना चाहते हैं, तथापि कई ऐसे अन्य कारण हैं, जो उन्हें ऐसा करने से वंचित कर सकते हैं। हम देखते हैं कि प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरपालिका के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त हैं तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया इसकी रिपोर्ट के अनुसार, क्योंकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है, इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पूरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता

स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाएं।

इसके अतिरिक्त स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं राजनीतिक दलों के शक्ति परीक्षण की प्रयोगशाला बन गयी हैं। स्थानीय संस्थाओं की सफलता बहुमत के बजाय आम सहमति और व्यापक समन्वय की भावना पर आधारित हैं, लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा सहमति स्थापित करने के स्थान पर दलीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है जो भले ही तत्कालीन दलीय हितों की पूर्ति करे लेकिन वैचारिक दलीय प्रतिस्पर्धा के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के द्वारा सामुदायिक विकास और सहयोग लाने की भावना धूमिल होती है। अतः स्थानीय स्वशासन और विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है।

स्थानीय नगरीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक अन्य बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक-दुसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पाई है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वहीं प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के बाजिब सलाहों को भी नजर-अंदाज करते हैं जिसके कारण नगरीय विकास की सम्भावना प्रभावित होती है। राजनैतिक तथा अन्य कारणों से पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिस्थापन पर प्रतिबंध हेतु कड़े नियम बनाने होंगे। यदि राजनीतिक दल पंचायती राज व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। जाति, धर्म और मुद्रा शक्ति पर आधारित वर्तमान ढ़ाँचे को उखाड़ने के लिए एक सामाजिक क्रांति का होना अति आवश्यक है। महात्मा गांधी के अनुसार, स्वतंत्रता और स्वायत्तता का मूल्य केवल राजनैतिक विकेंद्रीकरण से ही प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि आर्थिक मोर्चे पर भी विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। तद्-नुसार, राजनैतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उन्होंने सदैव सृजनात्मक कार्यों के माध्यम से लोकतंत्र की नींव तैयार करने की अपील की।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतःमन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

पंचायती राज में ग्राम सभा की बैठकों में पुरुषों की तुलना में आम महिलाओं की भागीदारी बेहद कम होती है। यह असमानता महिला सशक्तीकरण की दृष्टि से एक गलत संदेश देती है। आज महिलाओं द्वारा गठित स्वयं सहायता समूहों का व्यापक स्तर पर विकास हुआ है। यह खेदजनक है कि अधिकतर ग्राम पंचायत क्षेत्रों में इनका कोई पंचायत भवन नहीं है जहाँ इन संस्थाओं की बैठक हो सके। हर ग्राम पंचायत में कार्यालय और एक बड़े सभा कक्ष की आवश्यकता होगी। किंतु इनके निर्माण हेतु कितनी भूमि की आवश्यकता होगी, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन

निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए। इस आधार पर जब तक स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के लिए कोई स्वायत्त जगह निर्मित नहीं की जाती तब तक स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कोई खास सुधार कर पाना सम्भव नहीं होगा। जबकि स्थानीय स्तर पर जिला प्रशासन के साथ-साथ राज्य सरकार की कुछ संस्थापनाओं के प्रतिधारण के औचित्य पर कुछ सवाल उठ सकते हैं। उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्व उन क्षेत्रों में आ सकते हैं जोकि स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों। जहाँ तक इन्हें सौंपे गए कार्यों का प्रश्न है, स्थानीय शासन संस्थाओं को स्वायत्तता होनी चाहिए और इन्हें राज्य सरकार की नौकरशाही के नियंत्रण से पूरी तरह से मुक्त होना चाहिए।

इस प्रकार वित्तीय साधनों की कमी, जनप्रतिनिधियों को प्रदान की गयी निम्न सुविधाएँ और निम्न वेतनमान, निकम्मा कर्मचारी वर्ग, राज्य सरकार का अतिशय हस्तक्षेप, राजनीतिज्ञों का आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप, व्यापक भ्रष्टाचार, आदि नगरीय प्रशासन की कतिपय समस्याएं हैं। फ्रेडरिक विलियम विल्सन, जो एक समय 'द पायनियर' के संपादक थे, के अनुसार " यह असम्भव है कि कोई व्यक्ति भारत की निर्वाचित नगरपालिकाओं, नगर निगमों तथा जिला परिषदों की दशा तथा स्थिति का सर्वेक्षण करे और उसके परिणामों से संतुष्ट हो जाए। इस समय भारत में नगरीय जीवन का जो रूप दृष्टिगत हो रहा है वह ऐसा नहीं है, जिसपर भारतीय देशभक्त गर्व कर सकें।"

24.5 स्थानीय स्वशासन एवं जन आकांक्षाएं

विकेन्द्रीकरण का अर्थ है- विकास हेतु नियोजन, क्रियान्वयन एवं निगरानी में स्थानीय लोगों की विभिन्न स्तरों पर भागीदारी का सुनिश्चत होना। स्थानीय समुदाय को अधिक से अधिक अधिकार एवं संसाधनों से युक्त करना ही वास्तविक विकेन्द्रीकरण है। साधारणतया कहें तो विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है जिसमे सत्ता जनता के हाथ में हो और सरकार लोगों के विकास के लिए कार्य करें। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए पंचायत व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। पंचायतों के कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। पंचायती राज संस्थाएं विधायकों एवं मंत्रियों को राजनीति का प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान कर देश का भावी नेतृत्व तैयार करती हैं। इससे राजनीतिज्ञ ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामों में उचित नेतृत्व का निर्माण करने एवं विकास कार्यों में जनता की अभिरुचि बढ़ाने में पंचायतों का प्रभावी योगदान रहता है। इन समस्याओं के माध्यम से जनता शासन के अत्यंत निकट पहुँच जाती है। इसके फलस्वरूप जनता एवं प्रशासन के मध्य परस्पर सहयोग में वृद्धि होती है, जो कि भारतीय उत्थान हेतु परमावश्यक है। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मध्य स्थानीय समस्याओं का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में शासकीय सत्ता गिनी- चुनी संस्थाओं में न रहकर गांव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में पहुँच जाती है। पंचायतें लोकतंत्र की प्रयोगशाला हैं। ये नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं। साथ ही उनमें नागरिक गुणों का विकास करने में सहायता प्रदान करती हैं।

आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है। ऐतिहासिक रूप में वंचित समूहों के प्रतिनिधित्व, भागीदारी और सशक्तिकरण के सम्बन्ध में पंचायतों की नई पीढ़ी ने उल्लेखनीय प्रगति की है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में अनुसूचित जातियों और ऐतिहासिक रूप से वंचित अन्य वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण के कारण आज शासन प्रक्रिया कहीं अधिक गहरी और कहीं ज्यादा

व्यापक है, बेशक यह उतनी पारदर्शी नहीं हो पाई है, हालांकि यह तस्वीर का केवल एक ही पहलू है। तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि नई-नई शक्ति प्राप्त वर्गों खासकर दलितों के विरूद्ध हिंसा, दुर्व्यवहार और अवहेलना का सिलसिला भी जारी है। पंचायती राज संस्थाओं में भारतीय राजनीति को पूरी तरह बदल देने की क्षमता है। शासन प्रक्रिया धीरे-धीरे सरकारों के एकाधिकार से निकल रही है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। आरक्षण ने वंचित समूहों को बेहतर पहचान दिलाई है और स्थानीय मुद्दों को प्रभावित करने का भी अवसर प्रदान किया है। एक प्रतिनिधि सरकार लोगों के जितना करीब होगी, वह उतना ही बेहतर काम करेगी। आदर्श स्थिति यह होगी कि स्थानीय सरकारें उच्चस्तरीय सरकारों की बराबर की भागीदारी हों। ग्रामीण जनता के सशक्तीकरण से आर्थिक प्रगति तेजी होगी और लोकतांत्रिक संस्थाएं सुदृढ़ होंगी।

प्रोफेसर रजनी कोठारी के अनुसार, इन संस्थाओं ने नए नेताओं को जन्म दिया है, जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। पंचायती राज के माध्यम से भारत की शासन प्रणाली में एक नवीन एवं सजीव प्रणाली की नींव रखी जा चुकी है और इसके परिणामस्वरूप भारत की स्थानीय स्वशासन व्यवस्था में उतार-चढाव देखने को मिलते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन के माध्यम से उत्साही कार्यकर्ताओं में स्थान मिल गया और उन्हें आगे बढने के लिए प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध हो गई।
2. स्थानीय स्वशासन का दूरगामी प्रभाव यह हुआ कि ग्रामीण राजनीति मे गतिशीलता एवं बढ़ गई।
3. स्थानीय स्वशासन का चुनाव लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों की भाँति होता है जिसके कारण गुटबन्दी की भावनाएँ विकसित हो गई है और राजनीति के अखाड़े बनते जा रहे हैं।
4. 73वें संविधान संशोधन द्वारा पिछड़ी जातियों एवं महिलाओं के विकास के लिए पंचायती राज में सीटों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है, जिससे कि उनमें नवीन चेतना का विकास हो सके।
5. जिला प्रशासन और सामुदायिक विकास दोनों विभागों के कर्मचारियों को पहली बार पर्याप्त शक्ति सम्पन्न और राजनीतिक समर्थन द्वारा प्रतिरक्षित जनप्रिय सस्थाओं के एक सुसगठित जाल का सामना करना पड़ रहा है।
6. इनके माध्यम से सम्पर्क सूत्र की राजनीति का विकास हुआ। गाँव, जिलों व राज्यों के मुख्यालयों से जुड़ने लगे। राज्यस्तरीय नेता ऐसी जोड़-तोड़ करने लगे कि उनके गुट एवं पार्टी के व्यक्ति पंचायतों में आयें, ताकि उनका समर्थन मजबूत बन सके। पंचायती संस्थाएं एवं नेतृत्व गाँवों को राजनीतिसे जोड़ने की महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

24.6 स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने हेतु सुझाव

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने के लिए निम्नाकिंत सुझाव दिये गये हैं। आईये इनका अध्ययन करते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को और अधिक कार्यपालिका अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए। स्थानीय स्वशासन को और अधिक प्रभावी एवं व्यवहारिक बनाने तथा प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक है कि विधायी अंग की कार्यवाही का संचालन जन-भावनाओं के अनुसार किया जाए।
2. स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को कर लगाने के कुछ व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के पास अपने स्वयं के साधन विकसित किए जाने चाहिए, ताकि वे अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि करके अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विवेकानुसार कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

3. ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाले समस्त महत्वपूर्ण मुद्दों पर ग्राम सभा में विचार-विमर्श होना चाहिए। ग्राम सभा द्वारा विचार किए जाने योग्य विषयों के अंतर्गत पंचायत का बजट, पंचायत के कार्यो का विवरण, योजनाओं की प्रगति, ऋण एवं अनुदानों का उपयोग, स्कुल एवं सहकारी सहकारी समितियों की व्यवस्था, लेखा-परीक्षण की रिपोर्ट, आदि सम्मिलित किए जाने चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए तथा इन संस्थाओं के चुनाव सर्वसम्मति के आधार पर होने चाहिए। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के निर्वाचन नियत समय पर सम्पन्न कराए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को अकारण ही समयावधि से पूर्व ही भंग करने की राज्य सरकारों की प्रवृत्ति से बचाना चाहिए।
5. साधारण जनता की समस्याओं के निवारणार्थ पंचायतों की अधिकार एवं साधन प्रदान किए जाने चाहिए। पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में लोगों की अधिकाधिक समस्याएं लाई जानी चाहिए, ताकि लोग अपनी कठिनाइयों को दूर कर सकें तथा समस्याओं का शीघ्र समाधान प्राप्त कर सकें।
6. जिला स्तर के अधिकारियों को समूहभाव अर्थात् टीम-भावना के साथ कार्यकरना चाहिए। उनका प्रमुख दायित्व जिला परिषद,पंचायत सरकारी नीतियों एवं निर्देशों के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवथित योजनाएं बनाने तथा उनकी क्रियान्विति में सहायता प्रदान करना है। जिला परिषद के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को कर्मचारियों में अनुशासन स्थापित करने तथा उनसे काम लेने हेतु प्रभावपूर्ण शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। कर्मचारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट उसके ठीक ऊपर के उस अधिकारी द्वारा लिखी जानी चाहिए, जिसके अधीन वे कार्य कर रहे हैं। इस रिपोर्ट को मुख्य कार्यपालक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जिला परिषद को सौंपे जा सकने योग्य कार्य एवं परियोजनाऐं राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद को सौंप दिए जाने चाहिए। पंचायत समितियों से वे परियोजनाएं वापस ले लेनी चाहिए, जो जिला परिषद स्तर पर अधिक कुशलतापूर्वक क्रियान्वित की जा सकती हैं।

स्थानीय शासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए वास्तविक सत्ता सम्पन्न लोकतान्त्रिक स्थानीय संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था का लोकतान्त्रिक स्वरूप प्राय: लुप्त होता जा रहा है। प्रशासनिक तनाव को समाप्त करना अत्यावश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. पंचायती राज को संविधान के किसअनुच्छेद में स्थान दिया गया है?
2. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कितनी प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है?
3. पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में कौन सी अनुसूची शामिल की गयी?
4. पंचायती राज संस्थाओं को कितने विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है?
5. शहरी स्वशासन से सम्बन्धित संशोधन कौन सा है?

24.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है जिसमें सत्ता जनता के हाथ में हो और सरकार लोगों के विकास के लिए कार्य करें। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर

जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाएँ।

24.8 शब्दावली

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र- शासन की वह व्यवस्था जिसमे सम्पूर्ण जनता स्वयं, प्रत्यक्ष रूप से बिना प्रतिनिधियों के प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है।

प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण- ऐसी शासन व्यवस्था जिसमे जनता को शासन कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने के अवसर हो, शक्ति का हस्तांतरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो तथा स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयां अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

सामाजिक नीति- सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन की दिशा में एक स्थायी एवं सुसंगत दृष्टिकोण।

24.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद- 40, **2.** 68.84 प्रतिशत, **3.** ग्यारहवीं अनुसूची, **4.** 29 विषयों पर, **5.** 74वां संविधान संशोधन

24.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र आजकल, नयी दिल्ली।
4. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
6. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

24.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. के0के0 शर्मा, 2005, भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

24.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में स्थानीय स्वशासन की प्रगति का वर्णन कीजिए।
2. भारत में पंचायती राज एवं शहरी निकायों के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।
3. स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. स्थानीय स्वशासन एवं उनसे सम्बन्धित जन आकांक्षाओं का परीक्षण कीजिए।